समर्पण ।



मिवाली (हिमालय) निवासी श्रीसोऽहं स्वामी-
जीके शिष्य श्रीविचित्रानन्दसरस्वती-
जीके चरणकमलोंमें उनके सत्संग-
द्वारा जो आत्मिकलाभ पहुंचा
है, उस पवित्र नातेसे यह
अनुवाद बडी श्रद्धा
और भक्तिके साथ
समर्पण किया
जाता है ।



ज्वालादत्त शर्म्मा.

॥ श्रीः ॥

अथ कर्मयोग विषयानुक्रमणिका ।

प्रथम भाग.

॥ इति कर्मयोग प्रथमभाग विषयानुक्रमणिका ॥



॥ श्रीः ॥

अथ कर्म्मयोग ।

प्रथम भाग ।

प्रथम परिच्छेद ।

मनुष्यके चालचलन (Character) पर कर्म्मका प्रभाव ।

संस्कृतमें "कृ" धातुसे कर्म्म शब्द बना है, जिसका अर्थ करना है। जो कुछ भी किया जाता है उसका नाम कर्म्म है । बोलचालमें क्रियाके फलको भी कर्म्म कहते हैं। कर्म्मकी प्रशंसामें वे सब कार्य्य कारण आजाते हैं जिनसे हमारे गत एवं वर्त्तमान जीवन पर प्रभाव पडता है; किन्तु कर्म्मयोगसे हमारा अभिप्राय केवल इस जन्मके कर्म्मसे है ।

मनुष्य-जीवनका उद्देश ज्ञान-प्राप्ति है । हमारे शास्त्रोंने इसीको मुख्यता दी है, प्रसन्नता या सुख मनुष्यजीवनका उद्देश नहीं है, किन्तु इसका उद्देश केवल ज्ञान है, प्रसन्नता एवं सुखका अन्त है । इसलिये सुखको जीवनोद्देश समझना भूल है, संसारमें जितने दुःखोंके दृश्य दिखाई देते हैं इन सबका कारण यह है कि मनुष्यने भूलसे सुखको जीवनका उद्देश समझरक्खा है, कुछ ही समय बाद मनुष्य जानजाता है कि उसको सुख दुःखके झमेलेमें नहीं पड़ना चाहिये, और उसका लक्ष्य ज्ञान होना चाहिये, अपने २ समय पर सुख दुःख भी गुरुका काम देते हैं, भलाई और बुराई दोनोंहीसे मनुष्यका अनुभव बढता रहता है, सुख दुःख तो व्यतीत होजाते हैं परन्तु ये अपना २ चित्र मनुष्यके मन पर खींच जाते हैं और इन्हीं चित्रोंके समूहको मनुष्यका चालचलन या (Character) कहते हैं । यदि आप किसी एक मनुष्यके चालचलनको देखें तब आपको ज्ञात होगा कि उसका चालचलन उसकी विविध मानसिक वृत्तियोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इसको देखकर आप स्वयं समझजायंगे कि इस चालचलनके बनानेमें भलाई और बुराई सुख एवं दुःखने बराबर हिस्सा लिया है । प्रत्युत कहीं २

[illegible] पाश्चात्यके मतानुसार [illegible] और उनका नाम लिया है। संसारमें [illegible] इसके [illegible] महान् पुरुष हुए हैं यदि उनके [illegible] घटनाओं [illegible] सब [illegible] कि [illegible] उनके जीवनको उद्देश [illegible] नामोंमें नाम लिया [illegible] प्रकार [illegible] शिक्षा दी है। इसी [illegible] बनाया है। और [illegible] इनकी [illegible] शक्तियोंको अत्यधिक उत्तेजित किये [illegible]

मनुष्यमें ज्ञान कहीं बाहरसे नहीं आता। प्रत्युत इसमें स्वयं वर्तमान है। सब [illegible] मनुष्यके अन्दर ही भरा पड़ा है, "उसने सीखा" "उसने पढ़ा" "उसने किसी [illegible] किया" ये सब लोकाचारके बोलचाल हैं। वास्तवमें मनुष्यके मनमें समस्त विज्ञान और कलाओंका ज्ञान भरा पड़ा है। इसका सीखना केवल [illegible] आवरणोंको दूर करना मात्र है। कहा जाता है कि न्यूटन (Newton) ने पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति (Gravelation) को जाना,—क्या वह शक्ति किसी कोनेमें बैठी हुई न्यूटनकी प्रतीक्षा कर रही थी? नहीं [illegible] उसीके मस्तिष्कमें विद्यमान थी। समय आया और उसको अपने अन्दर [illegible] प्रकाश प्रतीत होगया। जो कुछ विज्ञान संसारमें है वह सब मनुष्यके मनमें निकला है। सांसारिकविज्ञानका अनन्त कोश तुम्हारा मन है, प्रकृति केवल [illegible] है और इसके संकेतको पाकर तुम जो अपने मनमें विचार करते हो, वही तुम्हारे विचारणीय विषय हैं। सेबके वृक्षसे एक सेब गिरा, और न्यूटनके मनको एक प्रकारका संकेत मिलगया। इसी विषय पर वह मनमें विचारने लगा और उसने अपनी अगली विचारमालामें एक नवीन कड़ी देखी। उसीका नाम The Law of Gravilation रखलिया। यह विज्ञान न तो सेबमें था और न पृथ्वीमें वरन न्यूटनके मन ही में था। इसी प्रकार समस्त विज्ञान [illegible] हैं, सांसारिक हों या पारमार्थिक, शारीरिक हों या आत्मिक पर सब मनुष्योंके मनमें ही भरे हैं। बहुतसे मनुष्योंमें यह अप्रकट रूपसे रहते हैं, इनका आवरण शीघ्र नहीं उतरता और जब ये आवरण धीरे २ दूर होनेलगते हैं तभी [illegible] जाता है कि हम सीख रहे हैं बस एक यही भेद है जो मनुष्यकी ज्ञानवृद्धिको [illegible] करता है। जिस मनुष्यके आवरण उतरगए वह "जाननेवाला" कहलाने लगा और जिसके ये पर्दे दूर नहीं हुए वही अज्ञानी या मूर्ख रहा

जिसके समस्त आवरण दूर होगए वह एक प्रकारसे सर्वज्ञ होगया। संसारमें ऐसे बहुतेरे महापुरुष हुए हैं और आशा है कि इस कल्पमें भी ऐसे महानुभाव जन्मेंगे। जिस प्रकार चिकमाक पत्थरमें अग्नि रहती है उसी प्रकार मनमें विज्ञान रहता है जिस प्रकार उक्त पत्थरको रगडनेसे अग्नि निकलती है उसी प्रकार बाहरी संकेत पाते ही तुम्हारा विज्ञान वृद्धि पाता है हमारी समस्त इच्छा विचार और कर्म्मके लिये ऐसीही समझना चाहिये। हमारे रोने और हंसनेमें हमारे सुख और दुःखमें हमारी प्रशंसा और निन्दामें हमारे भले और बुरेमें इसी प्रकार हमारे सुख और दुःखमें हर जगह इसीका व्यापार दृष्टिगत होगा। और यदि हम जरा गहरा विचार करें तब यह सारा भेद अभी खुलजाय, कि समस्त विषय बाह्यसंकेत पाकर हमारे भीतरसे निकले हैं। इन सबका परिणाम हमारी वर्त्तमान दशा एवं वर्त्तमान जीवन है। इन सबके समूहका नाम "कर्म" है जो कुछ हमारे मन एवं शरीरका प्रभाव हमारे आत्मा पर पडता है, उसीमेंसे चिकमाक पत्थरकी अग्निके समान हमारी नवीन २ शक्तियां प्रकट होने लगती हैं।

यह सब कुछ कर्म्म है इसलिये हम अपने समस्त जीवन भर किसी न किसी प्रकारके कर्म्म करतेही रहते हैं। मैं तुमसे बातचीत कररहा हूं, यह कर्म्म है। तुम ध्यानसे सुनरहे हो, यह भी कर्म्म है, श्वास लेना, चलना, फिरना, बोलना सब कर्म्म है, जो कुछ हम सोचते हैं जो कुछ हम करते हैं, जो कुछ हम समझते हैं यह सब कर्म्मही कहलाते हैं और यह सब कर्म्म अपने स्मारक चिह्न (प्रभाव) हमपर छोडजाते हैं।

कुछ कर्म्म ऐसे हैं, जो बहुतसे और नानाप्रकारके कर्म्मोंके समूह होते हैं, यदि हम समुद्रतट पर खडे होकर तटके पत्थरोंसे लहरोंके टकरानेके शब्दको सुनें तब हमको मालूम होगा कि बडाभारी शब्द होरहा है, ये लहरें अकेली नहीं हैं प्रत्युत इनके साथ करोडों और असंख्य छोटी २ लहरें सम्मिलित हैं परन्तु जबतक ये सब मिलकर ऐक्यभावसे समुद्रके तटसे नहीं टकरातीं तबतक हम उनकी ध्वनि नहीं सुन सकते, इसी प्रकार तुम्हारे मनकी दशा है इसमें भी कर्म्म समूहका फल भराहुआ है, कभी २ हम जो करते हैं उसको अनुभव भी करते हैं, पर कर्म्म बहुतसे छोटे २ कर्म्मोंके समूहरूप होते हैं, यदि तुम किसी बडे आदमीके

चालचलनको जांचना चाहते हो तब इसके बड़े २ कामोंको मत देखो, मूर्खसे मूर्ख मनुष्य किसी न किसी समय प्रतिभाशाली विद्वान् बनजाता है, हमको आदमीके साधारण कामोंको देखना चाहिये इन नित्यप्रति व्यवहारमें आनेवाले छोटे २ कर्मोंको देखकर उसके चालचलनका पता लगजायगा क्योंकि यही काम मनुष्यकी मनोवृत्तियोंके रचयिता हैं । कभी २ साधारण मनुष्य समय पाकर बड़े बनजाते हैं, वास्तवमें बड़ा आदमी वह है जो प्रत्येक कर्ममें प्रत्येक दशामें बड़ा है, और वही भी जिस दशामें स्वाभाव [illegible] और उसी दशामें बड़ाईके [illegible] करता रहे ।

मनुष्यके आचार विचार पर उसके कर्मोंका बड़ा प्रभाव पड़ता है वह प्रभाव इस प्रकारका होता है इसका मुकाबला करना महान् कठिन है । थोड़ी देरके लिये मानलो कि एक केन्द्र centre है और वह संसारकी समस्त शक्तियोंको अपनी ओर खींचता है, और इस प्रकार वह केन्द्र बनकर समस्त शक्तियोंको अपनेमें सम्मिलित करता हुआ फिर इनको भारी धाराकी समान फेंक देता है । इस प्रकारका केन्द्र वास्तवमें मनुष्य है, इसमें क्रिया है, बल है, और वह सब संसारको अपनी ओर खींचे हुए है, अच्छाई बुराई सुख दुःख सब इसीकी ओर खिंचे हुए हैं और उन्हींसे मिलते हुए हैं और वह इसी सामग्रीद्वारा अपनी जबर्दस्त मनोवृत्तिको बनाता है जिसको charecter चालचलन कहते हैं और फिर इसको बाहरकी ओर फेंकदेता है, । अतः इसमें प्रत्येक पदार्थ खींचनेकी शक्ति है इसी प्रकार इसको बाहर फेंकने, बनाने और परिणाममें लानेकी शक्तिभी प्राप्त है ।

संसारके सब काम, मनुष्य समाजकी सब कार्य्यवाही, उसके चहुँओर दिखाई देनेवाले समस्त पदार्थ, केवल मनुष्यकी विचारशक्ति will powar के फलस्वरूप हैं । मशीनें और यंत्र, नगर या जहाज ये सब मनुष्यकी विचारशक्तिने ढाले हैं और यह शक्ति मनुष्यके आचरण charecter से बनती है और यह चाल-चलन कर्मोंसे बनता है । जैसा कर्म होगा वैसेही विचार होंगे । संसारके बल-वान् और शक्तिशाली वे महापुरुष हुए हैं जो बड़े काम करनेवाले थे, इनकी विचारशक्ति अतिशय थी; वे ऐसे बलवान् थे कि संसारको उलट पलट सकते थे और इनमें यह अतिशय विचारशक्ति जन्मजन्मांतरमें लगातार काम करनेसे

उत्पन्न हुई क्या बुद्धकी जैसी विचारशक्ति एक जन्मके कर्मका फल है ? क्योंकि हम जानते हैं कि इसका पिता जिस प्रकृतिका मनुष्य था, कदाचित् कोई मनुष्य यह नहीं कह सकेगा कि मनुष्यके कल्याणके लिये कभी इसकी वाणीसे भलाईके शब्द निकले होंगे, बुद्धके पिता जैसे करोडों छोटे २ राजे संसारमें हो चुके हैं यदि यह कहाजाय कि मनुष्यमें विचारशक्ति भी एक प्रकारकी पैतृक सम्पत्ति[१] है और वह भी माता पितासे मिलती है तब आप कैसे मानलोगे कि बुद्धकी अनुपम विचारशक्ति एक साधारण राजासे उसको मिलीथी, सम्भव है इस (राजा) के नौकर चाकर भी अनाज्ञाकारी रहे हों पर यहां यह विलक्षणता है कि इसके पुत्रका आधा संसार अभीतक दास बननेमें गौरव समझ रहा है फिर आप कैसे कहसक्ते हैं कि उस महात्माको उसकी विचारशक्ति एक साधारण राजा द्वारा मिली जिसको करोडों मनुष्य ईश्वरकी समान पूजते हैं । बुद्धकी यह अनुपम शक्ति कहांसे आई ? यह शक्ति कभी पैतृक सम्पत्ति नहीं होसकती, इतनी शक्ति उसमें कैसे एकत्रित होगई ! यह कभी एक जन्मका काम नहीं है इसने सहस्रों जन्म लिये होंगे हजारों प्रत्युत लाखों वर्षोंसे इसकी शक्ति बढती आई और अन्तमें बुद्ध स्वरूप होकर वह समाजपर फटपडी और संसारमें अद्यावधि उसका प्रकाश है ।

यह बात केवल करनेसे प्राप्त होती है यावत् कोई पुरुष कमाई नहीं करता उसको कुछ नहीं मिलता यह एक कानून है जिसको आप प्रकृतिमें चहुंओर देखोगे, किसी समय हम भूलसे समझलें कि ऐसा नहीं होता किन्तु अन्तमें इसकी सत्यता माननी पडेगी, कोई मनुष्य सारी आयु संपत्ति प्राप्त करनेके लिये लडाई लडता रहै लोगोंको धोखा देता रहै परन्तु अन्तमें मालूम होताहै कि इसको सम्पत्तिपर कोई अधिकार नहीं था और इसलिये इसका जीवन दुःख और दारिद्र्यका जीवन बनारहा । हम शारीरक आनन्दकी सामग्री एकत्र करनेलगें परन्तु हमारा अधिकार उसीपर होता है जिसकी हम कमाई करते हैं, मूर्ख मनुष्य हजारों पुस्तकें खरीदकर अपने पुस्तकालयमें भरलेते हैं परन्तु यह केवल उन

---

१ इंग्लिशमें Hiredily शब्द आया है जिससे अभिप्राय है कि मनुष्यके समस्त गुणादि पितासे पुत्रमें पहुंचते हैं ।

[illegible] पहुंचनेका जिनपर उनको अधिकार प्राप्त है, और यह अधिकार [illegible] अपने कर्मोंसे मिलसकता है, हमारे कर्म्म ही हमारे अधिकारोंका निर्णय [illegible] है और जब हमको अधिकार और संस्कार है इसीके अनुसार हम इनको [illegible] फल पासकेंगे, हम अपनी वर्तमान दशा एवं वर्तमान जीवनके स्वयं [illegible] हैं, और जो कुछ हम होना चाहते है उसकी इच्छा और शक्ति [illegible] प्रस्तुत है, यदि हमारी वर्तमान अवस्था हमारे गतजीवनके कर्म्मोंका [illegible] है तब इससे ज्ञान होसकेगा कि आगे चलकर हम जैसा बननेकी इच्छा [illegible] हैं और जैसे बननेकी हममें शक्ति है, हम वैसे ही बनजायंगे। [illegible] हमको यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि कौन कर्म्म करनेसे [illegible] कल्याण होगा, तुम यदि यह कहो कि "कर्म्मपर विचार करने या इसके [illegible] क्या आवश्यकता है इस संसारमें प्रत्येक कुछ न कुछ कर्म्म कररहा है" [illegible] स्मरण रखो कि इस प्रकार बातें बनानेसे निष्फल हमारा समय व्यतीत [illegible] है। "कर्म्मयोग" के लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें लिखा है कि "बुद्धिमानी और योग्यताके साथ कर्म्म करना (Science) सायंस है पर इतना जान लेना चाहिये कि कर्म्म कैसे करना चाहिये" तब जाकर उत्तम फल निकलेगा, तुमको [illegible] रखना चाहिये कि हर कर्म्मके करनेसे यह अभीष्ट है कि मनःशक्ति जो [illegible] पड़ी है उभर निकले और सोया हुआ आत्मा जाग उठे, यह शक्ति [illegible] मनुष्यमें है ज्ञान भी उसीमें है नानाप्रकारके कर्म्म संकेतके समान हैं जिनके [illegible] यह सोया हुआ जन जागउठता है।

मनुष्य किसी न किसी इच्छाको सन्मुख रखकर काम करता है, कोई काम [illegible] नहीं होता जिसमें कुछ न कुछ इच्छा नहो, कोई प्रसिद्धि चाहता है, [illegible] प्रसिद्ध होनेके लिये उपाय करता है जो सम्पत्ति चाहते हैं वे उसके लिये कर्म्म करते हैं। कुछ अधिकार चाहते हैं वे अधिकार प्राप्तिके लिये कर्म्म करते हैं। कुछ आदमी स्वर्ग प्राप्तिके लिये कर्म्म करते हैं, कुछ चीनियोंकी [illegible] संसारमें मरनेबाद नाम पैदा करनेके लिये कर्म्म करते रहते हैं क्योंकि इस [illegible] (चीनमें) मरनेके बाद उपाधि मिलती है कदाचित् और कर्म्मोंसे ये [illegible]

पिताको उपाधि (Title) मिलती है कुछ मुसलमान इसी लिये कर्म करते हैं कि उनके मरने पर उनकी कब्र खूब सजाई जाय कुछ आदमी अपने पापोंके लिये प्रायश्चित्त स्वरूप कर्म्म करते हैं पहिले बुरे कर्म्म किये फिर एक मन्दिर बनवादिया और कुछ धन पुजारीके अर्पण कर मानों उन्होंने स्वर्गके लिये सर्टीफिकेट प्राप्त करलिया । निदान, कर्म्म करनेके लिये अनेक और विविध प्रयोजन हुआ करते हैं ।

कर्म्मको कर्म्मके लिये करो । हर देशमें ऐसे सहृदय पुरुष हैं जो न नामके इच्छुक हैं न प्रसिद्धि चाहते हैं और न स्वर्गहीकी चाहना करते हैं परन्तु बराबर कर्म्म करते रहते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि कर्म्मका फल स्वयं अच्छा हुआ करता है । ऐसे सज्जन भी संसारमें विद्यमान हैं जो निर्धनोंकी रक्षा करते हैं और उनको साहाय्य देनेके लिये प्रस्तुत रहते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि नेकी करना अच्छा है और उनको नेकी एवं भलाईसे प्रेम है । अब पुनः कर्म्म करनेकी निष्ठाकी ओर फिरते हैं जो लोग नाम और प्रसिद्धिके लिये कर्म्म करते हैं उनके कर्म्मोंका फल चिरकाल पश्चात् निकलता है, कभी २ हमको उस समय प्रसिद्धि और नामवरी मिलती है जब हम वृद्ध होजाते हैं और जीवनका सूर्य्य प्रायः अस्तही होजाता है, यदि मैं अपने जीवन भर प्रसिद्धिके लिये कर्म्म करता रहूं तब मुझको अन्तमें मालूम होगा कि मैंने इस लंबी यात्रामें बहुतही कम लाभ प्राप्त किया यदि नामके लिये कर्म्म कियाजाय तब इसकी भी यही दशा होती है, मरनेसे कुछ दिनों पहिले थोडीसी नामवरी मिलजायगी इसीप्रकार और सांसारिक पदार्थोंके लिये भी समझो, बडी लम्बी यात्रामें बहुतही कम लाभ है । किन्तु यदि कोई निष्काम कर्म्म करे उसका क्या परिणाम होगा ? क्या उसको कुछ न मिलेगा ? क्यों नहीं, उसको सबसे अधिक लाभ होगा, निष्काम कर्म्मकी मजदूरी सबसे अधिक होती है परन्तु मनुष्य अधीर होजाता है वह धैर्य्यसे लगातार कर्म्म नहीं करता, शरीरके लिहाजसे भी इसका मूल्य अधिक होता है, प्रेम, सचाई निर्लोभ होना ये कुछ जाहिरदारीमें कहनेके ही शब्द नहीं हैं प्रत्युत हमारे जीवनके मुख्य उद्देश हैं, इनके करनेमें एक अद्भुत आनंद और शक्तिका संचार होता है, प्रथम जो मनुष्य पांच दिन या पांच ही मिनिट तक, स्वार्थ, लोभ या

अन्य किसी प्रकारकी इच्छाको छोड़कर कर्म्म करेगा उसमें स्वयं एक प्राकृ-तिक शक्ति उत्पन्न होजायगी, अवश्यमेव, ऐसा करना कठिन है किन्तु हम अपने भीतर जानते हैं कि ऐसा करनेसे कितना वडा लाभ होगा और इसके कैसे फल प्रकट होंगे। जो निष्काम कर्म्म करेगा जो अपने मनको जीतलेगा उसके कर्म्म वहुत मजवूत होंगे मनका जीतना सव कामोंसे वडा है, समझलो, चार घोडोंकी एक गाडी वडे जोरसे पहाडीकी ओर चलीजारही हैं, साईस लगाम द्वारा घोडोंको रोकरहा है, वताइयेगा, किसमें अधिक वल है, घोडोंके तेजीके साथ दौडनेमें या साईसके रोकनेमें ? गेंद हवामें उछलकर कुछ दूर जाती है, फिर पृथ्वी पर गिरपडती है, दूसरी दीवारसे टकरा कर फिर वहींकी वहीं रह जाती है । ठीक यही दशा स्वार्थसे पूर्ण कर्मोंकी है इन सव कर्म्मोंका यह परिणाम होगा कि जल्दी या देरमें हम पर अधिकार पालेंगे और फिर तुम्हारे हाथ न आयंगे, किन्तु यदि मनको रोकाजाय तव स्वयं शक्ति वढतीजायगी, निष्काम कर्म्म करना वास्तवमें मनके रोकनेका साधन है, इस-प्रकार निरोध करनेसे ईसा एवं वुद्ध महात्माओंकी जैसी शक्ति उत्पन्न होती है मूर्ख इस भेदको नहीं जानते तथापि उनको मनुष्योंपर शासन करनेकी इच्छा वनी रहती है। मूर्ख मनुष्य नहीं समझता कि यदि वह धैर्य्यके साथ निष्काम कर्म्म किये जायँ तव समस्त संसारको अपना आज्ञाकारी वनासकता है कुछ वर्ष संतोष करो, दूसरोंपर अधिकार पानेके झूठे विचारको मस्तिष्कसे निकालफेंको और जव यह विल्कुल दूर होजायंगे तुम समस्त सृष्टिपर शासन कर सकोगे। मनुष्य एक दो रुपयेके लिये दौडते फिरते हैं और यह नहीं विचारते कि दो चार रुपयेके लिये दूसरोंको धोखादेना वुरा है। यदि वे कुछदिन अपने आपको वशमें रखसकें तव वे करोडों रुपया इच्छा होनेपर अपनी ओर खींच सक्ते हैं। परन्तु हम लोग ऐसे ही मूर्ख हैं ! हममें वहुत मनुष्योंकी दृष्टि कुछ वर्षोंके आगे नहीं वढती, जिसप्रकार पशुओंको थोडी दूरके अन्तरके अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता, वैसीही हमारी दशाहै हमारा संसार भी वडा संकुचित है हम इससे अधिक न देखसक्ते हैं और न देखनेकी सुधि है। वस इसी लिये हम असभ्य और दुराचारी वनजाते हैं यह हमारी वहुत वडी निर्वलता और शक्तिहीनता

है। छोटेसे छोटे कर्म्मकी भी उपेक्षा करना उचित नहीं है जिस मनुष्यमें बुद्धि नहीं है जो मूर्ख है उससे नाम पैदा करनेके लिये प्रसिद्धि लाभ करनेके लिये कर्म्म करनेके लिये कहिये, परन्तु हर मनुष्यको स्मरण रखना चाहिये कि हमारा कदम आगेकी ओर बढा चले और कर्म्म करतेहुए हम कर्म्मके प्रकृत भावको भी समझते जांय कि कर्म्म क्या है और इससे क्या अभीष्ट है ? कर्म्म करनेका हमको अधिकार है "किन्तु इसके परिणामका या फलका अधिकार नहीं है" फलकी कामना छोडदो परिणाम कौन चाहता है! जब कभी किसी आदमीको सहायता देनेका समय आवे कभी न सोचो कि उसका वर्त्ताव तुम्हारे साथ कैसा है, कभी फलकी ओर दृक्पात न करो यदि तुम भला या बडा कर्म्म करना चाहते हो तब यह न सोचो कि इसका क्या फल या परिणाम होगा।

इस प्रकारके कर्म्म करनेके लिये अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पडता है, अतुल पराक्रमकी आवश्यकता है हमको चाहिये कि सदा काम करते रहें बिना कर्म्मके एक क्षण रहना भी कठिन है, जिसको लोग शान्ति कहते हैं इसका समझना सुलभ नहीं है एक मनुष्य जीवनकी उधेडबुनमें हाथ पांव मारता हुआ जब कभी सामाजिक जीवन (Social Life) की धारामें पडता है तो गोता खाने लगता है, दूसरा मनुष्य वह है जिसने संसारत्यागका विचार कर लिया है हर वस्तु इसके समीप शान्तिका दृश्य दिखा रही है किसी प्रकारकी अशान्ति नहीं है कुछ एक धीमी २ आवाज सुनाई देती है यहां प्रकृतिका ही राज्य है पर्वतों पर पशु और पुष्पोंके सिवा कुछ दिखाई नहीं देता। परन्तु ये दोनों चित्र पूर्ण नहीं हैं। यदि कोई अयोग्य पुरुष झूंठे त्याग और वैराग्यकी शिक्षा प्राप्त कर त्यागी और विरक्त बनजाय तब, जब कभी संसारसागरकी लहरोंके थपेडे लगेंगे वह सहसा कुचल दिया जायगा. जो मछलियां समुद्रकी गहरे जलमें रहती हैं जब कभी किनारेपर आजाती हैं तब समुद्रकी लहरें उनको थपेडों द्वारा खण्ड २ करदेती हैं इनका कहीं पता नहीं मिलता। इसी प्रकार जो मनुष्य एकान्त वास कर कुछ कर्म नहीं करते जहां संसारके साथ चार आंखें हुईं नष्ट होजाते हैं। इसीप्रकार जो मनुष्य निशिदिन सांसारिक झगडोंमें फसा रहताहै वह भी एकान्त सेवनका अधिकारी नहीं। यह बातकभी

पागलखानेमें भेजे जानेके योग्यहै। आदर्श मनुष्य वह है जो एकान्तवास और चुपचाप रहनेपर भी तेजीके साथ कर्म करता रहै और अत्यन्त अशान्ति उत्पन्न करानेवाले कर्मोंमें रहते हुए भी एकान्तवास और मौन रहनेके प्रकृत भावको समझे हुए है, क्योंकि इसका मन वास्तवमें इसके एकान्त निवासका भवन बन गया है। इसने मनोवृत्तिनिरोध करनेके गुप्त रहस्यको समझ लिया है। नगरकी गलियोंमें होताहुआभी जहां शोरके कारण कान वहरे होते हैं वह शान्तचित्त रहताहै मानों वह किसी योगीकी गुफामें प्रवेश कररहा है। और जहां किसी प्रकारका शोर पहुंचही नहीं सकता। परन्तु वहांभी वह बडी तेजीके साथ दिन रात काममें लगा रहता है। यह कर्म्मयोगका रास्ता है। यदि तुमने इस गतिको प्राप्त करलियाहै तब तुम कर्म्मके भेदसे अनभिज्ञ नहीं हो।

किन्तु हमको आरम्भमें अनेक कामोंको हाथमें लेकर उन्नति करना है, जिस प्रकार धीरे २ हम बढते जायंगे, उसी प्रकार नित्यप्रति निस्वार्थ और सन्तोषी वनतेजायंगे, जिस कर्म्मको हमारे प्रारब्धने हमको सौंपाहै हमको उसीपर सन्तोष करना चाहिये और इसके सच्चे भावको समझकर उसीमें यथाशक्य चेष्टा करनी चाहिये, तब एक वर्षमेंही हमारी दशा बदलजायगी यानी जो कुछ स्वार्थके अंश मनमें होंगे वह इसी थोडेसे कालमें लय होजायंगे। और कुछही काल उपरान्त हम स्वार्थरहित एवं निष्प्रयोजन कर्म्म करने लगेंगे। यदि जो कभी २ स्वार्थ प्रकट भी होगा तब हम इसको बडी सावधानीसे नष्ट कर सकेंगे। यदि इस प्रकार काम होतारहा तब जिसप्रकार बहते हुए नदी नाले समुद्रमें पहुंचजाते हैं उसीतरह एक ऐसा समय हमारे जीवनमें आजायगा जब हम नितान्त स्वार्थसे शुद्ध होजायंगे। और जब हम निस्वार्थ होजायंगे, हमारी समस्त शक्तियां हमारे चहुंओर स्वयमेव एकत्र होने लगेंगी और तब सचाईके ज्ञानका आपही आप प्रकाश होजायगा और हम इसके अधिकारी बनजायंगे।

॥ इति प्रथम परिच्छेद समाप्त ॥

---

१ ईशोपनिषद्में लिखाहै कि:–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित्जगत्यां जगत् ॥
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १ ॥

द्वितीय परिच्छेद।

हर मनुष्य अपनी २ जगहपर बडा है।

सांख्यके मतसे प्रकृतिमें तीन गुण हैं संस्कृतमें इनको **सत्व रजस्** और **तमस्** कहते हैं। जिस समय इनका संसारमें काम होनेलगता है तव ये तीनों अलग अलग काम करते हैं तमस्में आकर्षणशक्ति है रजस्में भोग शक्ति है तेजी और सरगर्मी भी इसीका स्वभाव है इसीलिये संसारका हर परमाणु अपने केन्द्रसे अलग भागनेकी चेष्टामें लगा रहता है, सत्वमें शान्ति और जब्त है यही वह गुण है जो इन दोनोंको तौलकर इनको एक परिमाणमें रखता है।

प्रति मनुष्यमें ये तीन गुण प्रस्तुत हैं। जव तमस्की वृद्धि होती है तव ऐसे हम सुस्त और कायर होजाते हैं कि कोई चेष्टा नहीं कर सकते। सुस्ती या और किसी विचारके कारण ऐसे जकड़ जाते हैं कि हिलना डोलना दुस्तर होजाता है। किसी समय हममें स्फूर्त्ति आजाती है और हम तेजीसे काम करने लगते हैं यह रजस्-गुणका प्रभाव है कभी कभी हमको आनन्द अनुभव होने लगता है और हम शान्त होजाते हैं यह वह दशा है जव सत्वगुणकी प्रधानता होती है। संसारमें तीन प्रकारके मनुष्य मिलेंगे। पहिले तो वे जो सदा सुस्त रहतेहैं निद्रामें रत और शरीरसे आलस्यके कारण कुछ काम न लेनेवाले, दूसरे वे जिनको काम पसन्द है और वे तेजीके साथ अपने कर्त्तव्य पूर्तिमें लगे रहते हैं। तीसरे वे हैं जो शान्त हैं, प्रसन्न हैं और धैर्यवान् हैं। तीसरेमें सत्वगुण प्रधान है और उसने रजस् एवं तमस्को उचित परिमाणमें रखछोडा है। समस्त सृष्टिमें चाहे वह जड हो या चैतन्य चाहे मनुष्यहो या कोई और पर सवमें तीनों गुणोंकी सत्ता पाइएगा और इसीकारण नाना प्रकृतिके जन दिखाई देंगे, जो सत्व रजस्की न्यूनाधिकताको भली प्रकार प्रकट कररहे हैं।

कर्म्मयोगका सम्वन्ध प्रकृतिके इन्हीं तीन गुणोंसे है, यदि हम यह जानजायँ कि वे क्या हैं? और हमको किसप्रकार उनसे काम लेनाचाहिये तव निस्संदेह हमको अपने जीवनको उत्तम वनानेमें वडी सहायता मिलेगी। मनुष्य समाज की गठन कुछ ऐसी वनी है कि वह एक सूत्रमें नहीं वांधी जासकती उसको पृथक् पृथक् कक्षामें रखना वहुतही आवश्यक है हम सव लोग जानते हैं कि

सभ्यता क्या चीज है, "धर्म्म" किसको कहते हैं किन्तु इसके साथही हमको यह भी माळूम है कि हरदेशके निवासियोंमें सभ्यताकी समझ बूझमें भेद रहता है। जिस बातको तुम अपने देशमें अच्छा मानतेहो वही बात दूसरे देशवाले बुरी समझते हैं। यथा हमारे देशमें चचाकी लडकीसे विवाह करना बुरा समझाजाता है लेकिन यूरुपमें इसका खूब प्रचार है और इसको बुरा नहीं समझते एक देशमें लोग सालियोंसे विवाह करते हैं दूसरे देशमें यही कर्म्म निन्दित है। किसी देशमें केवल एकही विवाह करनेकी रीति है दूसरेमें दो २ और चार २ विवाह करलेते हैं। इसी प्रकार देशकालानुसार समाजके प्रायः सब विषयोंमें भिन्नता दिखाई देगी। तथापि हमारे चित्तोंमें यह विचार बैठगया है कि संसारमें सभ्यता एक ऐसे नियम पर निर्धारित होनी चाहिये जिसको सब मानते हों।

यही दशा धर्म्मकी भी है, अनेक जाति अनेक धर्म्मकी समझ रखती हैं एक देशमें जो काम पुण्य है दूसरेमें पाप है। जो काम यहां कियाजाता है दूसरे देशोंमें वही काम अच्छा नहीं समझाजाता, तथापि हमको सदा इच्छा रहती है कि धर्म्मकी स्थिति भी किसी सार्वभौमनियमपर होनी चाहिये, इसी प्रकार एक समाज किसी कामको अच्छा बताती है दूसरी इसीको निन्द्य ठहराती है। हमारे लिये केवल दोही मार्ग हैं या तो हम मूर्खोंके मार्गपर चलें जो समझते हैं कि सच्चामार्ग केवल एकही है और बाकी जो कुछ है वह झूठा और पाषंड है, या बुद्धिमानोंकी सडकपर चलें जो कहते हैं कि ज्यों २ मनुष्यकी बुद्धि और मस्तिष्क विशाल होते जायंगे त्यों २ इसके धर्म्म और आचारमें भी परिवर्त्तन होता जायगा। इसलिये सबसे आवश्यकीय बात यह है कि धर्म्म और आचारके लिये उसमें होनेवाले सुधारोंकी बातपर विचार करलें और अच्छी तरह समझलें कि जो धर्म्म या आचार जीवनके एक विषय या समयपर उचित है वही जीवनके दूसरे विषय या समयपर अनुचित या हानिकारक होता है।

दृष्टान्त द्वारा समझ लीजिये कि समस्त अध्यापकोंने यही पढाया कि "बुराईका मुकाबला न करो" Resist not evil जिसमें यह वृत्ति होगी वह आदर्श चरित्र होजायगा किन्तु यदि इस नियमका सबलोग परिपालन करनेलगें तो बडा अनर्थ हो। यदि यह नियम केवल एकही दिनके लिये वर्त्ताजाय तब भी

समाजके नष्ट होनेमें कुछ कसर वाकी न रहे । परन्तु तव भी हमारे मनमें इस शिक्षाकी सचाई खटकती रहती है कि बुराईका मुकावला अच्छा नहीं है । यह सभ्यताकी अन्तिम सीढी है किन्तु इसका वर्तजाना मनुष्योंके एक वहुत बडे समूहके नाशका हेतु होगा । यही नहीं प्रत्युत लोगोंको यह विश्वास दिलाना होगा कि तुम सदासे पथभ्रष्ट रहे थे, इनकी आत्माको निर्बल करना होगा और इसीके कारण उनके विचार, शिथिल और उनका मार्ग भ्रष्ट होजा-यगा, और यदि इस शिक्षा द्वारा अपनेको घृणित समझने लगें तव तो समझिये स्वयमेव उन्होंने अपना नाश करलिया । जो वात किसी एक पुरुषके लिये हानिकारक है वह एक जातिके लिये नाशकारक होगी ।

सवसे पहिले हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम अपनेसे घृणा न करें क्योंकि सवसे अधिक उन्नति करनेके लिये यह आवश्यक है कि हम अपने ही ऊपर भरोसा रक्खें फिर ईश्वरपर । जिसको अपने ऊपर भरोसा नहीं है वह ईश्वरपर भी भरोसा नहीं रख सकता । इस लिये हमको स्मरण रखना चाहिये कि मुख्य दशामें धर्म्म और कर्म्मका प्रयोजन और उसके करनेके अभिप्रायमें अन्तर होना चाहिये; और इसलिये जिस आदमीके जीवनका यह व्रत होगया है कि वह "बुराईका मुकावला नहीं करता" इसके लिये भी मुख्य २ अवसरोंपर बुराईको जड मूलसे आवश्यक होगा ।

आपमेंसे वहुत सज्जनोंने गीता पढी होगी युद्धक्षेत्रमें युद्धसे इन्कार करनेपर श्रीकृष्णजी अर्जुनको कपटी और कायर कहते थे, क्योंकि इसके विपक्षी इसके भाई वंधु थे और इस वातके कहनेका अवसर मिलगया था कि "बुराईका मुका-वला करना ही श्रेयस्कर है" यह एक वहुत वडी शिक्षा है जो हमको गीतासे मिलती है, हमको स्मरण रखना चाहिये कि दोनों प्रकारकी अन्तिम दशाएं एकसी हुआ करती हैं अत्यन्त प्रकाश होने पर भी हम नहीं देख सकते और यदि विल्कुल प्रकाश न हो तव भी नहीं देख सकते यही दशा आवाजकी है वहुत वारीक अवाज और वहुत वडी अवाज दोनोंको हम नहीं सुन सकते । इसी प्रकार शत्रुता और अशत्रुताके वीचका अन्तर है एक आदमी सुस्त और पोच है वह किसीसे शत्रुता या लडाई नहीं करसक्ता । दूसरेमें वल है जव चाहे

ऐसा घूंसा तानकर लगा सक्ता है कि विपक्षीकी वहीं इतिश्री होजाय परन्तु वह अपने शत्रुओंको क्षमा करदेता है एक मनुष्य निर्बलताके कारण किसीसे शत्रुता नहीं करता इसको अपने शत्रुता करनेके नियमसे कुछ लाभ नहीं पहुंचता। किन्तु यदि दूसरा मनुष्य जबर्दस्ती करता है तब वह पाप करता है। बुद्ध भगवान्ने अपने राजपाटको छोडदिया। यह सच्चा त्याग था किन्तु यदि कोई भिखारी विरक्त बन जाय तब क्या तुम इसको त्यागी कहोगे? जब कभी हम प्रेम या शान्तिके विषय पर विचार करनेलगें तब आवश्यक है कि हम पहिले यह सोचलें कि हममें शत्रुता करनेकी या भडकनेकी शक्ति भी है या नहीं यदि है और होनेपर भी हम शान्ति-प्रिय हैं तब वास्तवमें हम प्रेम और शान्तिके सच्चे अभिलाषी हैं। किन्तु यदि हममें शक्ति नहीं है और हम वृथा ही यह सोचते रहते हैं कि हम प्रेमके कारण किसीसे विरोध नहीं करते तब समझलो कि हम अपने आपको बहुत बडा धोखा देरहे हैं। कर्म्मयोगी इस बातको भलीप्रकार जानता है कि बुराईका विरोध न करना सभ्यताकी ऊंची सीढी है और जिसमें यह शक्ति वर्त्तमान है वह बडा शक्तिशाली है और आत्मिक उन्नतिमें वह आगे बढगया है परन्तु जबतक इस कक्षातक पहुंच न हो हर मनुष्यका कर्त्तव्य है कि वह बुराईके विरुद्ध लडता रहै, रातदिन उसीकी उधेड बुनमें लगा रहै, बुराईके साथ सदा हाथापाई और गुत्थमगुत्था होती रहै और जिस समय इसमें इतना बल आजायगा कि वह बुराईको कुचलसके उस समय इसका मुकाबला न करना उसका अनुपम गुण प्रकट करैगा।

मुझको एक समय एक ऐसे निरक्षर भट्टसे मिलनेका अवसर प्राप्त हुआ जो न कुछ जानता था और न जाननेकी उसको इच्छाही थी प्रकटमें इसका जीवन विक्षि-प्तोंकासा था उसने मुझसे पूछा "कि ईश्वर कैसे मिल सकेगा और मुक्तिका साधन क्याहै? मैंने उससे पूछा "तुम झूंठ बोल सकते हो?" उसने उत्तर दिया "नहीं।" तब मैंने कहा "अच्छा तो अब तुम झूंठ बोलना सीखो, क्योंकि लकडीके कुंदेकी तरह पडे रहने और पशुओंकासा जीवन व्यतीत करनेसे झूंठ बोलना ९७ गुना अच्छा है, तुम सुस्त हो, तुमको आत्मिक बल प्राप्त नहीं है। जिसे निष्काम कर्म्म कहते हैं उसको तो तुमको समझ भी नहीं है। तुम इतने मूर्ख

कि बुराई भी नहीं करसक्ते।" यह एक अन्तिम दशा थी और मैं हास्यभावसे कहरहा था मेरा यह अभिप्राय था कि शांति तक पहुंचनेके लिये मनुष्यको खूब तेज काम करना पडेगा।

हरप्रकारके आलस्यसे मनुष्यको बचना चाहिये। हर काममें लगारहना ही स्पष्ट बताता है कि आलस्य छोडदो सब बुराइयोंसे चाहे वे शारीरक हों या आत्मिक विरोध करो और जब तुम इस चेष्टामें सफल मनोरथ होजाओगे तब शांति स्वयमेव प्राप्त होजायगी। यह कहना कि किसी प्रकारकी बुराईसे विरोध न करो बहुत आसान है परन्तु इसको कार्य्यमें परिणत करना तलवारकी धारपर चलना है। माना कि सम्भव है कि हम दिखलावेके लिये प्रकटमें मुंह फेरलें परन्तु वास्तविक दशा क्या है मन क्या कहता है, मनमें बार २ यही विचार उत्पन्न होता है कि बुराईको कुचल देनाही अच्छा है। यदि तुमको सम्पत्तिकी आवश्यकता है और साथही तुम यहभी समझते हो कि संसारकी दृष्टिमें धनलोभी मनुष्य बुरे हुआ करते हैं तब स्मरण रखो तुम कदापि धनोपार्जन करनेके लिये हाथ पैर न मार सकोगे परन्तु मन, भीतरही भीतर कुढता रहैगा कि यदि धन पास होता तो समय बडे आनन्द में व्यतीत होता। यह सबसे बडी बुराई और अपने साथ कपट है। सांसारिक कामोंमें डुबकी लगाओ जब इसके भोग विलास भोगचुकोगे और इसकी विपत्तियां भी सह लोगे तब स्वयमेव "त्याग" आजायगा। इस समय तुम अवश्य शांत बनोगे इस समय अपनी इच्छानुसार बल विद्या या अधिकार जो चाहो प्राप्त करो जब इच्छा भर जायगी तब ऐसा समय स्वयं आजायगा जब तुमको ये सब मिथ्या दीखने लगेगा, यावत् वासना दूर न होगी तुम्हारे लिये शांत धीर एवं त्यागी होना अतीव दुस्तर है हजारों वर्षसे शांति और त्यागका उपदेश संसारको सुनाया जारहा है लोग बालकालहीसे त्याग और शान्तिके महत्वके लेक्चर सुनते हैं किन्तु लाखोंमें कदाचित् एकही मनुष्य निकलेगा जो शान्तिका जीवन व्यतीत करता हो, मैंने अपने जीवनमें बीस आदमी भी नहीं देखेहैं जो शान्त हों और बुराईके विरुद्ध युद्ध न करते हों माना कि मैं आधे संसारसे अधिक यात्राकर चुका हूँ।

हर मनुष्यको अपने किसी उद्देश्यको सन्मुख रखकर उसकी चेष्टामें लगा रहना चाहिये, यह उन्नतिका निष्कण्टक मार्ग है, दूसरोंके उद्देश्यको अपने सन्मुख रखनेसे उन्नति नहीं होसक्ती, मानलो कि हम किसी अल्प-वयस्क बालकसे यह आशा करैं कि वह २० कोस पैदल चलाजाय तब कैसी मूर्खता होगी. या तो बच्चा मरजायगा और या सहस्रों बालकोंमेंसे एक बालक रींगता हुआ यात्रा पूरी करैगा और वह भी अर्धमृत होजायगा। संसारमें लोग वृथा इस तरहकी कार्य्यवाही करतेहैं हर समाजके स्त्री पुरुष एकही प्रकृतिके नहीं होते न उनमें एकसी शक्ति होती है इसलिये उनके उद्देश्य भी भिन्न २ होंगे और इस लिये हमें उनके बुरा भला कहनेका कब अधिकार है। जिसको वे भला समझतेहैं करें। तुम्हारे विचारसे मेरी जांच करना ठीक नहीं इसी प्रकार मेरे विचारसे तुम्हारी जांच करना भूल है। सेबके वृक्षको बर्गदके वृक्षसे क्या सम्बन्ध सेबका वर्गदसे कुछ सम्बन्धही नहीं सेबके वृक्षको नापनेके लिये सेबके वृक्षका पैमाना होना चाहिये और इसी प्रकार बर्गदके वृक्षके लिये बर्गदका पैमाना होना आवश्यक है। बस यही दशा हम सबकी भी है।

सृष्टिमें अन्तर भी है और समानता भी। चाहैं स्त्री पुरुष कितनीही भिन्न प्रकृतिवाले हों कितनेही रूप रंगवाले क्यों न हों; तथापि उनमें एक प्रकारकी समानता है। स्त्री पुरुषोंके चालचलन और उनके कामोंमें भेद दृष्टिगत होगा इसीलिये हर मनुष्यका एकही पैमाना न करना चाहिये जो जैसा है उसकी नाप, वैसीही होनी चाहिये "टके सेर भाजी टके सेर खाजा" अन्धेर खातेकी बात है। ऐसा होनेपर यह परिणाम होगा कि हर मनुष्य अपनेसे घृणा करने लगेगा और उसके धार्मिक कामोंमें अनेक विघ्न उपस्थित होजायंगे। हमारा यह धर्म्म होना चाहिये कि हम हरमनुष्यको उसके आइडियल (Ideal) के अनुसार शिक्षा देतेरहें और जहांतक सम्भव हो उसीके विचार और रंग-ढंगके अनुसार उसको सत्पथपर पहुंचानेकी चेष्टा करें।

हिन्दुसाहित्य, बहुत प्राचीन समयसे इस बातसे परिचित है। उनके श्रुति स्मृति तथा अन्य धर्म्म एवं नीतिशास्त्रोंमें विविध समाजोंमें रहनेवाले मनुष्योंके

लिये भिन्न २ नियम बताए गएहैं। हमारे यहां गृहस्थीके धर्म्म संन्यासीके धर्म्मसे नितान्त भिन्न हैं, इसी प्रकार ब्रह्मचारीके नियम वानप्रस्थके नियमोंसे बिलकुल नहीं मिलते।

हिन्दुओंकी पवित्र पुस्तकोंके अनुसार हर आश्रमके जीवनके काम एक दूसरेसे सदैव पृथक् समझे गये हैं, हिन्दू अपना जीवन ब्रह्मचर्य्य आश्रमसे आरम्भ करता है और इसकी समाप्ति पर विवाह करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है, फिर पचास वर्षकी आयु होजाने पर एकान्तवास कर आत्मविचार करता है और जीवनके अन्तिमभागमें "संन्यासी" होकर संसारको त्याग देता है। जीवनके इन चारों आश्रमोंके धर्म्म भिन्न भिन्न हैं किसी एकका जीवन किसी दूसरेसे बडा नहीं है गृहस्थाश्रम उतनाही आवश्यक है जितना ब्रह्मचर्य्य, किन्तु दोनों अपने २ धर्म्मको पूर्ण रीतिसे पालते हों तब। सिंहासन पर सुशोभित राजा भी उतना ही तेजस्वी है जितना गलियोंमें घूमनेवाला भिखारी। जरा इसको सिंहासनच्युत करके भिखारीका काम देदीजिये और देखिये वह किस प्रकार काम करता है। इसीप्रकार भिक्षुकको राज्यासन पर बिठा दीजिये और फिर देखिये कि इसका ढंग क्या है यह कहना कि गृहस्थीसे संन्यासी अतिशय उत्तम एवं उच्च है बिल्कुल वृथा और निरर्थक बात है। घरमें रहकर ईश्वरोपासना करना जंगलके सुखपूर्ण जीवनसे महादुस्तर है आजकल हिन्दोस्थानमें केवल दो आश्रम अर्थात् गृहस्थी और सन्यासी रहगए हैं। गृहस्थी विवाह करके अपना घरका काम काज करताहै और संन्यासी अपना जीवन धर्म्मसम्बन्धी पुस्तकावलोकन, व्याख्यान, और उपदेशमें व्यतीत करदेता है। अब विचारिये किसका जीवन कठिन है। मैं आपके मनोरंजनकेलिये "महा निर्वाण तंत्र"के कुछ श्लोकोंका अर्थ सुनाता हूं जिससे ज्ञात होगा कि गृहस्थी बनना कितना कठिन काम है।" गृहस्थी ईश्वरभक्त हो और वह ईश्वरीय ज्ञानको अपने जीवनका उद्देश समझे तथापि वह अपने कर्त्तव्योंको भी पालन करता रहै, वह जो काम करे ईश्वरके लिये करै"।

"इस संसारमें किसी कामको करके उसके फलकी आकांक्षा न करना महान् कठिन है किसीको सहायता देना और साथही इस बातकी कभी अभिलाषा न

करना कि वह हमको धन्यवाद दे सुगम नहीं है। काम करना परन्तु प्रसिद्धि या धनके लोभको मनमें न आनेदेना सब किसीका काम नहीं होसक्ता। कायरसे कायर मनुष्यको नाम और दामके लिये जोश आजाताहै। जब समाज किसी मूर्खसे मूर्ख मनुष्यकी प्रशंसा करने लगता है तब वह भी बडे बडे काम करनेको प्रस्तुत होजाता है। किन्तु वह मनुष्य जो निष्काम होकर शुभ काम करता है और किसीकी प्रसन्नता या अप्रसन्नताकी चिन्ता नहीं करता वास्तवमें निवृत्तिका अच्छा उदाहरण है। गृहस्थीका धर्म्म धनोपार्जन करना है, किन्तु इसको विश्वास रखना चाहिये कि इसको झूंठ या पापसे कुछ प्राप्त नहीं होगा न उसको छूट मारसे लाभ होगा। उसको स्मरण रखना चाहिये कि उसका जीवन ईश्वर भक्तिके लिये है और इसका धर्म्म है कि दीनोंकी सहायता करता रहै।"

"माता पिता ही देवता हैं, यह समझकर उनको प्रसन्न रखनेके लिये मनुष्यको सदा दत्तचित्त रहना चाहिये, यदि माता पिता प्रसन्न हैं तब ईश्वर भी प्रसन्न होगा, वह वास्तवमें सुपुत्र है जो अपने माता पितासे कटु वचन नहीं बोलता। माता पिताके समक्ष हंसी दिल्लगी करना निषिद्ध है। न किसी बातके लिये हठ क्रोध या जल्दी करना ही उचित है। पुत्रको उचित है कि माता पिताके सामने बहुत सभ्यतासे रहै और जबतक वे बैठ न जांय तबतक खडा रहै।"

यदि कोई गृहस्थ बिना अपने माता पिता पुत्र, स्त्री, भाई और अतिथिको दिये हुए भोजन करता है या वस्त्र पहिनता है तब पाप करता है। माता पिता ही इसके जन्मदाता हैं इसी लिये इसको माता पिताके प्रसन्न करनेके लिये यदि हजार विपत्तियोंको भी झेलना पड़े तब प्रसन्नतासे सहन करना चाहिये।

इसी प्रकार इसकी स्त्रीके और इसके कर्त्तव्य हैं, इसकी भी हर प्रकार शुश्रूषा करनी चाहिये और चाहे वह कितने ही विपत्ति सागरमें मग्न हो उसके ऊपर क्रोध न करना चाहिये, इसकी भी माताके समान शुश्रूषा करे और अन्य स्त्रियोंको भी मातृसदृश समझे यदि इसके मनमें भी पाप विचार उत्पन्न होता है तब भी वह नरकगामी होगा। एकान्तमें भी किसी स्त्रीका स्पर्श न करै, अपनी स्त्रीके अतिरिक्त और किसीके वस्त्र न छुए।

"स्त्रियोंके सन्मुख वह कभी अनुचित वार्त्तालाप न करै और न अपने बलकी प्रशंसा करै और यह भी न कहै कि "मैने यह किया मैने वह किया"

गृहस्थको उचित है कि अपनी स्त्रीको धन, आभूषण और प्रेम द्वारा सदा प्रसन्न रक्खे और कभी ऐसा कर्म्म न करै जिससे इसके चित्तको दुःख पहुंचे जिस पुरुषने अपनी पतिव्रता स्त्रीका प्रेम प्राप्त करलिया मानो उसने धर्म्म कर्म्ममें सफलता प्राप्त करली।

बालकोंके साथ इसका वर्त्ताव इस प्रकार हो:—

"जबतक लडकेकी अवस्था ४ वर्षकी न होजाय उसका लालन पालन ध्यानपूर्वक करना चाहिये, तदनन्तर जब वह विद्योपार्जन कर चुके और उसकी अवस्था २० वर्षकी होजाय तब "पुत्रं मित्रवदाचरेत्" उसको पुत्र न समझ कर मित्रके समान व्यवहार करे क्योंकि अब वह भी गृहस्थ होगया, इसी प्रकार पुत्रियोंका लालन पालन करै और उनको उचित शिक्षा देकर उनका विवाह करदे और विवाहमें उनको भी आभूषण और धन दे।"

इसकेबाद उसका धर्म्म है कि अपने भाई और बहिनों तथा उनकी संतानोंकी रक्षा करे, अपने कुटुम्बी और नौकरों और मित्रोंका धनसे मान करै इसका यह भी कर्त्तव्य है कि ग्रामनिवासी, निर्धन और दीन मनुष्योंकी रक्षा करे यदि गृहस्थी धनवान् है और वह अपने कुटुम्बी एवं दीनोंकी सहायता नहीं करता तब वह मनुष्य नहीं किन्तु पशु है।

खाने, पीने, वस्त्र पहिनने, शरीरको सजाने, मांग काढने या बाल संवारनेके कामोंमें आवश्यकतासे अधिक ध्यान न देना चाहिये गृहस्थ मनुष्यको शरीर और मन दोनोंको शुद्ध[1] रखना चाहिये और सर्व काल कर्म्मोंमें लगा रहना चाहिये।

"अपने शत्रुओंके सन्मुख गृहस्थको वीरोंकी समान काम करना चाहिये, उनको दबाते रहना चाहिये" यही इसका धर्म्म है यह नहीं कि कोनेमें बैठकर रोया करे और बुराईका सामना न करे या वृथा अनुचित बकने लगे। यदि

१ अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।

वह शत्रुओंको वीरतासे पराजित नहीं करता तब वह अपना धर्म्म पालन नहीं करता। परन्तु मित्र और कुटुम्बियोंके सामने इसको मेमने (बकरीके बच्चे) की समान नम्रतासे पेश आना चाहिये।

"गृहस्थको चाहिये कि वह बुरे आदमीकी प्रतिष्ठा न करे क्योंकि यदि वह बुरे आदमीकी प्रतिष्ठा करता है तब वह उसकी बुराईमें सम्मिलित होताहै और यदि वह योग्य पुरुषोंकी प्रतिष्ठा नहीं करता तब इसकी बडी भूल है। मित्रता खूब सोच विचारकर करनी चाहिये यह नहीं कि हर जगह मित्र ही करता फिरे, जिससे इसकी मित्रता हो उसके साथ इसको एक संरक्षकी भांति रहना चाहिये इसको विचार रखना चाहिये कि इसके मित्र कैसे मनुष्योंसे मिलते हैं इन सब बातोंको विचार कर उसको मित्रता करनी चाहिये।"

"तीनबातोंपर गृहस्थको कभी न बोलना चाहिये। एक अपनी प्रसिद्धि दूसरे अधिकार और तीसरी धनकी बडाई। जो बात भेदकी हो उसको भी कभी प्रकट न करै।"

यदि इसने भूलकी है और यदि वह ऐसा काम कर रहा है जिसमें सफलताकी आशा नहीं है तब चाहिये कि इसका वृत्तान्त सर्वसाधारणमें न कहे और न पबलिकमें कभी इसका जिक्र आने दे "संसारको किसीकी भूल दिखानेसे क्या लाभ है? जो होगया, सो होगया जो कुछ इसने किया है उसके लिये दण्ड पायेगा गृहस्थीकी दशामें, मनुष्यको अपने लिये भलाई करना चाहिये। संसार उनके साथ सहानुभूति रखता है जो शक्तिशाली और योग्य होते हैं।"

"यह कभी न कहना चाहिये कि "मैं गरीब हूं" या "धनवान् हूं" सम्पत्ति या विपत्तिका वृत्तान्त घृणित होता है, वह अपनी बातें आपही तक रखे, बस यही उसका धर्म्म कर्म्म है" यह संसार सब ज्ञानकाही नहीं है प्रत्युत कर्म्मका भी संसार है और जो मनुष्य कर्म्म नहीं करता वह अज्ञानी और पापी है।

"गृहस्थी" समाजका आभूषण है, उसीकी कमाईसे सबका काम चलता है। दीन स्त्री पुत्र भाई आदि सब उसीके आधीन हैं ये स्वयं कुछ नहीं कर सकते। इसलिये इसके आधीन कई प्रकारके कर्त्तव्य हैं जिनका पालन करना उसके लिये आवश्यकीय है, अपने उद्देशको अपने संमुख रखना चाहिये, और इसीलिये

कितना आवश्यकीय है कि यदि उससे कोई भूल होगई है तब उसको सर्व-साधारणमें प्रकट न करे। और न अपनी असफलतापर दुःखी हो । इस प्रकारकी निर्बलता अनावश्यक ही नहीं है प्रत्युत उसको अपने कर्त्तव्यसे सुस्त करनेवाली है । इसको दो पदार्थ प्राप्त करनेके लिये उद्यत रहना चाहिये प्रथम ज्ञान दूसरे सम्पत्ति । यह इसका धर्म्म है । और यदि वह धर्म्मका पालन नहीं करता तब उसकी कुछ प्रतिष्ठा न होगी । जो गृहस्थ सम्पत्तिके लिये उद्योग नहीं करता, वह संसारमें असभ्य है । यदि सुस्त है और सुस्तीसे अपना जीवन काटता हैं तब पापी है । क्योंकि इसकी कमाईमें सैकडोंका भाग है, यदि वह धनोपार्जन करता है तो सैकडोंको लाभ पहुंचता है । यदि इस नगरके मनुष्य सैकडोंकी संख्यामें धनवान् नहीं होते या धनवान् होनेकी चेष्टा नहीं करते, तब यह सभ्यता कहांसे आती ? और अनाथालय आदि कैसे वनते ?

इस दशामें, धन कमाना बुरा नहीं है, क्योंकि सम्पत्ति दानके लिये है । गृहस्थी, जीवन और समाजका केन्द्र है धन कमाना और अच्छे कर्म्ममें खर्च करना इसके लिये एक प्रकारकी उपासनाहै, क्योंकि जो गृहस्थ उचित रीतिसे शुभ काम करनेके लिये धन कमाता है वह एक प्रकारसे मोक्षके लिये चेष्टा कर रहा है । उसमें और गुफामें वैठनेवाले योगीमें कुछ भी अन्तर नहीं है । दोनों हीमें त्याग और ईश्वरभक्ति है । केवल कर्म्म करनेका विधान भिन्न २ है ।

"गृहस्थको हर प्रकारकी प्रसिद्धि प्राप्त करनी चाहिये । हां ! जुआ खेलने, झूंठ वोलने और दूसरोंको कष्ट पहुंचानेसे सदा बचा रहना चाहिये ।"

प्रायः मनुष्य ऐसा काम करते हैं जिसके पूर्ण करनेमें वे असमर्थ हैं । परिणाम यह होता है कि वे, धोखे और कपटसे कामलेने लगते हैं यह वडी भारी भूल है। साथही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस परिणामको हम अपूर्ण समझते हैं वही वास्तवमें अन्तको पूर्ण निकलता है ।

"गृहस्थको सच वोलना चाहिये । नम्रतासे सब काम करने चाहिये, सत्य भी प्रियहो, जिसको सुनकर मनुष्योंका चित्त प्रसन्न हो और जिसके द्वारा मनुष्योंका भला हो । अपनी प्रसंशा और दूसरोंके छिद्र वर्णन करना महापाप है"

१ अजरामरव त्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् । २ New York न्यूयार्क ।

"गृहस्थको चाहिये कि वह पानीके लिये तालाब खुदवाये, सडकोंके किनारे वृक्ष लगवाये । अनाथालय बनवाये और क्या मनुष्य क्या पशु, सबकी भलाईके लिये प्रयत्न करे । नदियोंपर पुल बनवा दे । यदि गृहस्थी इसप्रकार कर्म्म करता है तब वह पूर्ण योगी है" ।

"तेजीके साथ काम करना "कर्म्मयोग" का सबसे बडा साधन है, यह भी लिखा है कि सच्चा देशहितैषी एवं स्वज्ञाति सेवी गृहस्थ भी उसी पदको प्राप्त होता है जिसको योगीजन चाहते हैं" इससे प्रकट है कि एकका धर्म्म दूसरेके धर्म्मसे भिन्नहै । यह कभी न कहना चाहिये कि एकका धर्म्म अच्छा और दूसरेका बुरा है । अपनी २ जगह पर सब बडे और महत्वपूर्ण हैं । हमको अपनी दशाके अनुसार अपने कर्तव्यों और धर्म्मोंका पालन करना चाहिये ।

इन सब बातों पर विचारनेसे एक भाव उत्पन्न होता है वह यह है कि सब प्रकारकी दुर्बलता पाप है, यह एक मुख्य शिक्षा है जो हमको धर्म्म और कर्म्म-की (Philosophy) फिलोसोफीसे मिलती है । यदि तुम वेदोंका अवलोकन करो तब तुमको ज्ञात होगा कि वेदोंने निर्भय रहनेका सदैव उपदेश किया है । "भय" हमारे मनकी सबसे बडी निर्बलता है । मनुष्यको चाहिये कि निर्भय होकर मानापमानके विचारको छोडकर अपने काममें लगा रहे ।

जो मनुष्य संसारको त्यागकर ईश्वरकी उपासना करता है उसको यह कभी न विचारना चाहिये कि जो पुरुप संसारमें रहकर संसारका उपकार कर रहे हैं वह ईश्वरकी उपासना नहीं करते और न गृहस्थियोंको यह समझना चाहिये कि जो विरक्त होगये हैं वह केवल पेटपालू और दुराचारी ही हैं । हर मनुष्य अपनी २ जगहमें बडा है । मैं इसको एक कथानक द्वारा समझाता हूँः—

"एक राजा था जब कोई संन्यासी इसके पास आता तब वह पूछता कि गृहस्थ अच्छे हैं या विरक्त ? बहुतसे बुद्धिमानोंने इस प्रश्नको हल करना चाहा, कुछने कहा "संन्यासी उत्तम है" उनसे वह राजा कहता कि "इसको युक्ति-द्वारा सिद्ध करो" यदि वे इसको युक्तिद्वारा सिद्ध न कर सकते तब वह उनको गृहस्थाश्रममें भरती होनेके लिये विवश करता, कुछ कहा करते कि गृहस्थी

अच्छे हैं" इनसे भी राजा प्रमाण मांगता और प्रमाण न मिलनेपर इनको भी गृहस्थी बना देता था।

एक नवयुवक संन्यासीने इस वृत्तांतको सुना और वह राजाके पास आया, राजाने इससे भी वही प्रश्न किया, इसने उत्तर दिया "राजन्! अपनी अपनी जगह पर सब अच्छे हैं" राजाने कहा इसको सिद्ध करो, संन्यासीने कहा बहुत अच्छा, मैं इसको सिद्ध करूंगा, परन्तु कुछ दिनोंके लिये आपका मेरे साथ रहना आवश्यक है, राजाने स्वीकार करलिया और संन्यासीके साथ अपनी राजधानीसे चलदिया। ये दोनों एक और राजाके राज्यमें पहुंचे वहांका राजा अपनी कन्याका स्वयंवर कररहा था, उस दिन उस राजाकी राजधानीमें बडी शोभा थी, जहाँ तहाँ बाजे बजरहे थे; हर मनुष्य प्रसन्नवदन था, दूर २ के राजकुमार आरहेहुए थे. चहुंओर आनंद ही आनंद दिखाई देता था।

पहिले हिन्दोस्थानमें यह रीति थी कि राजकुमारियां अपनी इच्छानुसार पति चुन लेती थीं. किसीको स्वरूपवान्, किसीको विद्वान्, किसीको बलवान्, और किसीको धनवान् पतिके प्राप्त करनेकी अभिलाषा हुआ करती थी। राजकुमारी हाथमें जयमाल लिये हुए समाजमें आती थी जहां सब देशदेशान्तरोंके राजकुमार एकत्र होते थे, अपनी इच्छानुसार जिसको वह जयमाल पहिना देती थी वही उसका पति होजाया करता था। इसबार भी राजकुमारी उसी प्रकार घूमरही थी। राजकन्या बडी स्वरूपवती थी. वह सब ओर घूमआई किन्तु उसको कोई पसन्द नहीं आया स्वरूपवती होनेके अतिरिक्त इस स्वयम्वरमें एक यह मुख्य बात थी कि जिसको राजकन्या पति बनाये उसको वहांका आधा राज्य तत्काल मिलजायगा और शेष आधा राज्य राजाके मरनेपर मिलेगा। उसने कईबार चक्कर लगाए परन्तु उसकी दृष्टिमें कोई नहीं समाया। दैवयोगसे इसकी दृष्टि एक संन्यासी पर पडी वह इसके सुन्दर स्वरूपको देखकर मुग्ध होगई और इसके गलेमें जयमाल डालदी, संन्यासीने घबडाकर कहा "यह क्या अनुचित वार्ता है, मैं संन्यासी हूँ, मेरा विवाह नहीं होसकता" यह कह, उसने माला गलेसे निकालकर फेंकदी। राजाने समझा यह निर्धन है और गृहस्थके धंधोंसे घबडाता होगा इस लिये उसको सम्बोधितकर कहा

"इस कन्याके साथ तुमको आधा राज्यभी मिलेगा" राजकुमारीने फिर दोबारा उसको जयमाला पहिनादी, उसने फिर उतारकर कहा "मैं विवाह करना नहीं चाहता" और वहांसे भाग निकला।

राजकुमारी संन्यासीपर इतनी आसक्त होगई थी कि "उसने प्रतिज्ञाके साथ कहा या तो मैं इसके साथ विवाह करूंगी अन्यथा प्राणात्याग दूंगी" और वह भी इसके पीछे भाग निकली। राजा और संन्यासी भी जो इस दृश्यको देख रहे थे इनके पीछे चले, वह संन्यासी कई मील तक भागा हुआ चला-गया और अन्तमें एक जंगलमें पहुंचकर अन्तर्धान होगया और राजकुमारीको नहीं दीखसका, यह एक वृक्षके नीचे बैठकर बुरी तरह रोनेलगी, राजा और इसका साथी संन्यासी दोनों इसके निकट आये, इसको आश्वासन करनेलगे "बेटी! अब रोना वेकार है वह मनुष्य अब हाथ न आयेगा, इस समय संध्याकाल होगया है अन्धेरी भी होचली है प्रातःकाल हम तुमको नगरमें पहुंचादेंगे रात्रिभर इसी वृक्षके नीचे आराम करो"

इस वृक्षके ऊपर एक पक्षीका जोडा अपने तीन छोटे २ बच्चों सहित रहा-करता था। इसने इन आदमियोंको देखा। नरने मादासे कहा "प्रिये! अब क्या करना चाहिये, शरदृतु है ये हमारे अतिथि हैं इनके लिये आग लाना चाहिये" इतना कह कर नर उडगया और अपनी चोंचसे लकडियां इकट्ठी कर कहींसे अग्निकी एक चिंगारी लाकर उसमें रखदी, आग जलने लगी, और इन तीनों प्राणियोंको सर्दीके दुःखसे छुट्टी मिली। पक्षीने फिर स्त्रीसे कहा "प्रिये अब क्या करना चाहिये? अतिथि आए हुऐ हैं और भूखे हैं, हम गृहस्थी हैं, हमको धर्म्मकी रक्षा करनी चाहिये इसलिये मैं अग्निमें कूदता हूं जिससे कि ये मेरे घर आकर भूखे न रहें" इतना कहकर वह अग्निमें कूदपडा, राजा और संन्यासीने इसको बचाना चाहा परन्तु वह बडा चतुर था, इसप्रकार अग्निमें गिरा कि गिरते ही स्वाहा होगया।

उसकी स्त्रीने अपने पतिकी सब दशा देखी इसने अपने मनमें कहा "ये तीन आदमी हैं एक पक्षीके कबाबसे इनका क्या भला होगा मैं इस घरकी

गृहिणी हूं मैंभी क्यों न अपने पतिका अनुकरण करूं जिससे कि, ये मेरे मांसको खाकर क्षुधा निवारण करलें " यह सोचकर वह भी अग्निमें गिरकर भस्म-सात् हो गई ।

तीनों बच्चोंने अपने माता पिताकी वलि देखी तब वे भी आपसमें कहने लगे " मां बापने तो धर्मका पालन किया, अब हम इस घरके स्वामी हैं हमारा धर्म है कि हम अतिथि सेवा करें भोजन अभी तक कम है चलो, हम भी चलकर गिरपडें जिससे कि इनकी क्षुधा निवृत्ति होजाय " यह कह वे भी आगमें गिर-कर भस्म होगये ।

उन तीनों मनुष्योंने इनका मांस नहीं खाया किन्तु उन पक्षियोंके कर्म्मको देखकर उन्हें बडा कौतूहल हुआ, ज्यूं त्यूं करके रात काटी प्रातःकाल होनेपर राजकुमारीको उसके नगरमें पहुंचादिया तदनन्तर संन्यासीने राजासे कहा महाराज ! आपने देखा हर मनुष्य अपनी २ जगह पर महत्व रखता है यदि आप गृहस्थी बनकर इन पक्षियोंके समान रहसक्ते हो और दूसरोंके लिये अपने को वलि देसकते हो तो इससे उत्तम और क्या बात है । यदि आप संसार छोडना चाहतेहैं तब इस नवयुवक संन्यासीकी विरक्ततासे शिक्षा ग्रहण कीजिये जिसने एक सुन्दरी राजकन्या और विशाल राज्यपर लात मारदी यदि गृहस्थी बनना है तब अपना जीवन दूसरोंके उपकारके लिये देडालिये भला होगा । और यदि विरक्त बनना अभीष्ट है तब रूप, रंग, धन, सम्पत्ति, बल और शक्ति पर दृग्पात न कीजिये, अन्तर्मुखीन होकर अपने पर ही दृष्टि डालिये, उसीका विचार कीजिये सब ओर वासना खींचकर मनको आत्माकी अग्निमें स्वाहा करदीजिये राजन्! दोनों अपनी २ जगह पर बडे हैं परन्तु एकका कर्त्तव्य दूसरेके कर्त्तव्यसे नहीं मिलता । हां ! परिणाम दोनोंका एक है किन्तु साधनोंमें भिन्नता है इसी लिये कहता हूं कि हर मनुष्य अपनी २ जगह पर बडा है ।

इति द्वितीय परिच्छेद समाप्त ।

तृतीय परिच्छेद।

निष्काम उदारता कर्म्म पूर्त्ति करनेका गुप्त रहस्य है।

दूसरोंको शारीरक सहायता देना उनकी शारीरक आवश्यकताओंका पूरा करते रहना बहुत बडी बात है किन्तु वह सहायता जो आवश्यकताके अनुसार दी जाती है अधिक महत्व रखती है और जितना इसका फल अपने प्रभावानुसार अति दूर २ स्थानोंमें पहुंचनेवाला होगा उसका महत्व उतनाही बढता जायगा। यदि किसी मनुष्यकी आवश्यकता एक घण्टेके लिये दूर करदी जाय तब यह अवश्य साहाय्य कहलायेगा किन्तु यदि इसकी आवश्यकता एक वर्षके लिये दूर करदीगई तब इससे यह हजारों गुना अच्छा है और एक घण्टेकी सहायताकी अपेक्षा उसको बहुत अधिक सहायता दीगई परन्तु यदि इसकी आवश्यकता सदाके लिये दूर करदी गई तब इसका क्या कहना है। यह सबसे प्रबल, सबसे बडी और सबसे अधिक लाभदायक सहायता है, आत्मिक ज्ञानही एक ऐसा पदार्थ है कि जिससे सदाके लिये हमारी समस्त वित्तियोंकी इतिश्री होजाती है अन्य प्रकारके ज्ञानोंसे केवल कुछ समयके लिये सहायता मिलती है और यदि इसकी प्रकृति ही बदल दीजाय तब इसकी सब आवश्यकतायें सदाके लिये लुप्त होजायँगी केवल आत्मज्ञानही एक ऐसी चीज है जिससे मनुष्यके समस्त दुःखोंकी अन्त्येष्टि होजाती है, इसलिये आत्मिक सहायता सब सहायताओंसे महत्वपूर्ण और अमूल्य सहायता है। जो मनुष्य इस प्रकारकी सहायता देसक्ता है वह मनुष्य सच्चा शुभचिन्तक और संरक्षक है और इसलिये हम देखते हैं कि वे महानुभाव जिन्होंने मनुष्योंको आत्मोपदेश किया है बहुत बडे शक्तिशाली हुए हैं और उनकी सहायता बहुत लाभदायक प्रतीत हुई है। आत्मज्ञान ही हमारी समस्त चेष्टाओंका फल होना चाहिये, यदि कोई आत्मज्ञानी किसी सांसारिक विषयके लिये भी इच्छा करे तब वह बहुत शीघ्र प्राप्त करसकता है और यदि मनुष्यमें आत्मभाव उत्पन्न नहीं हुआ है तब इसकी शारीरक और सांसारिक किसी आवश्यकताके भी दूर होनेका विश्वास नहीं है आत्मिक सहायताके बाद बुद्धि और मस्तिष्क सम्बन्धी ज्ञानकी सहायताका नम्बर है इस प्रकारकी

सहायता भोजन या वस्त्र देनेसे कहीं अधिक वडी है प्रत्युत किसी मनुष्यको जीवनदान देनेसे भी इस प्रकारकी सहायता वडी है क्योंकि मनुष्य जीवनका मुख्य उद्देश्यही ज्ञान प्राप्ति है अज्ञान मृत्यु है, ज्ञान जीवन है । यदि मनुष्य अज्ञानमें है और वह अन्धकारमें टक्करें मारता फिरता है तब इसका जीवन वृथा है इसके पश्चात् फिर शारीरक सहायताका नम्बर आता है इसलिये हमको दूसरोंकी सहायता करते समय इस भूलमें न पडना चाहिये कि शारीरक सहायता ही सब कुछ है शारीरक सहायता अन्तिम सहायता है । क्योंकि इससे सदाके लिये शांति प्राप्त नहीं होती । भूंखका दुःख भोजन करलेनेसे दूर होजाता है किन्तु फिर भूंखकी यंत्रणा वापिस आजातीहै हमको केवल उस समय शान्ति मिल सकती है कि जब सदाके लिये हमारी आवश्यकतायें दूर होजांय फिर हमको भूंख प्यास दुःख दारिद्र्य कोई भी दुःखी न कर सकेगा । जिस सहायतासे मनुष्यमें आत्मिक भाव उत्पन्न होजाय और वह आत्मिक बलको प्राप्त होकर बलवान् बनजाय वही सबसे अधिक लाभदायक और अमूल्य है इसके बाद ज्ञान और तत्सम्बन्धी सहायताका नम्बर है और तदनंतर शारीरक सहायता है ।

केवल शारीरक सहायता देनेसे संसारकी विपत्ति और दुःख कम नहीं होसकते । यावत् मनुष्यके गुण और स्वभावमें परिवर्त्तन न हो, तबतक शारीरक दुःख अवश्य सताते रहेंगे और वह दुःखोंसे दुःखी होता रहेगा, कितनीही अधिक इसको शारीरक सहायता दीजाय परन्तु समस्त क्लेशोंका दूर होना असम्भव है । समस्त दुःख तब दूर होंगे जब मनुष्य शुद्ध बन जायगा अज्ञानही समस्त दुःख और बुराइयोंकी जड है मनुष्यको प्रकाश दो, उससे कहो कि वह अपनेमें आत्मिक बल उत्पन्न करै । यदि यह बात प्राप्त होजाय, सब शुद्ध और पवित्र बन जांय, यदि उनको उत्तम शिक्षा मिलजाय तब समस्त विपत्तियोंकी अन्त्येष्टि हो जायगी । सम्भव है हम समस्त देशको अनाथालयोंसे भरदें, हर जगह चिकित्सालय बनवादें परन्तु जबतक सबका चालचलन शुद्ध न होगा तबतक कुछ न होसकेगा ।

गीता बार २ उपदेश करती है कि कर्म्म करो परन्तु कर्म्म—फलकी आ न करो और न कर्म्ममें ही लिप्त हो। कोई कर्म्म ऐसा नहीं जिसमें भलाई या बुराई न हो, जो कर्म्म किया जायगा उसमें अवश्य भलाई बुराई मिली होंगी यावत् हम निष्काम कर्म न करेंगे तावत् भलाई और दोनोंका हम पर प्रभाव पडेगा मनुष्यकी कामना एक तालावके समान है जिसमें लहरें उठा करती हैं, माना कि ये लहरें कभी शांत होजांय किन्तु सदाके लिये नहीं मरतीं, प्रत्युत अपने लय होजानेपर अपने चिह्न छोड जाती हैं ये चिह्न संस्कार हैं, इन चिह्नोंसे अन्य लहरें उत्पन्न होनेकी भी संभावना रहती है। जो कर्म्म हम करते हैं चाहे वह शारीरक हो या मनका विचार मात्रही हो उसका चित्र हमारे मनपर खिचजाता है, यह चित्र दिखाई नहीं देता परन्तु भीतरही काम करता रहता है हमारा वर्त्तमान जीवन गत संस्कारों या पिछले कर्म्म एवं विचारोंका फल स्वरूप है। हर मनुष्यका चालचलन इन्हीं संस्कारोंसे बना हुआ है यदि संस्कार उत्तम हैं, तो चालचलन भी उत्तम होगा और जो संस्कार बुरे हैं, तो चालचलन भी बुरा होगा जो मनुष्य बुरी बातें सुना करता है बुरे विचार मनमें रखता है बुरे कर्म्म करता है उसका मन बुरे संस्कारोंसे भरा रहैगा और उनसे उसी प्रकारके काम, विचार और बातोंका प्रकाश होता रहैगा और उसकी प्रकृति भी इसीके समान होगी वास्तवमें ये संस्कार अपना काम करते रहते हैं यही मनुष्यको बुरा बनादेते हैं मनुष्य विवश होजायगा और वह संस्कारोंके चक्रमें पडकर बुरा काम करने लगेगा। मनुष्यकी दशा एक यंत्र Machine की समान होगी जैसे उसका चलाने वाला चाहेगा, चलेगा। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य अच्छे विचार रखता है। अच्छे काम करता है, अच्छी बातें बोलता है, तब इसके संस्कार अच्छे होंगे और वे इसको विवशतया भलाईकी ओर ले जायंगे यदि वह बुराई करना चाहता है तब भी बुराई न कर सकेगा जब भलाई करते २ अच्छे विचार मनमें रखते २ उसका स्वभाव अच्छा बनगया तब वह बुराईके भूतसे दूर होजायगा। और इसका मन फिर बुराईकी ओर प्रवृत्त ही न होगा वह नितान्त शुद्ध और बुद्ध होगा, ये शुभसंस्कार उसको

उत्तम वनादेंगे जब यह दशा होगी तब उसका चालचलन पत्थरकी समान मजबूत होजायगा।

जिस प्रकार कछुआ अपने हाथ, पैर और शिरको अपने कोटरमें सिकोड लेता है और आप कितना ही दुःख उसको दें पर वह अपना शिर बाहर नहीं निकालता इसी प्रकार जिसका चालचलन वनगया है और जिसने अपने मनको जीतलिया है वह भी कभी कर्तव्यच्युत न होगा। अपनी समस्त गुप्त शक्तियों पर उसको अधिकार है और किसी प्रकारकी विवशता उसको उसके धर्म्मसे नहीं गिरा सकती। भलाई करते २ वह भला वन गया है और उसने इंद्रियोंको जीत लिया है, चालचलन इसी प्रकार बना करता है इसी प्रकार मनुष्यको सचाई मिलती है और ऐसा मनुष्य ही सदाके लिये सुरक्षित होजाता है फिर उससे बुरा काम नहीं बनता चाहे आप उसे कहीं भेज दीजिये चाहे वह कैसी ही बुरी संगतिमें बैठे, उसके लिये भय नहीं है, शुद्ध और सदाचारी वननेसे एक और कक्षा ऊंची है जो "मोक्षपद" अर्थात् मुक्तिकी इच्छा है। तुमको याद रखना चाहिये कि सब प्रकारके योगका फल "मोक्ष" ही है "कर्म्मयोग" हो या "ज्ञानयोग" दोनोंका लक्ष्य एक ही है। कर्म्म करनेसे मनुष्य उसी पदको प्राप्त होगा जिसको ध्यान द्वारा बुद्ध भगवान् और प्रार्थना द्वारा क्राइस्ट (Christ) अर्थात् मसीह प्राप्त हुए थे परन्तु कठिनाई यह है कि मोक्षका अर्थ पूर्ण स्वतंत्रता है, यह स्वतंत्रता, भलाई और बुराई दोनोंसे परे है, न भलाईका बंधन हो और न बुराईका। वेडी चाहें सोनेकी हो या लोहेकी दोनों बुरी हैं। मान लो मेरे हाथमें कांटा लग गया और मैंने कांटा निकालनेके लिये एक दूसरा कांटा हाथमें लेलिया, जब कांटा निकलगया तब दोनों कांटे फेंक देताहूं मुझको दूसरे कांटेके रखनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे हैं तो दोनों कांटे ही। इसी प्रकार अच्छी वृत्तियां बुरी वृत्तियोंसे दूर होती हैं बुराईका संस्कार अच्छे संस्कारों द्वारा शुद्ध करदिया जाता है, जब बुरे संस्कार दब गए या नष्ट होगए तब अच्छे संस्कारोंसे भी बचना चाहिये केवल एक यही साधन "मुक्ति" प्राप्त करनेका है "कर्म्म करते हुए कर्म्मसे अलग रहो" ये तुम्हारे मनपर कोई चित्र न खींचसकें। लहरोंको उठने दो, मस्तिष्क द्वारा संसारके बडे २ काम बनते रहैं परन्तु सावधान! ये तुम्हारी

आत्मामें कुछ विकार न लाने पावें, यह किस प्रकार होसकता है ? हम साधारणतया जानते हैं कि उस कर्म्मका जिससे हमारा गहरा संबन्ध है प्रभाव हमारे मनपर बाकी रहजाता है ।

दिनमें सहस्रों आदमियोंसे हमारी भेंट होती है, और ऐसे आदमियोंके देखनेका भी अवसर प्राप्त होता है जिनसे हम प्रेम करते हैं परन्तु जब हम रात्रिको एकान्तमें उनकी सूरतोंका ध्यान करनेलगते हैं तब हम केवल उन्हीं सूरतोंको देखते हैं जिनसे हम प्रेम करते हैं चाहें ये सूरतें एक क्षण ही के लिये दिखाई दी हों, परन्तु प्रेमका सम्बन्ध होगया इसलिये इन्हींका प्रभाव मनपर शेष रहता है अन्य सब लुप्त होजाती हैं । जिससे जितना गहरा सम्बन्ध होगा उसका उतना ही ध्यान रहेगा । यों तो सब सूरतोंका प्रतिविम्ब एकसाही मनपर पडा सबकी तस्वीरें मनपटल पर खिंच गई परन्तु देखो, फल एकसा नहीं रहा किन्तु सम्भव है कि किसी सूरतको केवल क्षणभरके लिये देखा हो परन्तु इस ओर मनका झुकाव अधिक है इसलिये इसका प्रभाव शेष रहा सम्भव है इस सूरतका ध्यान वर्षोंसे हमारे चित्तमें हो, हमने इसके सम्बन्धकी बहुतसी बातें सोच रखी हों, मनके आवरणमें न मालूम कितने विचार उसके लिये रहेहों यही कारण है कि इसका प्रभाव औरोंकी अपेक्षा सहस्रों गुना अधिक था, औरोंका केवल नाममात्र ध्यान था ।

इसलिये तुम असंगी बनो, कर्म्म होनेदो मस्तिष्कको काम करनेदो बराबर काम किया करो, परन्तु सावधान रहो कि एक लहर भी मनको मोहित न करने पाए, अजनबी या अतिथिकी समान काम करो, रातदिन काम करो, परन्तु सांसारिक किसी पदार्थसे अपनेको एक न होनेदो, बंधन बडी भयानक चीज है, यह संसार हमारे रहनेका स्थान नहीं है, यह केवल हमारे रास्तेमें एक सीढी है, सुनो सांख्य कहता है " समस्त प्रकृति (Nature) आत्माके लिये है आत्मा, प्रकृतिके लिये नहीं है" प्रकृतिकी सत्ता आत्माकी पूर्त्तिके लिये है, इसके अतिरिक्त उससे और कोई प्रयोजन नहीं है, प्रकृति इसलिये है कि उससे आत्माको ज्ञान प्राप्त हो और ज्ञान प्राप्त करके वह मोक्षपदको प्राप्त करले । यदि हम इस बातको सदा ध्यानमें रखेंगे तब हमको कभी प्रकृतिसे

संबंध न होगा हम समझते रहेंगे कि प्रकृति केवल एक पुस्तक है जिसको पढना है और जहां हमको विद्याकी प्राप्ति होगई फिर पुस्तककी कोई आवश्यकता नहीं परन्तु विरुद्ध इसके हम अपने आपको प्रकृति समझ लेते हैं हम विचारने लगते हैं कि आत्मा प्रकृतिके लिये है अस्थि चर्म्म ही आत्मा है, जीवन भोजनके लिये है और भोजन जीवनके लिये नहीं है। रात दिन हम भूल करते हैं हम अपने आपको प्रकृति ही मानरहे हैं। इसीके बंधनमें फंसजाते हैं और जहां गहरा सम्बन्ध हुआ फिर हम मुक्तिके लिये नहीं बल्कि प्रकृतिके दास बनकर काम करते हैं।

इस सबका आशय यह है कि तुम स्वामी बनकर स्वामीकी समान काम करो काम सदा करते रहो; परन्तु वह दासोंका काम न हो। क्या तुम नहीं देखते प्रति मनुष्य किस प्रकार काम करता है? किसीको चेत नहीं है सौमें नब्बे दासोंकी समान काम करते हैं और उसका परिणाम दुःख होता है क्योंकि उनके कामोंमें स्वार्थ भराहुआ है। काम, स्वतंत्रता और प्रेमसे होना चाहिये प्रेमका समझना बहुत कठिन है और जब तक स्वतंत्रता न हो प्रेम उत्पन्न नहीं होसकता दासमें कभी सच्चा प्रेम नहीं होता, यह नितान्त असम्भव है यदि तुम किसी दासको खरीदो और जंजीरोंसे बांधकर उससे काम लेते रहो तब वह काम तो करता रहैगा परन्तु इसका काम प्रेमका काम न होगा। बस इसी प्रकार यदि हम संसारिक पदार्थोंके लिये दासोंकी भान्ति काम करते रहें तब हमको प्रेम उत्पन्न नहीं होगा वह हमारा काम सच्चा काम न होगा इसी प्रकार जो काम मित्रों और कुटुम्बियोंके लिये कियाजाता है इसकी भी वही दशा है जो अपने लिये किया जाता है। स्वार्थसे किया हुआ कर्म्म दासोंके कर्म्मकी समान है और यहां ही आकर उसका पता लगजाता है कि इसमें स्वार्थ भाव है या नहीं, प्रेमके हरकाममें प्रसन्नता रहती है जिस काममें प्रसन्नता न होगी प्रेम न होगा उसमें कभी सच्ची शान्ति, सच्चा आनन्द और सच्चा सुख न होगा, सच्चा जीवन सच्चा प्रेम और सच्चा ज्ञान आपसमें एक दूसरेसे मिले हुए हैं, वास्तवमें ये तीनों एक हैं जहां एक होगा वहां दूसरे भी अवश्य होंगे वे वास्तवमें एकही पदार्थके तीन टुकडे हैं सत् चित् आनन्द। जब समजीवन मिलता है तब हम वास्तविक जीवनको जानते हैं अज्ञान संसारमें मिलजाता है और आनंद सच्चे प्रेमका मूल बनजाता है, जो

मनुष्यके मनमें प्रतीत होता है इसीलिये सच्चे प्रेममें प्रेम करनेवालेको या जिससे प्रेम किया जाय दुःख नहीं होता। मानलो कि एक पुरुष किसी स्त्रीसे प्रेम करता है और वह चाहता है कि वह स्त्री इसके अतिरिक्त और किसीको न देखे, तब उसका मन दुर्बल है, यह चाहता है कि वह स्त्री उसीके पास बैठी रहै, उसीके पास खडी रहै उसीके साथ खाए, पिए, और उसीकी दासी बनी रहै वह उसका दास है और इस स्त्रीको भी दासीकी कोटिमें रखना चाहता है यह प्रेम नहीं है प्रत्युत यह उस गुलामकी मूर्खता–पूर्ण और सडेहुए प्रेमका उदाहरण है इससे प्रेमका अपमान होता है, यह प्रेम नहीं है । क्योंकि यह दुःखदाई है यदि वह (स्त्री) इसकी इच्छानुसार काम नहीं करती तब उसको दुःख होता है प्रेममें दुःख नहीं है प्रेममें आनंद ही आनंद है इसे कदापि प्रेम न कहो यहां प्रेमके विषयमें बडी भारी भूल होरही है। जब तुम अपने पति, स्त्री, पुत्र, भाई और मित्रों आदिसे प्रेम करनेमें इस प्रकार सफल मनोरथ होसको कि तुमको दुःख या सन्ताप उत्पन्न न हो और न स्वार्थके नीच विचार ही तुम्हारे मनमें आयें, तभी तुम स्वतंत्र और निर्बंध होसकते हो।

कृष्ण भगवान् गीतामें कहते हैं "हे अर्जुन! मेरी ओर देख! यदि मैं एक क्षणके लिये कर्म्म करना बन्द करदूं तब यह सारा जगत् नष्ट होजाय । यद्यपि मुझको इस जगत्से कोई लाभ नहीं है, मैं एक हूं, इसका स्वामी हूँ मुझको कर्म्मसे कुछ फल नहीं मिलता तथापि मैं कर्म्म किया करता हूँ क्योंकि मुझको जगत्से प्रेम है" इसी प्रकारके सच्चे प्रेमसे असंगता उत्पन्न होती है, जहां सांसारिक संबंध होता है, जहां लोग सांसारिक संबंधमें जकडे होते हैं वहां शारीरक लगाव रहता है शरीरके परमाणुओंमें आकर्षणशक्ति उत्पन्न होती है और इसके कारण दो शरीर कुछ देरके लिये एक दूसरेके निकट आते हैं और यदि उनको निकटता नहीं मिलती तब दुःख उत्पन्न होता है परन्तु जहां सच्चा प्रेम होता है वहां शारीरक प्रेमका विचार तक उत्पन्न नहीं होता। प्यार करनेवाले मनुष्य सहस्रों कोसकी दूरी पर रहते हों परन्तु उनके प्रेमकी दशा एकसी होगी, ऐसा प्रेम मरता नहीं और न इस प्रेमसे किसी प्रकारका दुःख उत्पन्न होता है।

जीवन व्यतीत होजाते हैं तब कहीं जाकर असंगता उत्पन्न होती है परन्तु इसके उत्पन्न होतेही अभीष्ट पद मिलजाता है प्रेमकी संपत्ति हाथ आगई और हम "स्वतंत्र" होगये प्रकृतिकी जंजीर अलग जापडी, बस हम प्रकृतिको उसके वास्तविक रूपरंगमें देखने लगते हैं और फिर वह हमारे बांधनेके लिये नई २ कडियां न बना सकेगी, हम बिलकुल स्वतंत्र होजायँगे और कर्म्म फलका विचार तक मनमें उत्पन्न नहीं होने देंगे फिर किसीको क्या पर्वाह है कि कर्म्मका क्या परिणाम होगा इसको सोचें जो मनुष्य प्रेम और प्रसन्नताके साथ कर्म्म करता है उसको फलकी अभिलाषा क्यों उत्पन्न हो ! यतः वह स्वयं निःस्वार्थ है इसलिये उसको कर्म्मके फल दुःखदायी नहीं होते।

क्या तुम कभी अपने लडकेबालोंसेभी प्रेमका बदला चाहते हो ? यह तुम्हारा धर्म है कि तुम इनके लिये कर्म्म करो और बस। यहांतक तुम्हारा धर्म है जहां कहीं तुमको किसी मुख्य मनुष्य या किसी मुख्य देशके लिये काम करनेकी आवश्यकता हो हर प्रकारसे काम करो परन्तु इसके साथ भी तुम्हारा वर्त्ताव वैसाही हो जैसा कि लडकोंके साथ हुआकरता है। प्रतीकार, बदला या फलकी इच्छा न करो, यदि तुम निष्काम होकर संसारका उपकार कररहे हो, दान दे रहे हो उसके फलमें तुम्हारी दृष्टि नहीं लग रही है तब तुम्हारा कर्म्म किसी बन्धनका हेतु न होगा, बंधन केवल वहां होता है जहां फलकी इच्छा होती है।

गुलामोंकी समान काम करनेमें स्वार्थ रहता है और इसका परिणाम बन्धन होता है यदि तुम स्वामीके समान काम करो तब तुमको इस कामसे आनंद और शांति लाभ होगी, हम प्रायः न्याय और अधिकारके लिये वादविवाद करते रहते हैं परन्तु हम देखते हैं कि संसारमें न्याय और अधिकारकी बातें बालकोंकी बकवादसे अधिक मूल्य नहीं रखतीं। केवल दो बातें मनुष्यके चालचलनकी पथ प्रदर्शक हैं एक दया और दूसरा बल। बलके घमंडमें रहना और उसकी चेष्टा करना स्वार्थ है सब नर नारी अपने २ अधिकारसे लाभ उठानेकी धुनमें लगे रहते हैं। दया स्वर्ग है जिसको अच्छा बननेकी इच्छा है वह दया किया करै अधिकार शासन और न्याय इन सबका संबंध भी दयाहीसे है। कर्म्मका फल

चाहना आत्मिक उन्नतिके मार्गमें विघ्न उपस्थित करता है और अंतमें इसीके कारण दुःख मिलता है केवल कर्म्म करने और उदारताके साथ संसारको दान देनेमें बन्धन नहीं होता एक और साधन है जिसके द्वारा दया और निष्काम उदारताको कार्य्यमें परिणत किया जासक्ता है, वह यह है "कर्म्मकी उपासना" समझ कर करो कर्म्मका फल ईश्वरके अर्पण करो जब तुम ईश्वरके अनुचर हो तब तुमको कब अधिकार है कि फलकी आकांक्षा करो? जो तुम संसारके लिये कर रहे हो, ईश्वर स्वयं बिना किसी अभिलाषा या सम्बन्धके कर्म्म करता है उसके लिये कर्म्म बन्धन नहीं होते, निष्काम कर्म्मकर्त्ता "पद्मपत्रमिवांभसा" कर्म्मसे अलग रहते हैं, निष्काम कर्म्मका करनेवाला किसी बुरेसे बुरे देशमें रहै पापियोंमें बसे परन्तु वह पाप न करेगा निम्नलिखित वृत्तान्त इसपर प्रकाश डालता है। जब कुरुक्षेत्रका युद्ध समाप्त होगया पाण्डवोंने बहुत बडा यज्ञ किया जिसमें निर्धनोंको बहुत धन बांटागया सबको आश्चर्य हुआ क्योंकि कहीं भी इतना दान नहीं दियागया था और न किसी राजाने पहिले इतना बडा यज्ञ किया था। जब यज्ञ समाप्त होगया तब एक न्योला वहां आया, इसका आधा शरीर सुवर्णका था और आधा सफेद रंगका था वह यज्ञमें आकर लोटने लगा, और इसके बाद यज्ञ करनेवालोंको सम्बोधन कर कहने लगा "तुम सबके सब झूंठे हो यह यज्ञ नहीं है" उन लोगोंने कहा "क्यों! तुम क्या कहते हो, क्या कभी पहिले किसी यज्ञमें इतना धन और अमूल्य रत्न निर्धनोंको मिला था देखते नहीं कोई निर्धन नहीं रहा सब धनवान् बनगए इससे उत्तम यज्ञ आजतक नहीं रचा गया" न्योलेने उत्तर दिया "सुनो! एक छोटा ग्राम था, जिसमें एक ब्राह्मण अपने स्त्री पुत्र सहित रहा करता था, यह अपना पालन भिक्षावृत्तिसे किया करता था दैवयोगसे देशमें तीन सालतक घोर अकाल पडा। बिचारा ब्राह्मण निर्धन था वह महान् दुःखी हुआ पांच दिनतक बिचारेने निराहार व्रत किया छठे दिन किसीने उनको थोडेसे जौ दिये जिसके सत्तू बनाए गए और थोडा २ चारों मनुष्योंने विभक्त करलिया जब वह पुत्रादि सहित भोजनके लिये बैठा द्वार पर किसी आदमीने आवाज दी बापने द्वार खोलदिया और अतिथिसे घरमें आनेके लिये निवेदन किया हिन्दोस्थानमें पहिले समयसे यह रीति चली आई

है कि कभी २ आप भूखे रहजाते हैं और अतिथिको भोजन देदेते हैं, गरीब ब्राह्मणने अतिथिसे कहा "भगवन्! आइये आप खूब आये" और इसके सामने सत्तूका भाग रख दिया अतिथि भूखा था सब सत्तू खागया और बोला "तुमने मुझे मारडाला, मैं दसदिनसे भूंखा हूं इतना सत्तू देकर तुमने मेरी भूंखको और भी बढा दिया, तब ब्राह्मणकी स्त्रीने पतिसे कहा मेरा भाग भी इनको देदीजिये" पतिने कहा नहीं तब स्त्री हठ करने लगी "देखो यह निर्धन मनुष्य आज हमारा अतिथि है भूंखा है, हमारा धर्म्म है कि इसको भोजन दें, मैं तुम्हारी स्त्री हूं मुझको अधिकार है कि अतिथि सत्कारमें मैंभी भाग दूं इसलिये मेरा भाग भी इसको दे दीजिये" यह कहकर स्त्रीने भी अपना भाग अतिथिको अर्पण किया तब अतिथि बोला "अब भी मेरी क्षुधा निवृत्त नहीं हुई" तब लडकेने कहा "मेरा भाग भी लेलीजिये क्योंकि मैं इस घरका लडका हूं पिताका अनुकरण करना मेरा धर्म्म है" जब इसके भागसे भी उसकी तृप्ती नहीं हुई तब पुत्र वधूने भी अपना भाग उठाकर देदिया और इस अतिथिका उदर पूर्ण किया, वह आशीर्वाद देकर वहांसे विदा हुआ छः दिनसे न खानेके कारण ये मृतप्राय होगये थे भूंखकी यंत्रणासे आज इन चारोंने अपना शरीर छोडदिया । इस सत्तूकी भूसी वहां पृथ्वीपर पडी हुई थी, मैं उसपर लोटने लगा और मेरा आधा शरीर जैसा कि तुम देखते हो सुवर्णका होगया उस समयसे बराबर मैं पृथ्वीपर घूम रहाहूं इसलिये कि यदि कहीं भी ऐसा यज्ञ हुआ हो तो वहां लोट लगाकर बाकी आधा शरीर भी सुवर्णका करलूं इसी कारण मैंने तुमसे कहा कि तुम झूंठे हो यह यज्ञ नहीं है ।"

भारत निवासी इस आदर्शसे दिन दिन नीचेको गिर रहे हैं सच्ची उदारता और सच्चे दानकी महिमाको भूल रहे हैं । जब मैंने पहिले अंग्रेजी पढना आरम्भ किया तब मैंने एक कहानी पढी थी कि एक लडका परदेश गया हुआ था वहांसे रुपया कमाकर अपनी माताके पास उसके गुजारेके लिये भेजता रहा और उसका पालन करता रहा, बस इसीके लिये पुस्तकके पूरे चार पृष्ठ उसकी प्रशंसामें रंगे गए परन्तु वास्तवमें इसकी क्या प्रशंसाकी बाते हैं ? कोई हिन्दू बालक इस कहानीको इतना महत्व न देगा, यह एक बडी साधारण बात है । योरुपमें बालकोंको

शिक्षादी जाती है कि हरएकको अपनी चिन्ता आप करनी चाहिये। अब जाकर मैंने समझा कि क्यों इस लडकेकी इतनी प्रशंसा की गई योरुपमें कुछ लोग अपनेही शरीरका भरण पोषण करते हैं और उनको कभी यहभी विचार नहीं रहता कि उनके माता, पिता, और स्त्री पुत्रकी क्या दशा होगी यह बडी घृणित रीति है किसी गृहस्थीका यह आदर्श नहीं होना चाहिये।

अब तुम विचारो कि कर्म्मयोग किसे कहतेहैं मरणपर्यन्त दूसरोंकी सहायता करना पर कभी प्रतीकार या फलके शब्दको मुंहपर न लाना वास्तविक "कर्म्म-योग है लोग हजार वार धोखा दें, कुछ पर्वाह नहीं निर्धनोंका भला करके उनसे धंन्यवादकी अभिलाषा न करो प्रत्युत तुम स्वयं उनका धन्यवाद करो जिनके कारण तुम्हें उदारतासे काम लेनेका अवसर प्राप्त हुआ इससे स्पष्टतया सिद्ध है कि गार्हस्थ्य धर्म्म, संन्यासीके धर्म्मसे बहुत कठिन और महत्व पूर्ण है कर्म्मका सच्चा जीवन स्वयं सच्चे त्यागके जीवनसे हजारोंगुणा दुस्तर है। इसी लिये कहताहूँ कि निष्काम उदारता कर्म्म पूर्ति करनेका गुप्त रहस्य है।

Unselfish charity is the secret of saving work

॥ इति तृतीयपरिच्छेद समाप्त ॥

अथ चतुर्थ–परिच्छेद।

धर्म्म क्या है ?

कर्म्मयोगके पढनेसे पहिले यह जानलेना चाहिये कि धर्म्म क्या है ? यदि मुझको कुछ काम करना है तब काम करनेसे पहिले यह जानलेना आवश्यक है कि मेरा धर्म्म क्या है ? तदनन्तर कदाचित् मैं उसको अच्छी प्रकार करसकूंगा। अनेक जातियोंके धर्म्मके लिये अनेक विचार हैं मुसलमान कहते हैं कि जो कुछ कुरानमें लिखा हुआ है वही उनका धर्म्म है। हिन्दू कहते हैं कि वेदोंका उपदेशही धर्म्म है, ईसाई अपनी इंजीलमें लिखित धर्म्मको धर्म बताते हैं। इसपर विचार करनेसे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि संसारके अनेक इति-हासोंमें और अनेक जातियोंमें अवस्थाके अनेक भागोंमें धर्म्मकी समझ भी

अनेक हैं। और विषयोंके विवेचनकी अपेक्षा इसकी विवेचना करना सुलभ नहीं है हम केवल निकटके वृत्तान्तोंपर दृक्पात करके और कर्म्मके वास्तविक फलको विचारकर धर्म्मकी कुछ विवेचना कर सकते हैं। जिस समय हमारे सामने कोई विषय प्रकट होता है हमको एक मुख्यताके साथ इसकी ओर दृक्पात करनेकी आवश्यकता होती है, और जब मनमें उद्वेग होताहै मन विवशतया उसके विचारनेको उद्यत होता है। कभी वह विचारता है कि इस दशामें काम करना ठीक होगा, दूसरे समय इसके विरुद्ध सोचता है। हर जगह धर्म्मके लिये प्रायः यही विचार है कि मनुष्यको अपने मनके अनुसार काम करना चाहिये किन्तु प्रश्न यह है कि वह क्या चीज है हमारे कर्म्मको धर्म्मके वस्त्र पहिनाती है ? यदि किसी ईसाईको गोमांस मिलजाय और वह अपना जीवन बचानेके लिये इसको न खावे, तब वह समझेगा कि उसने पाप किया। किन्तु यदि किसी हिन्दूसे ऐसा काम बन जाय और वह किसीको ऐसा निंदित मांस खानेके लिये देदे तब वह समझेगा कि मैंने धर्म्मका काम नहीं किया। ये समस्त बातें जैसा सिखाया पढाया गया है उसका फल मात्र हैं, अन्तिम शताब्दीमें हिन्दोस्थानमें लुटेरोंका समूह रहता था, उनको ठग कहते थे, वह दूसरोंके प्राण और धन लूटनेको ही अपना धर्म्म समझते थे वे जितने अधिक मनुष्य मारते उतनाही अधिक धर्म्म समझते थे, साधारणतया यदि कोई मनुष्य किसी आदमीके गली कूंचेमें गोली मार दे तब वह समझेगा कि मैंने पाप किया किन्तु यदि वही आदमी सिपाही बनकर युद्धक्षेत्रमें जाय तो एक दो नहीं बीसों आदमियोंको मार गिरायेगा और गौरवसे कहेगा कि मैंने धर्म्मका काम किया है। इसलिये धर्म्मके विषयमें हर अवसर और समय पर एक ही आज्ञा देनी भूल होगी, यद्यपि बहुत कठिन है तथापि धर्म्मकी विवेचना होसकती है। जिन कामोंके करनेसे हम ईश्वरकी ओर जाते हैं या उसके निकट होते हैं वे कर्म्म शुभ हैं। और जिन कर्म्मोंसे हम नीचे गिर जाते हैं वे बुरे हैं और वे कर्म्म धर्म नहीं हैं। कुछ काम ऐसे हैं जिनसे हम अच्छे बनते हैं कुछ ऐसे हैं जिनके कारण हम पशु बनजाते हैं किन्तु हर मनुष्यके लिये हर अवसर पर यह कहदेना कि एक किसी मुख्य कामसे उसमें भलाई

आजायगी बहुत कठिन है। संस्कृतमें एक श्लोक है जिसको हर देशके निवासियोंने पसन्द किया है उसका अर्थ यह है "किसीको मत सताओ, सताना या हिंसा करना पाप है" केवल इतनी ही धर्म्मकी विवेचना है इससे अधिक कुछ कहना कठिन है।

गीताने वार २ जन्म और दशाके अनुसार धर्म्म करनेका उपदेश किया है जन्मदशा और समाजमें अपनी मुख्य हालतको देखते हुए सामाजिक या अन्य प्रकारकी उन्नतिका फैसला सुगमतासे हो सकता है। हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम ऐसे काम करें जिससे हम शुद्ध और पुण्यात्मा बनें और जो हमारी समाजके अनुकूलहों, परन्तु इसको स्मरण रखना चाहिये कि हर समाज या हर देशके उद्देश्य एकसे नहीं होते, चूंकि हमको इस विषयसे विज्ञप्ति नहीं होती इसलिये हम एक दूसरेके साथ घृणा करते हैं। अमेरिका वालोंका विचार है कि जो कुछ वे अपने देशकी रीत्यनुसार करते हैं ठीक है। और जिनके यहां वह रीति नहीं है वे अच्छे आदमी नहीं हैं। एक हिन्दू कहता है कि उसीके कर्म्म धर्म्म अच्छे हैं औरोंके बुरे हैं। यह एक साधारण भूल है इस भूलसे वडी हानि पहुंचती है और इसीके कारण अनैक्यता फैलगई है। खाना, पीना, वस्त्र और आचरण सवका यही हाल है। इसी अन्तरके कारण एक देशके निवासी दूसरे देशवालोंको बुरा कहते रहते हैं।

इसलिये हमको यह स्मरण रखना चाहिये कि दूसरोंके धर्म्मकर्मका भी ध्यान रहे और हम उनके खान पानका अनुमान अपनी रीतिके अनुसार कभी न लगावें। "मैं समस्त संसारका किसी दशामें शिक्षक नहीं होसक्ता" यह बहुत बडी शिक्षा है जो हमको ग्रहण करनी चाहिये। हमको ध्यान रखना चाहिये कि यह संसार है और सब संसारमें एक नियम जारी नहीं होसक्ता। निकटके पदार्थोंसे धर्म्ममें परिवर्त्तन होजाता है। किसी समय जो कर्म्म उचित और युक्त हो वही धर्म्म है जन्मके अनुसार जो कुछ हमारा धर्म्म है उसी पर स्थित रहैं और उसके वाद समाजमें अपनी दशा और जीवनके धर्म्मपर विश्वास करैं, जीवनमें हर मनुष्यकी कुछ न कुछ दशा है। इसको उसी दशामें काम करना चाहिये संसारमें उस मनुष्यके लिये वहुत कुछ भय है जो भलीप्रकार अपनी दशाको नहीं

देखता, वह सोचता है कि मुझमें भी वही गुण हैं जो एक महाराजामें हैं यदि वास्तवमें ऐसा ही हो तब इसको अपने जन्म या पैदायशके धर्म्मको उत्तमतासे करके दिखादेना चाहिये कि इसमें उत्तम गुण विद्यमान हैं तदनन्तर उत्तम धर्म्म स्वयं उसको प्राप्त होगा । यदि मनुष्य अपने छोटे २ कामोंको उत्तमताके साथ करता है तब इसको अवश्य कोई बडा काम मिलजायगा जब हम संसारमें सचाईके साथ काम करने लगते हैं तब प्रकृति हमारे दाहिने बांये चारों ओरसे बता देती है कि किस प्रकारका जीवन हमारे लिये उपयोगी है यदि कोई मनुष्य किसी कामके योग्य नहीं है तब वह बहुत दिनों तक उस पर स्थित नहीं रहसकेगा । प्रकृतिके फैसलेके विरुद्ध शिकायत करना वृथा है जिसको छोटा काम मिला हुआ है वह नीचा या छोटा नहीं है । किसी मनुष्यका अनुमान उसके कामसे न करना चाहिये प्रत्युत यह देखना चाहिये कि वह अपने कामको किसप्रकार अंजाम देताहै ।

धीरे धीरे हम यह भी देखेंगे कि धर्म्म विषयक उसके विचार भी बदलते जाते हैं, सबसे उत्तम काम वे हैं, जिनमें स्वार्थका लेश नहीं है, काम पूजाकी समान करो, जब यह दशा होगी काम स्वयं शुद्ध होगा, परन्तु यह कर्म्मका आदर्श है । धर्म्मके सब कामोंमें यह विचार मिलेगा कि जहां प्रेम है जहां आत्माको कर्ममें प्रकाश मिलता है वही कर्म्म शुभ कर्म है यह बात केवल उस समय होसकती है जब सांसारिक वासनाओंका नाश होता जाय और एक धर्म्महीका विचार मनमें रहै, और स्वार्थका प्रभाव मनमें न रहै । इस प्रकार समस्त समाजकी उन्नति कर्म्मपर निर्भर है, जहां स्वार्थको छोडकर काम किये जाते हैं वहां मनुष्यमें तेज चमकने लगताहै । अनिष्ट इच्छाएं, और स्वार्थ पापकी ओर लेजाते हैं । निःस्वार्थ प्रेम और भजन मनुष्यकी उन्नतिके साधन हैं और धर्म्ममें कभी ही प्रसन्नता मिलती है । जिस समय इसके पहियोंको प्रेमका तेल लगाया जाताहै वह चलने लगता है वरन् कदम २ पर रगडे झगडेसे काम रहता है, पिताका अपने पुत्रोंके साथ क्या धर्म्म है ? पतिको पत्नीके साथ कैसा वर्त्ताव करना चाहिये ? पत्नीको पतिके साथ किस प्रकार वर्तना चाहिये ? क्या आप नहीं देखते कि ये सदा जीवनपर्यन्त लडते झगडते रहते हैं किन्तु जहां प्रेम होताहै वहां कुछ औरही दृश्य दिखाई देते हैं प्रेम केवल स्वतंत्रतामें चमकताहै और

प्रेमही धर्म्मको मीठा बनादेताहै क्या काम क्रोध लोभ मोह और इंद्रियोंका दास बनजाना स्वतंत्रता है ? हम इन बातोंको नित्यप्रतिही देखते हैं कि वे ही सच्चे स्वतंत्र हैं जो प्रसन्नताके साथ दूसरोंको क्षमा करदेते हैं, चिडचिडे स्वभावकी स्त्रियां अपने पतिको सदा घुडकती हैं और इस प्रकार उनपर अपनी स्वतंत्रता प्रकट करती हैं यद्यपि वास्तवमें वे अपने स्वभावसे अपने दासी होनेका प्रमाण देतीहैं, यही दशा उन पतियों की है जो अपनी स्त्रियोंके अवगुण देखा करते हैं। सत्य और शुद्धता स्त्री पुरुषका पहिला गुण होना चाहिये। जो पति पथभ्रष्ट होगए कोई पतिव्रता स्त्री कठिनाईसे उसको सन्मार्गपर लासकेगी ऐसा भी बहुत कम होगा। आजकल संसारमें ऐसे दुष्ट पतियोंकी बडी शिकायत है और न ऐसी स्त्रियोंकी ही कमी है। यदि स्त्री सचमुच शुद्ध एवं धर्म्मात्मा हो तब पतिमें कभी न कभी सुधार कर सकती है। शुद्धता और नम्रता पाषाण हृदयपतियोंको भी मनुष्य बना देती है। यदि स्त्री पतिव्रता है और अपने पतिके अतिरिक्त सब मनुष्योंको भाई पिता पुत्रकी समान देखती है तब स्मरण रक्खो, कोई पुरुष उसके धर्म्मनाश करनेका साहस नहीं करसक्ता इसी प्रकार यदि हर पति अपनी स्त्रीके अतिरिक्त अन्य स्त्रियोंको माता बहिन और पुत्रियोंकी समान देखता है तब भी कभी किसी प्रकारकी बुराई पेश न आएगी संसारमें जो मनुष्य अपनेको "शिक्षक" समझता है उसको कमसे कम सब स्त्रियोंको माताकी समान जानना चाहिये।

संसारमें माताका पद सबसे बडा है मातासे अधिक कोई निस्स्वार्थ नहीं होता, माताके प्रेमको केवल ईश्वरके प्रेमसे कमी दीगई है और सब प्रेम इस प्रेमसे नीचे हैं। माताका धर्म्म है कि पहिले पुत्रका ध्यान करे बादको अपना। किन्तु यदि इसके विरुद्ध माता पिता अपने सुखोंका ध्यान पहिले करते हैं अर्थात् खाने पीने पहिनने लेने और देनेमें अपनी सन्तानका पहिले विचार नहीं करते तब ऐसे मातापिताओंकी सन्तान पशु पक्षियोंकी सन्तानके समान होजायगी जो पर निकलने पर अपने मातापिताको पहिचानेंगे भी नहीं। वह मनुष्य धन्य है जो मातृभक्तिको ईश्वर भक्ति समझता है वह स्त्री धन्य है जो पतिमें ईश्वरभाव रखती है और वे लडके धन्य हैं जो मातापिताको ईश्वरवत् पूजते हैं।

उन्नति करनेका वास्तवमें यही भेद है कि अपने कर्त्तव्योंकी सुधि हर समय बनी रहै । और अपने आपको नित्यप्रति बलवान् बनायाजाय, जिससे कि धीरे २ उन्नति करते हुए मको अपना अभीष्ट पद मिलजाय किसी प्रकारके कर्त्तव्यसे घृणा न करो मैं भी कहता हूं जो मनुष्य नीचे काम करता है वह नीच नहीं है मनुष्यकी बडाईका अनुमान उसके कामोंसे न लगाना चाहिये बल्कि उसके काम करनेके ढंगसे लगाना चाहिये इसका ढंग और कर्त्तव्य पालन प्रणाली ही इसके जांचनेकी सबसे उत्तम कसौटी है । एक चमार जो थोडी देरमें मजबूत और अच्छा जूता बनालेता है उस विद्वान् प्रोफेसरसे अच्छा है जो रातदिन वृथा बकता रहता है ।

कोई संन्यासी जंगलमें जाकर बहुत दिनोंतक योग करता रहा, बारह वर्ष तक एकही आसन पर उसने योग किया एक दिन जब वह बैठा हुआ था इसके शिरपर कई सूखे पत्ते गिरे इसने ऊपरकी ओर देखा तो दो कव्वे आपसमें लड रहे थे योगीको क्रोध आगया वह बोला "हां ! तुमको इतना साहस हुआ कि तुमने मेरे ऊपर सूखे पत्ते डाले" और वे इसी समय इसकी क्रोधाग्निमें जलकर नीचे आ गिरे । योगी मनमें बडा प्रसन्न हुआ क्योंकि इसमें सिद्धि शक्ति आगई थी वह केवल एक दृष्टिसे कव्वोंको भस्म करसकता था । कुछ दिनों बाद वह संन्यासी किसी ग्राममें भिक्षा मांगने गया और एक स्त्रीके द्वार पर जा उसने भिक्षा मांगी "मातः ! भिक्षा देजा" भीतरसे आवाज आई "जरा देर थम जाइए" योगीने मनमें कहा "दुर्भाग्य स्त्री ! तू मेरे योगबलको नहीं जानती, मुझसे प्रतीक्षा करवाती है" अभी यह सोच ही रहा था कि अन्दरसे आवाज आई "बेटा ! गर्व मत करो, यहां कव्वे नहीं बसते हैं" योगीको बडा आश्चर्य्य हुआ और अब वह शान्तिसे उस स्त्रीकी प्रतीक्षा करने लगा अन्ततः एक स्त्री मकानसे बाहर आई तो योगी उसके चरणोंपर गिर पडा और कहने लगा "मातः ! तूने कैसे जाना" उसने कहा" बेटा ! मैं तेरे योगाभ्याससे परिचित नहीं हूं मैं केवल एक साधारण स्त्री हूं मैंने इसलिये तुझको ठहरनेके लिये कहा कि मेरा पति बीमार है मैं उसकी सेवा कर रही थी जो मेरा मुख्य धर्म्म था मैं धर्म्मके लिये जीवन पर्य्यन्त कर्म्म करती रही हूं, जब मैं कुमारी थी तबभी धर्म्मका विचार मेरे

मनमें था, अब विवाहिता होने पर भी धर्म्मका विचार रहता है मैं बस यही योग करती हूं चूंकि मेरा मन दर्पणवत् शुद्ध है इसीलिये मैं तेरे विचारको समझ गई यदि तुझको अधिक जाननेकी आवश्यकता है तब तू अमुक- ग्रामके बाजारमें चला जा वहां एक कसाई रहता है तू उससे उचित और उत्तम शिक्षा प्राप्त करेगा। संन्यासीने सोचा कि "मैं क्यों उस चाण्डालके पास जाऊं जिसके स्पर्शसे पाप होता है"

किन्तु वह स्त्रीकी सिद्धिशक्ति देख चुका था उसकी आंखें खुल गई थीं जिस समय वह इस नगरमें पहुंचा उसको एक मोटा ताजा कसाई मिला जो मांस बेंचा करता था योगीने कहा "ईश्वर अनुग्रह करै यह भला मुझको क्या योग सिखायेगा यह तो राक्षस है" इसी क्षण कसाईकी दृष्टि इस योगी पर पड़ी और उसने आंख उठाकर कहा "स्वामिन्! तुमको उस पुण्यात्मा स्त्रीने ज्ञान सीखनेके लिये भेजा है आप कुछ देर वृक्षके नीचे बैठें मैं अभी निबटा जाताहूं" संन्यासीने सोचा कि "अरे! यह क्या बात है, देखो इससे क्या मिलता है" यह कहकर वह बैठ-गया, परन्तु कसाई अपना काम वैसे ही करता रहा जब काम समाप्त होचुका उसने रुपया आदि सम्भाल लिया तब संन्यासीको संबोधन कर बोला महाराज! आइये, अब मेरे साथ घर चलिये" निदान दोनों घरकी ओर चले जब घर पहुंचे तब कसाईने इसको एक जगह बिठाकर कहा "आप यहां थोडी देरके लिये आराम कीजिये तदनन्तर वह घरमें चलागया जहां इसके माता पिता रहते थे, इसने उनको स्नान आदि कराकर भोजन कराया और फिर संन्यासीके निकट आनकर कहने लगा "स्वामिन्! आप कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूं" तब संन्यासीने कई प्रश्न ईश्वर और जीवके सम्बन्धमें किये कसाईने इसको अत्यंत मनोरञ्जक उपदेश दिया जो आजतक व्याधगीताके नामसे प्रसिद्ध है और जिसको लोग बडे प्रेमसे पढते सुनते हैं वेदान्तकी अनेक महत्व पूर्ण बातें उसमें लिखीगई हैं तुमने भगवद्गीता पढी है, व्याधगीता भी पढो और देखो वेदान्तके कैसे गुप्त रहस्य उसमें भरे हुए हैं जब कसाई लेक्चर सुनाचुका तब संन्यासीने कहा "आपके व्याख्यानको सुनकर बडा आश्चर्य्य और आनन्द हुआ परन्तु यह तो बताइये कि आप इस शरीरमें क्यों रहते हो? जब आपको इतना ज्ञान है तब आप इस

नीच कामको क्यों करते हैं उसने कहा "बेटा! कोई काम बुरा नहीं है न कोई धर्म्म अशुद्ध है, मेरा जन्म मेरे सम्बन्ध और मेरे अन्य वृत्तान्त और प्रकारके हैं बाल्यावस्थामें मैंने यह काम सीखा. मुझको इसका बन्धन नहीं है मैं केवल अपना काम सच्चाई और चतुराईसे करना चाहता हूँ गृहस्थीकी दशाहै मैं गृहस्थीके धर्म्म पालन करताहूँ और अपने मातापिताकी सेवा करता हूँ न मैं योग जानता हूँ न संन्यास जानता हूं और न कभी वन गया हूँ, न संसारका भ्रमण ही किया है तथापि तुमने सुनलिया मैं क्या कुछ जानता हूँ और तुमने देख लिया कि मुझको किसी प्रकारका बंधन भी नहीं है मैं अपनी दशा और कामके अनुकूल धर्म्मका आचरण करता हूं।

हिन्दोस्थानमें एक बहुत बडा योगी है यह एक अद्भुत पुरुष है मैंने एक बार इसका दर्शन किया वह एक मुख्य आत्मा है न वह किसीको पढाता है न किसीके प्रश्नका उत्तर देता है वह उपदेशक या संन्यासीके कामको करना पसंद नहीं करता यदि तुम इससे कोई प्रश्न करो और कई दिन प्रतीक्षा करो तब वार्त्तालापमें ही उस प्रश्नका उत्तर भी आजायगा और तुमको अद्भुत प्रकाश मिल जायगा वरन् तुम सहस्रों चेष्टाएं करो सब बेकार होंगी। इसने मुझसे एकबार कर्म्मके महत्वके सम्बन्धमें यह कहा "उद्देश और उद्देशके साधनको एक करदो तुम कर्म्मके रहस्यको स्वयं समझ जाओगे" जब तुम कोई काम कररहे हो उसके अतिरिक्त और कोई विचार मनमें न लाओ, समझलो यही आराधना है यही उपासना है और अपनी समस्त शक्ति उसी कर्म्ममें लगा दो, यह कर्म्मकी पूजा अपनी निराला महत्व रखती है। उक्त कहानीमें कसाई और वह स्त्री अपने २ कामको एक चित्त हो शान्तिसे कहते थे और इसका यह परिणाम हुआ कि उनको आत्मिक प्रकाश मिला। हर प्रकार का धर्म्म शुभ है और धर्म्मका पालन करना ईश्वरपूजाका सबसे उत्तम साधन है इससे बडी सहायता मिलती है। मन प्रकाशसे भर जाता है और जो जीव अज्ञानान्धकारमें पडे हुए हैं उनको प्रकाश और शान्ति मिलती है इस कथानकसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्य चाहे जीवनके किसी भागमें और किसी दशामें हो यदि वह कर्म्म करताहुआ कर्म्मफल पर दृष्टि नहीं रखता तब उसको एक न एक दिन आत्माका साक्षात्कार हो ही जाता है।

चहुंओरके सम्बन्धको देखकर हमको धर्म्म और कर्म्मकी समझ आती है ऊंचा या नीचा, कर्म्म दोनों समान हैं जिसको कर्म्म फलकी इच्छा होती है वही शिकायत किया करता है और अपने भाग्य पर विश्वास नहीं करता और जिन मनुष्योंने अपने भाग्यको इस बंधनसे स्वतंत्र कर रक्खा है उनके लिये कोई कर्म्म न ऊंचा है न नीचा प्रत्युत सभी अच्छे हैं, उन्होंने स्वार्थ और सम्बन्धकी जडको काट दिया है और उनकी आत्मा हंसकी समान स्वतंत्रता रूपी आकाशमें उडा करती है और कोई इसको बंधनमें नहीं डाल सकता हममें यह बहुत बडा दोष है कि अपने आपको बडा समझते हैं जब मैं बालक था तो मैं स्वप्नमें देखा करता था कि मैं महाराजा होगया हूँ और मुझमें यह बडाई है वह बडाई है आदि। कदाचित् आपको भी ऐसे स्वप्न दिखाई देते हों परन्तु अन्तमें स्वप्न ही है। प्रकृतिके काममें हर जगह न्यायकी कठिनाइयां दीखती हैं इसलिये हमारे धर्म्म चाहे वे कुछ ही क्यों न हों हमारा ध्यान अवश्य उन पर होना चाहिये। यदि हम अपने धर्म्मको भलीप्रकार पालें तब इस समय जो काम हमारे हाथमें है हमको खूब मजबूत बना देगा और धीरे २ हम किसी ऐसे पदको प्राप्त होंगे जिसका समाजमें बडा मान है। मुकाबला या सन्ताप करनेसे सन्तापाग्नि मनको भस्म करती है शिकायत करनेवाले सदा शिकायत करते रहते हैं उनको चुप या शान्त करदेना कठिन है और उनका समस्त जीवन निष्फलता या असफलतासे पूर्ण होजाता है। आओ हम तुम सब लोग अपना २ कर्म्म करें जो हमारा धर्म्म है उसको दृढतासे पकडलें चलते हुए पहियोंमें कंधोंको लगाकर जोरसे गर्दिश दें इस समय हमको स्वयं प्रकाश मिलजायगा और हमारी आत्मा प्रकाश और आनन्दसे पूर्ण होजायगी! ॥ इति चतुर्थ परिच्छेद समाप्त॥

॥ इति प्रथम भाग समाप्त॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस—बम्बई.

॥ श्रीः ॥

कर्मयोग ।

द्वितीय भाग ।



श्रीयुत पं० ज्वालादत्तशर्मा द्वारा लिखित ।



जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदास

बम्बई

खेतवाडी ७ वीं गली मराठी लेन

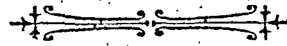
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशितकिया ।

संवत् १९७०, सन् १९१३ ई०

॥ श्रीः ॥

अथ कर्मयोग द्वितीय भाग विषयानुक्रमणिका ।



॥ इति कर्मयोग द्वितीयभाग विषयानुक्रमणिका ॥



वक्तव्य।



वेदान्तका उपदेश सर्व साधारणके लिये हित[illegible] नहीं [illegible] कम मनुष्य उसके अधिकारी हैं। जिनकी वासनाऐं अतृप्त हैं; जिनका मन सामाजिक धर्मसंस्कारसे आच्छन्न है; वे वेदान्तके तत्त्वको न समझ सकते हैं और न उससे कोई लाभ उठासकते हैं। लाभकी बात तो एक ओर रही उलटी हानि ही उठानेकी आशंका रहती है। यावत् मनुष्यका मन मलविक्षेपसे रहित नहीं हुआ, जबतक उसका मन शमादि षट् संपत्तियोंसे विभूषित नहीं हुआ तबतक वह वेदान्तकी चर्चा करनेका अनधिकारी है। किसी बालकसे स्त्रीभोग संबंधी आनंदका वर्णन करना जिस प्रकार बेकार है उसीप्रकार वासनासक्त और अशान्त मनवाले मनुष्यसे वेदान्तकी चर्चा करना फिजूल है। यहां यह प्रश्न उपस्थित होताहै कि वह अवस्था किन साधनोंसे प्राप्त होतीहै जहां पहुंचकर मनुष्य वेदान्तका अधिकारी होता है। इसका उत्तर ही इस छोटीसी पुस्तकमें दिया गया है। जितने प्रकारके बंधनोंमें जीव बद्ध है। उन सबका मूल 'कर्म्म' है। वहींसे बंधन आरंभ होताहै। आधुनिक विज्ञानमें यह बात मानलीहै कि अच्छा बुरा सुख और दुःख एकही पदार्थके भिन्न २ स्वरूप हैं जो कर्म्म मनुष्योंके लिये बंधन स्वरूप हैं—वे ही थोड़े विचारके साथ किये जाने पर—मुक्तिके साधन बन जातेहैं। विष अमृत और अमृत विष बन सकताहै। जो अत्यंत प्रबल पदार्थ हैं उन्हींमें यह विचित्र परिवर्तन संघटित होताहै। अग्निसे बर्फ और बर्फसे अग्नि उत्पन्न होसकती है। जो कुछ हम करतेहैं वे सब कर्म कहलातेहैं; उनके दो भेद हैं एक शारीरिक और दूसरा मानासिक। वे किसी प्रकारके क्यों न हों—पर्वतकी समान स्थूल वा विचारकी समान सूक्ष्म—किसी न किसी रूपमें हमारे लिये बंधन अवश्य बनते हैं। जो कुछ हम करतेहैं उसका सूक्ष्म प्रभाव हमारे ऊपर अवशिष्ट रहजाताहै और उसका ही दूसरा नाम वेदान्तकी परिभाषामें 'बंधन' है बंधन दुःखका मूल है। प्रकृति स्वतंत्रताप्रिय है जड़से लेकर चैतन्य तक(यद्यपि जड़

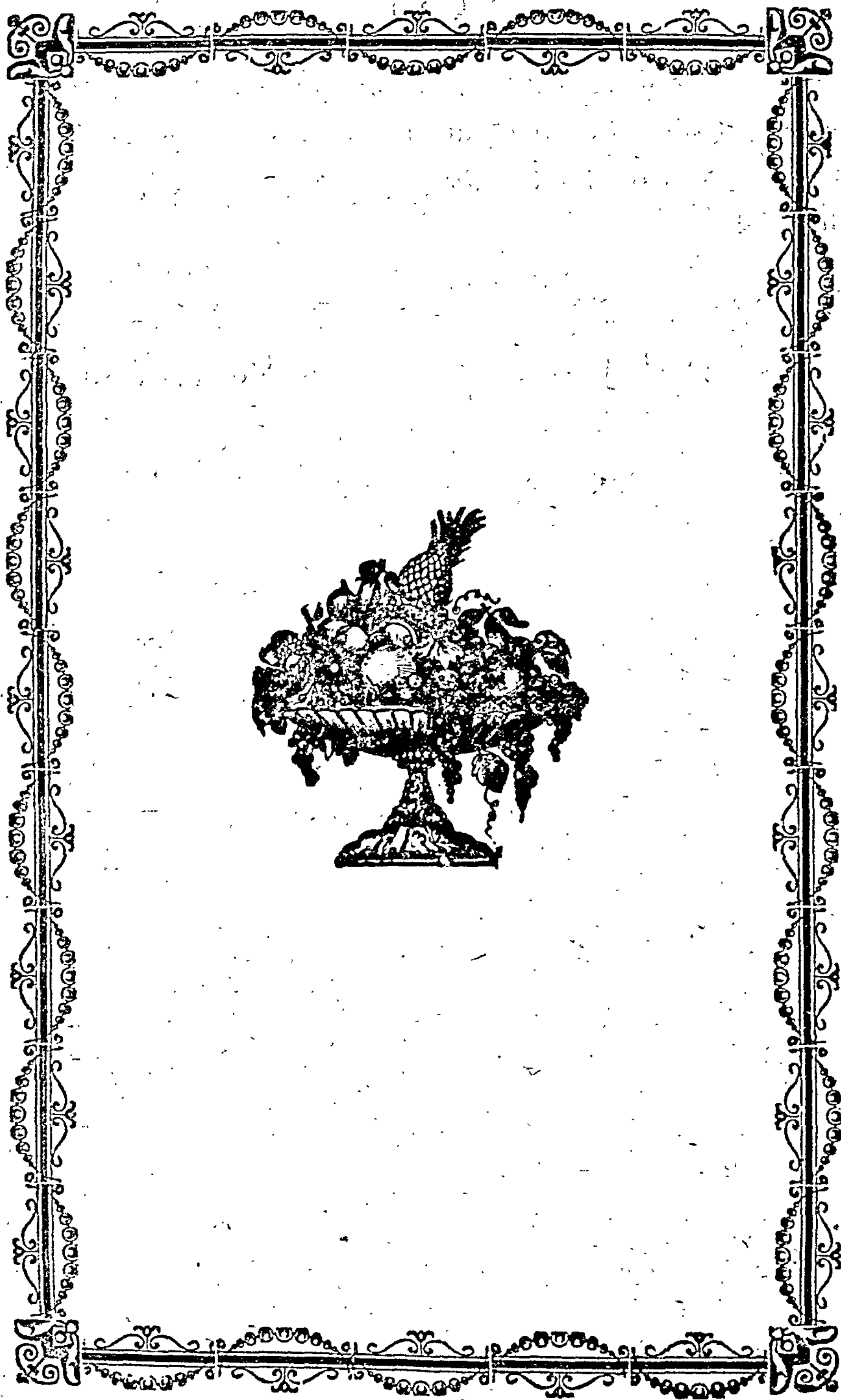
चैतन्यका भेद भी अपेक्षाकृत भेद है; वास्तविक नहीं :) स्वतंत्रता चाहतेहैं। जहां स्वतंत्रता है वहां सुख है,शान्ति है और आनंद है। और जहां परतंत्रता है वहां दुःख है शोक है और विषाद है। इससे यह प्रतिपन्न हुआ कि बंधन विषस्वरूप है। अब हम उसको अमृत बना सकते हैं वा नहीं यह देखना है। विषको अमृत बनाना मनुष्यकी विचारशक्तिका कार्य्य है। उसमेंसे थोड़ेसे परिवर्तनकी आवश्यकता है, और वह परिवर्तन निष्काम भावसे कर्म्म करना है। हम कितने ही कर्म्म करें स्वार्थभावसे काम करनेवाले सज्जनोंसे हजार गुना अधिक काम क्यों न करें यदि हमारा मन निष्काम भावसे काम करनेका अभ्यासी होगया है तब वे कर्म्म–पुंज हमारे लिये रत्तीभी बंधनके कारण न होंगे। साधारण मनुष्य और ज्ञानी मनुष्य जीवकी विकासावस्थाके दो आदि और अंतके भाग हैं। पहिला सबसे नीचा दूसरा सबसे ऊंचा। इन दोनोंके बीचमें यदि कोई विभाग होसकता है तब वह 'कर्म्मयोगी' को मिलेगा। कर्म्मयोगी वासनासक्त साधारण मनुष्योंसे बहुत ऊंचा है;जिन बातोंसे साधारण मनुष्योंका हृदय पद्म कभी खिलता है और कभी कुम्हलाता है उन बातोंसे 'कर्म्मयोगी' का शांत पर दृढ़ मन कभी विचलित नहीं होता; मानो जहां उसकी स्थिति है वहां इन साधारण विषयोंकी गति नहीं। इसीलिये कहागया कि साधारण मनुष्योंसे कर्म्मयोगी (निष्कामभावसे काम करनेवाले सज्जन) की स्थिति बहुत ऊंची है किन्तु साथ ही 'ज्ञानी' से अत्यन्त नीची है। उसका एक कारण है। कर्म्मयोगी निष्काम कर्म करनेका अभिमान करताहै और ज्ञानीकी दृष्टिमें निष्काम और सकाम दोनों शब्द,शब्द ही नहीं;–उनके भीतर भरे भाव भी–कुछ अर्थ नहीं रखते। जिस अनन्ताकाशमें उसका ज्ञानदग्ध मन विचरण करताहै वहां सकाम और निष्काम नामसे कोई भेद नहीं। यह अवस्था बहुत ऊंची है; उसके विषयमें यहां अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझते। वह एक मुख्य विषय है; उसपर कभी स्वतंत्ररूपेण कुछ लिखनेका विचार है। निदान, उस अवस्था तक पहुंचनेके लिये भी हमको "कर्मयोग" का आश्रय लेना पड़ताहै। अत एव इस कर्मके

विज्ञानका जानना क्या सांसारिक विचारदृष्टि और क्या पारमार्थिक विचार-दृष्टिसे बहुत जरूरी है। इसी अभिप्रायसे स्वनामधन्य स्वामी विवेकानन्दजीके कर्मयोग पर दिये ८ व्याख्यानोंका यह हिन्दी अनुवाद आपकी भेंट किया जाता है ।

किसरोल,
मुरादाबाद।

विनीत—
ज्वालादत्तशर्म्मा ।





॥ श्रीः ॥

अथ कर्मयोग.

द्वितीय भाग।



पंचम परिच्छेद ।

हम स्वयं अपनी सहायता करते हैं संसारकी सहायता नहीं करते ।

प्रथम इसके कि हम आपको यह बताएँ कि कर्त्तव्य पालन कहांतक आत्मिक उन्नतिमें सहायकारी होता है, हमको संक्षेपसे यह बतादेना चाहिये कि हिन्दोस्थानमें "कर्म" से क्या अभिप्राय है ? मतमें तीन बातें हुआ करती हैं, प्रथम Philosophy वेदान्त, दूसरे कथानक और तीसरे कर्मकाण्ड । इसमें सन्देह नहीं कि फिलोसफी सब मतोंकी आत्मा है । कथानकोंमें बडे २ महात्माओंके जीवन चरित्रमें फिलोसफी बातें कार्य्यमें परिणत करके दिखाई जाती हैं । कर्म्मकाण्डमें स्पष्टतया वेदान्तके नियम पालनेकी आज्ञा है और ऐसा करनेसे सब Philosophy समझमें आजाती हैं । यह कर्म्मकाण्ड ही "कर्म्म" कहलाता है । हर धर्म्मसम्प्रदायोंमें कर्म्मकाण्डका होना आवश्यक है । कोई मनुष्य जबतक उसमें आत्मिक उन्नतिके चिह्न न उत्पन्न हुएहों तबतक आत्मा सम्बन्धी विषयोंको नहीं समझ सकता । मनुष्य विचारता है कि इसमें हरबातकी समझ बूझ विद्यमान् है; परन्तु जब काम करनेका समय आता है तब कठिन विषयोंका समझना मुश्किल होजाता है, इसलिये उन विचारोंका रूपक बनानेका प्रबंध किया गया है, इस प्रकारके चिह्न हर मतमें हैं । इन चिह्नोंके अतिरिक्त हम किसी और प्रकार ज्ञान प्राप्त नहीं करसकते शब्द स्वयं विचार प्रकट करनेके लिये उसकी कल्पित मूर्त्ति है । एक

प्रकारसे यह ब्रह्माण्ड स्वयं इस प्रकारकी मूर्त्ति है; जिसके आगे पीछे परमात्मा तत्त्ववत् छिपाहुआ है। इन चिह्नोंको केवल मनुष्यहीने नहीं बनाया। यह बात नहीं है कि एक मतके कुछ मतानुयायी एकत्र होकर बैठगए और कुछ चिह्न बनालिये। इन चिह्नोंके हाथ पाव मनुष्यके मस्तिष्कसे नहीं बने प्रत्युत धार्म्मिक चिह्न भी मनुष्यके द्वारा न बनकर प्रकृतिके द्वारा बने हैं। नहीं तो कैसे सम्भव था कि कुछ चिह्नोंके लिये जो विचार हैं वे हर मनुष्यके मनमें कैसे मिलेजुले निकलते? या कुछ चिह्न तो अपनी दशाके अनुसार दिगन्तव्यापी हैं। लोग कहते हैं कि मसीहकी फासीका सम्बन्ध केवल ईसाई धर्म्मसे है परन्तु वास्तवमें इसका चिह्न ईसाई धर्म्मको कौन कहैं मूसाके जन्मसे पहिले भी विद्यमान् था। फीनशन Phœniciens और एज़टिक Aztecs जातिमें मसीहका ध्यान उस समयसे मौजूद है जब संसारको वृत्तान्तके एकत्र करनेका विचार भी न था, हर महात्माकी मूर्त्तिके निकट "हालो" या चक्रका चिह्न भी पहिलेसे मौजूद है। इसके अतिरिक्त "स्वस्तिका" "+" चिह्न भी हर जगह प्रसिद्ध है। पहिले, लोग यह विचार करते थे कि बोद्धोंके कारण यह चिह्न समस्त संसारमें फैल गया है परन्तु अनुसन्धान करने पर ज्ञात हुआ कि बोद्धोंसे हज़ारों वर्ष पहिले इस चिह्नका अनेक जातियोंमें होना पायाजाता है। बाबिल और मिस्रमें भी वह विद्यमान् था। इससे क्या पायाजाताहै? यही कि वह कोई आवश्यकताके लिये चिह्न नहीं बनाए गए थे प्रत्युत उनका कारण कुछ और ही है इनसे मनुष्यका हर देशमें सम्बन्ध रहा है "भाषा" भी इस प्रकार नहीं बनी है ऐसा कभी नहीं हुआ कि कुछ आदमी मिलकर बैठ गएहों, और यह सलाह करली हो कि आओ अपने २ विचार प्रगट करनेके लिये कुछ शब्द गढलें "शब्द" और "विचार" कोई मनुष्य एक दूसरेसे अलग नहीं करसकता। गूंगे और बहरे तक आवाजके संकेत पर सोचते और विचारते हैं हर भावके लिये मस्तिष्कमें एक चित्र नियत होताहै संस्कृतमें इसीको नाम और स्वरूप कहते हैं इनका उत्पन्न करना कठिन है संसारकी कर्मकाण्ड पद्धतिमें हमको मनुष्यके धार्म्मिक विचारका पता मिलता है, यह कहना कि कर्म्म और मन्दिरोंकी

कोई आवश्यकता नहीं है,—आसान है, आजकल एक बच्चा भी ऐसाही कहा करता है, किन्तु यह बात सुगमतासे ज्ञात होसकती है कि जो मनुष्य मंदिरोंमें पूजन करते हैं वे उन लोगोंसे भिन्न हैं जो पूजा नहीं करते। इसलिये मुख्य २ मन्दिर मुख्य कर्म्म और मुख्य २ चिह्नका मुख्य मतोंसे सम्बन्धहै और उन २ मतोंके अनुयायी इन चिह्नोंके द्वारा सत्पदार्थको पाते हैं और इसलिये कर्म्मकी ओरसे आंखें मींचना अच्छा नहीं है "कर्म्मयोग" करते हुए इन सब बातोंका विचार करते रहना चाहिये।

इस कर्म्म योग सायन्स (Science) के अनेक भाग होते हैं, उनमेंसे एक यह है कि भाव और शब्दके बीच क्या सम्मानताहै और "शब्द" की शक्तिसे क्या प्राप्त होसकता है, हर धर्म्ममें शब्दमें शक्ति मानी गई है और इसपर इतना जोर दियागया है कि कुछ मतावलम्बी केवल शब्द ही से सृष्टि मानते हैं ईश्वरीय विचारका बाहरी भाग भी शब्द ही है और चूँकि ईश्वरने पहिले सोचा और इच्छा की इसलिये यह सृष्टि " शब्द " से उत्पन्न हुई। आजकल "भौतिक" समुद्र ज़ोरसे उमड रहा है इसकी तेज़धारोंके कारण मनुष्यकी बुद्धि आगेको नहीं बढती, मन कठोर होरहे हैं, जितना ही लोग संसारमें फसते हैं उतना ही यह भागता है और वे कठोर होते जाते हैं, लोग अन्धकारमें पड़े हुए हे तब भी मनुष्य कभी २ छोटी २ बातोंको देखकर आश्चर्य्यके साथ सोचने विचारने लगता है। और फिर इसको ज्ञानकी ओर कदम उठाना पड़ता है। उत्तम विज्ञान और शब्दके धार्म्मिक महत्त्वको छोड़कर भी यदि हम देखें तब मानुषिक जीवनमें कर्म्म करना भी बहुत बड़ा काम है। मैं तुमसे केवल बातचीत कररहा हूं स्पर्श नहीं कररहा हूँ, मेरे शब्द वायु द्वारा आपके कानोंमें जाते हैं वे तुम्हारे शरीर को छूते हैं और तुम्हारे मनोंमें कुछ प्रभाव होता है तुम विवश हो इस प्रभावको दूर नहीं कर सकते इससे अधिक आश्चर्यजनक और क्या बात हो सकती है? एक मनुष्य दूसरेको "मूर्ख" कहता है दूसरा घूंसा तान कर खड़ा होजाता है और थप्पड़ द्वारा उसका मुंह लाल करदेता है। यह शब्दकी शक्ति है, शब्दकी शक्ति पर तनिक

ध्यान दो एक स्त्री अपने दुःखके कारण रोरही है दूसरी उसको तसल्ली देती-है इसीसे दुःखी स्त्रीका रोना पीटना बन्द होजाता है, इसका रंज कहां चला गया ? वह मुस्कराने लगती है, सोचो, यह शब्दकी शक्ति है, या कुछ और शब्द उत्तम फिलोसफी और जीवनके साधारण वृत्तान्तोंमें बहुत बडी शक्तिका काम करते हैं, रातदिन बिना समझे बूझे और बिना अनुसंधान किये हम इस शक्तिसे काम लेते रहते हैं। इस शक्तिका जानना और काममें लाना कर्म—योग का एक भाग है।

हमारा धर्म्म है, कि हम दूसरोंकी सहायता करैं अर्थात् संसारको लाभ पहुँचावें, प्रकटमें तो लोग यह कहैंगे कि इससे संसारका भला होता है परन्तु वास्तवमें हम अपना ही भला करते हैं। परंतु हम सदा संसारके भला करनेकी चेष्टा करैं, हमारे कर्म्मके लिये यह उद्देश्य होना चाहिये। यदि हम ध्यानसे देखें तब संसारको हमारी सहायताकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है, इस संसारको न तो तुमने बनाया है न हमने बनाया इस लिये हम तुम इसकी क्या सहायता कर सक्ते हैं। एकबार मैंने एक उपदेश पढा उसमें लिखा था—संसार बहुत उत्तम और खूबसूरत है क्योंकि इसके कारण हमको दूसरोंकी सहायता करनेका अवसर हाथ आता है, प्रकटमें यह विचार बहुतही अच्छा है किन्तु दूसरी दशामें ऐसा सोचना अत्यन्तही बुरा है, क्यों ? क्या ऐसा कहना कि संसारको हमारी सहायताकी आवश्यकता है, भूल और निरर्थक नहीं है ? हम इन्कार नहीं कर सक्ते कि संसारमें दुःख नहीं है और इसलिये दूसरोंके लाभके लिये काम करना बहुत अच्छी बात है परन्तु अन्तमें हमको मालूम होने लगता है कि दूसरोंकी सहायता करनेमें हम अपनी ही सहायता करते हैं। जब मैं छोटा बालक था, तब मेरे पास एक सफेद चूहा था, वह एक सन्दूकमें बन्द था, जिसमें छोटे २ पहिये बने हुए थे ये पहिये हर समय घूमते रहते थे और चूहा बाहर नहीं निकल सकता था। ठीक इसी प्रकार संसार और संसारको लाभ पहुंचानेका विचार है इस सहायतासे इतना अवश्य लाभ होता है कि हमारी सभ्यता वृद्धि पाती है। यह संसार न तो बुरा है न भला है, हर समय अपने लिये एक नया

संसार बनाता रहता है। अंधे आदमीका संसार बुरा है या भला, गर्म्म है या ठण्डा। हममें या तो प्रसन्नता है या दुःख है या विपत्ति है, यही दशा हममेंसे हजारों आदमियों की है। नवयुवक प्रसन्न ह वृद्ध दुःखी हैं नवयुवकोंके सामने जीवन है वृद्ध शिकायत करते हैं क्योंकि उनका समय व्यतीत होगया। उनकी सैकडों इच्छाएँ नष्ट हो गईं उनके मनमें संग्राम रहता है उनके लिये जीवन समाप्त होचला, तथापि ये दोनों मूर्ख हैं। जीवन न अच्छा है न बुरा है। जैसा हमारा मन बन गया है वैसा ही संसारको देखते हैं। वही चतुर है जो न बुराईको देखता है न भलाईको। अग्नि स्वयं न बुरी है न अच्छी है, जब हमको इससे गर्म्मी मिलती है, हम कहते हैं अहा ? आग कैसी अच्छी चीज है? परन्तु जब वह हमारी उंगलियोंको जलादेती है तब हम आगकी निन्दा करने लगते हैं, तथापि न वह अच्छी है न बुरी है। जिस प्रकार इसको काममें लाते हैं उसी प्रकार वह भली या बुरी बनजाती है, यही दशा संसारकी है। यह संसार पूर्ण है, पूर्णसे यह अभिप्राय है कि वह अपनी आवश्यकताओंके लिये किसीके अधीन नहीं है। हमको विश्वास रखना चाहिये कि हम चाहे कर्म्म करें या न करें, संसारका काम सदा चलता रहैगा और इसको हमारी सहायताकी अभिलाषा तक न होगी।

तथापि हमको अच्छा बनना चाहिये। भलाईकी इच्छा हमको सभ्य बनानेके लिये एक अच्छा प्रयत्न है, परन्तु हमको यह निश्चय करलेना चाहिये कि हमको शुभ कर्म्म करने और दूसरोंकी सहायता करनेका अधिकार है। ऊंची जगह पर खड़े होकर दो चार पैसे हाथमें लेकर इस प्रकार विज्ञापन मत दो "कि आजा, ऐ निर्धन पुरुष! मैं तेरी सहायता करूं" प्रत्युत तुम उस गरीब मनुष्यको धन्यवाद दो जिसके द्वारा तुमको शुभ कर्म्म करनेका अवसर मिला, इसको सहायता देनेसे वास्तवमें तुमने स्वयं अपनी सहायता की। लेनेवालेके बजाय देनेवालेको कहीं अधिक लाभ होता है, जितने शुभ कर्म्म तुम करोगे उतनाही तुम्हारा मन शुद्ध होगा, अन्ततः हमको क्या करना चाहिये ? शफाखाने बनवाओ, अनाथालय खोलो, आप कितनाही सदावर्त्त खुलवाएं दस बीस करोड रुपया

एकत्र करलो परन्तु इससे क्या होगा, एक झोंका आया और सब अनाथालय नष्ट हो गए तब क्या करना चाहिये, एक जरासे भूकम्पने सब मकानों सफाखानों और अनाथालयोंको नष्ट भ्रष्ट करदिया। संसारके उपकार करनेके झूंठे विचारको मनसे निकालदो, संसार आपकी सहायताकी प्रतीक्षा नहीं करता तथापि हमको काम करना चाहिये वह हमारे लिये कल्याण-कारी होगा, यही एक साधन पूर्ण बननेका है जिस भिखारीको हमने सहायता दी वह कदापि हमारा ऋणी न था प्रत्युत हम इसके ऋणी हैं क्योंकि उसने हमको अच्छे काम करनेका अवसर दिया इस बातका विचार नहीं कि हमने संसारका उपकार किया बडी भारी भूल है, यह मूर्खोंकीसी बात है। और इस प्रकारके विचारोंसे विपत्ति और दुःख उत्पन्न होता है, हम सोचते हैं कि हमने किसीको सहायता दी है और आशा करते हैं कि वह हमारा धन्यवाद करै और वह ऐसा नहीं करता तो तत्काल हमको विपत्ति आघेरती है हम क्यों उदारताके बदले ऐसे प्रतीकारकी आशा करैं ? प्रत्युत जिस मनुष्यकी तुम सहायता करो उसके कृतज्ञ हो और उसको देवता समझो, क्या मनुष्योंके उपकार करनेमें एक प्रकारकी ईश्वरकी उपासना नहीं होती ? अवश्य होतीहै। यदि हम बिल्कुल संगको छोडदें तब तृष्णा, आशा और प्रतीक्षा सम्बन्धी सब क्लेशोंका एक साथ नाश होजाय, और प्रसन्नतासे संसारमें सब काम कर सकैं, इस प्रकार असंग होकर काम करनेसे कभी दुःख या अप्रसन्नता नहीं उत्पन्न होती, संसार जैसा सुख दुःखमय अब है, वैसा ही रहैगा।

एक निर्धनको धनकी आवश्यकता थी उसने सुनरक्खा था कि यदि भूत वशमें होजाय, तब दमके दममें मालेमाल होजाय, इसलिये उसके मनमें भूतके वश करनेका विचार समाया वह ऐसे आदमीको ढूंढने लगा जो भूतके वश करनेका साधन बतासके, अन्ततः उसको एक महात्मा मिले, और उनसे निवेदन किया, महात्माने पूंछा "तू क्या–चाहता है ?" उसने कहा "मैं भूत चाहता हूं जो मेरे लिये काम किया करै आप बताइए कि उसको कैसे प्राप्त करूं" महात्माने कहा "घर जा इसीमें कुशल है" इस दिन तो वह चलागया। दूसरे दिन फिर आया और महात्मासे रोकर भूतकी प्राप्तिके

लिये निवेदन करने लगा। साधुने मुँह वनाकर कहा अच्छा यह यंत्र लेजा, और इस मंत्रको पढ भूत तेरे पास आजायगा, और जो कुछ कहेगा वह सबकुछ कर देगा परन्तु सावधान रहना, भूत बुरे होते हैं यदि तुम उनको काम न दे सके तव तुम्हारी जान लेलेंगे उसने कहा "मेरे पास बहुत काम है" वह प्रसन्न २ घर आया और मंत्र सिद्ध करने लगा, मंत्रके जपते ही एक भीमकाय देव जिसके वडे २ भयंकर दन्त थे पृथ्वीमेंसे निकला और कहने लगा "मैं भूत हूं, तूने मुझको वशमें करलिया है, अब मुझको काम बता जब तू मुझे काम नहीं बता सकेगा मैं तुझको मारडालूं गा" उसने कहा "मेरेलिये महल बना दे" भूतने उत्तर दिया "तय्यार हो गया" उसने कहा "रुपया लेआ" उत्तर मिला "तेरा घर रुपयेसे भर-गया" इसने कहा "जंगलको काटकर गिरादे" भूतने कहा "जंगल काट दियागया" आदमीवोला "एक नगर बसादे. भूतने कहा "नगर वसगया अब दूसरा काम बता" अब इस आदमीकी बुद्धि चकराई सोचने लगा यह अद्भुत मनुष्य है, हर काम को पलभरमें करदेता है अब मैं इसको क्या काम बताऊँ? भूतने कहा "जल्दी काम वताओ नहीं मैं तुमको खाजाऊं गा" इस बिचारे मूर्खके पास कुछ काम नहीं रहाथा डरके मारे भाग निकला और महात्माके पास जाकर कहने लगा "महाराज! वचाओ नहीं तो भूत खाजायगा" महाराजने कहा "क्या बात है?" आदमी वोला "मैं इसको काम नहीं दे सक्ता जो कुछ कहताहूं पल भरमें करदेता है और धमकाता है कि यदि काम न दोगे, तब मारडालूं गा अभी बात समाप्त नहीं हुई थी कि भूत भी वहाँ आपहुंचा और मुँह फाड़कर उसकी ओरको झपटा, आदमी डरके मारे कम्पने लगा और फिर महात्मासे बचानेके लिये प्रार्थना करने लगा, साधुने कहा "कुछ हानि नहीं मैं तुमको बचादूंगा देखो इस कुत्तेकी पूंछ टेढी है इसको तलवारसे काटकर भूतको दो और उससे कहो कि इसको सीधा करै," आदमीनें पंछ काट ली और भूतसे कहा "इसको सीधी करो" भूतने हाथमें पंछ लेकर उसको सीधा करना आरम्भ किया, धीरे २ उसको जभी सीधा करके हाथ उठाया पूंछ फिर टेढी हो २

गई। वार २ सीधी करी वादको फिर टेढी हो २ गई । कई दिनतक इस काममें लगा रहा परन्तु कुत्तेकी दुम सीधी न हुई कई दिन लगगए अन्तको वह कहने लगा "भाई ! ऐसे कष्टमें मैं कभी नहीं पडा अब मैं तुझसे संधि करता हूं मैंने जो कुछ तुझको दिया है वह सब कुछ तू लेजा और मेरा पीछा छोड । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि कभी तुझको हानि न पहुंचाऊं गा" आदमीने प्रसन्न होकर इसकी वात मानली और उसको छोडदिया ।

यह संसार भी कुत्तेकी टेढी पूंछ है लोग सदा इसको सीधा करनेकी चेष्टा करते आए हैं सैंकडो वर्ष चेष्टा की गई परन्तु अन्तमें टेढी की टेढी रही, इसके अतिरिक्त वह और क्या हो सक्ती है ? प्रथम मनुष्यको सोचना चाहिये कि कर्म करनेका ढंग क्या है, ताकि वह कट्टर संकुचितहृदय और पक्षपाती न बने । संसारमें सैकडों प्रकारके कट्टर हैं एक शरावी कट्टर दूसरा तम्वाक कट्टर आदि २ यह लोग बिना प्रयोजन ही दूसरोंके साथ उलझते रहते हैं, शिकारोमें एक भली मानस लेडी है । उसने एक मकान बनाया है जिसमें और स्त्रियां व्यायाम कसरत करने जाती हैं. एक दिन यह लेडी (Lady) तम्वाक और शरावके विरुद्ध वार्त्तालाप कररही थी, उसने मुझको सम्वोधित कर कहा "मेरे पास इसकी चिकित्सा है" मैंने पूंछा "वह क्या है" उसने कहा "क्या आपने मेरे मकानका वृत्तान्त नहीं सुना है" उस स्त्रीके मनमें यह वात समा गई थी कि जो मनुष्य उसके मकानमें जायगा चाहै उसमें कितनी ही बुराई हों वह भला मानस वन जायगा हिन्दोस्थानमें भी ऐसे कट्टर प्रायः वे कहते हैं यदि एक स्त्रीको दो चार पति करनेका अवसर प्राप्त होजाय तव अभी बुराई की इतिश्री हो जाय । यह कट्टरपनकी वात है परन्तु बुद्धिमान् कट्टर नहीं होते, कट्टर आदमी कोई उत्तम काम नहीं कर सकते, यदि संसारमें कट्टरपन नहीं होता तव कदाचित् इससे अधिक उन्नति होजाती, यह नितान्त मूर्खता है कि कट्टरपनसे मनुष्य उन्नति कर सकेगा, हां ! इससे घृणा और क्रोध अवश्य वढजाता है, लोग खूब आपसमें लडने झगडने लगते हैं और ऐसी वातों पर तय्यार होजाते हैं वास्तवमें जिनकी कुछ प्रतिष्ठा नहीं । इसलिये, तुम इस कुत्तेकी पूंछ-

वाली कथाको स्मरण रक्खो, तुम अवश्य कट्टरपनके संक्रामक रोगसे मुक्त होजाओगे संसारके लिये अधिक चिन्तामें पड़ना वृथा है, हजार चेष्टा करो संसार ज्यूँका त्यूँ रहैगा, जगत् जगन्नाथका है वही इसका स्वामी और संरक्षक है, शराबी कट्टर तम्बाकू कट्टर और हर प्रकारके विवाह कट्टर कितनी ही चेष्टा करें संसार उसीके अधीन काम करता रहैगा, जब तुम कट्टरपनेसे छूटगए उसी समयसे तुम्हारा काम अच्छा होने लगेगा, चतुर धीर और परिणामदर्शी मनुष्य ही जो चुपचाप सत्यतासे काम करते हैं प्रेमसे बहुत बडा काम निकाल लेते हैं इनके द्वारा संसारका उपकार होता है और स्वयं इनका उपकार होता है। कट्टरपना निंद्य कर्म है कट्टर मनुष्यमें प्रेमकी मात्रा नहीं होती वह न तो संसारको सीधा कर सकैगा और न अपने ही को सीधा बना सकैगा।

तुमने सुनाहोगा कि लोग एक मुख्य फूलके लिये अनेक विश्वास रखते हैं इसका नाम अंग्रेजीमें मेफ्लावर (may flower) है वे कहतेहैं कि वे, पहिले शुद्ध और पवित्र थे परन्तु फिर बिगड गए, और दूसरोंको भी बिगाडने लगे यही दशा संसारमें सर्वत्र है जो लोग दूसरोंको दुःख देनेसे बचते थे समय आनेपर अत्यन्त कठोर और कुटिल बनजाते हैं, मैंने दो प्रकारकी नावका वृत्तान्त सुनाहै एक सेनाकी नाव है दूसरी मेफ्लावर may flower की नाव है, अमेरिका (America) निवासी कहते हैं वे, मे फ्लावरसे आए हैं मैं एक भी ऐसे आदमीसे नहीं मिला जो यह न कहता हो कि मेरे पुरुषा मे फ्लावरसे नहीं आए। यह कट्टरपनका एक जाज्वल्यमान प्रमाण है समय आएगा कि जब वैद्य बता सकेंगे कि कट्टरपन भी एक रोग है मैंने इस रोगके रोगीसे सैकडोंही देखे हैं ईश्वर! "मुझको इस रोगसे दूर रखे।"

मेरा अनुभव है कि हमको हर प्रकारके कट्टरपनसे अलग रहना चाहिये और जहांतक सम्भव हो कट्टरपनेके सुधारसे मुक्ति माँगनी चाहिये क्या तुम्हारे विचारमें जो शराबके विरुद्ध द्वन्द मचाते हैं गरीबोंके सहायक हैं? नहीं हर कट्टर आदमी अपने कट्टरपनेका प्रतीकार चाहता है जहां लडाई हुई उनको लूटके मालकी आशा बंध जाती है, तुम इन कट्टर आदमियोंकी

गोष्ठीसे बाहर निकल आओ, तब तुमको सच्चे प्रेम और उपकारका रहस्य मालूम होजायगा, जिस समय तुम शराबी प्रेमसे मिलोगे और समझेंगे कि शराबी भी माना कि उसमें अनेक दोष हैं तथापि तुम्हारी ही समान आदमी है तब तुम समझोगे कि वह किन कारणोंसे शराब पीताहै सम्भव है तुमको उन कारणोंके होते हुए आत्मघात करलेना पडता। मुझको याद है मुझसे अमेरिका-की एक स्त्रीने अपने पतिकी निन्दा की. कहा कि वह शराब पीता है मैं समझता हूं उसी देशमें बहुतसे आदमी अपनी स्त्रियोंसे तंग; आकर शराबी बनजाते हैं जिससे कि दुःखको भूल जांय; मेरा अभिप्राय केवल सचाईको प्रकट करता है खुशामद करना नहीं है। बहुतसी कुटिला स्त्रियोंके मस्तिष्कमें क्षमा करनेका भाव तो प्रायः नष्ट होचला है और दूसरेको दुःख देनेका विचार कुछ ऐसा उनके मनमें समा गया है कि वह पतिको छाया की भाँति अपने पीछे रखना चाहती हैं और जहां पुरुषने जरा जबान खोली उसी समय ऐसी बुरी तरह खबर लीगई कि विचारे को आत्मघातही करते बनी इस प्रकारकी स्त्रियां पाश्चात्य देशोंमें बुरी बलाएँ हैं। बुभुक्षित पादरी इनके पक्षमें होकर बोलते हैं कि धन्य! रमणी कुल कमल! धन्य! तुम संसारमें निराली और अद्भुत सृष्टि हो और वे कुप्पेकी समान फूलकर कहने लगती हैं "बस! बस!! यही पादरी हमारे कामका है!" और रुपया पैसासे इसकी सहायता करती हैं इस प्रकारके दृश्य हर जगह दिखाई दे रहे हैं, जीवन क्या हुआ एक दिल्लगी हुई इसको तनिक बुद्धिमानीसे ज्ञान चक्षु द्वारा भी देखना चाहिये।

हमारे इस व्याख्यानका संक्षेप यह है कि हम तुम सब लोग संसारके ऋणी हैं संसार हमारा ऋणी नहीं है। संसारका उपकार करनेमें हम अपना उपक्रम स्वयं उपकार करते हैं दूसरी बात यह है कि इस संसारका रक्षक ईश्वर है यह बात सत्य नहीं है कि संसार हमारे उपकारका भूखा है, ईश्वरका हाथ संसार पर है वह अजर अमर नित्य शुद्ध बुद्ध ईश्वर उसकी रक्षा किया करता है; जब संसार सो जाताहै तब वह जागता है, उसको नींद नहीं आती, वह सर्वदा काममें लगा रहता है, और यह संसार उसीका बनाया हुआ है तीसरे हमको किसीसे घृणा करनी न चाहिये संसार बुराई भलाईसे

मिश्रित है हमारा धर्म्म है कि निर्बल और पापी मनुष्योंके साथ भी प्रेमसे वर्त्ताव करें। संसार एक अखाडा है जहां व्यायाम करके सबको आत्मिक बलकी प्राप्ति करना है। चौथे हमको किसीप्रकारका कट्टर न बनना चाहिये, क्योंकि कट्टर मनुष्य प्रेमसे रिक्त होते हैं, कट्टर मनुष्य कहा करते हैं कि "हम पापीसे घृणा नहीं करते केवल पापसे घृणा करते हैं किन्तु यदि मुझसे पूंछा जाय तब मैं ऐसे कट्टरके दर्शन करनेके लिये बहुत दूरकी यात्रा करनेको उद्यत हूं जो पाप और पापीको जानता है, इस प्रकार कहदेना सहज बातहै यदी हममें भी यह योग्यता होती तब हम भी पूर्ण बनजाते यह योग्यता कुछ साधारण बात नहीं है, इसके अतिरिक्त अन्तिम बात यह है कि कभी मनमें क्रोध अशांति न आनेदो और जितना अधिक तुममें प्रेम बढता जायगा उतना ही तुम्हारा कर्म्म उत्तम होता जायगा।

॥ इति पञ्चम परिच्छेद समाप्त ॥

अथ षष्ठ परिच्छेद ।

संगका त्याग ही सच्चा उपकार है। जिस प्रकार हमारे कर्मोंका फल हमको मिलता है उसी प्रकार हम पर दूसरोंके कामका और दूसरों पर हमारे कामोंका प्रभाव पड़ता । कदाचित् तुम सबने देखा होगा कि जब कोई बुरा काम करने लगता है तब वह नित्यप्रति बुरा ही होताजाता है, और जब कोई भलाई करने लगता है तब नित्यप्रति वह नेक एवं भला ही होता-जाता है और अन्तमें उससे सदा शुभ कर्म्म ही बना करते हैं। कामके इस गहरे प्रभावकी इससे अधिक और क्या व्याख्या होसकती है कि हमारे कामोंका एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है । मनो विज्ञानके सिद्धान्त पर एक उदाहरण देता हूँ, मानलो कि मेरा मन एक मुख्य दशा पर स्थित है और इसलिये जिन मनुष्योंके मन मेरे मनकी समान बनेहुए हैं उनमें मेरे मनके प्रभाव पडेंगे यदि एक कमरेमें अनेक सितारोंकी खुण्टियां इसप्रकार

ऐंठीजांय कि इनसबसे एक ही प्रकारकी ध्वनि निकले और सब अलग २ रखदिये जांय तब एकके तार छेड देनेसे दूसरीमें से वैसीही आवाज स्वयमेव निकलने लगेगी, इससे यह फल निकला कि इन सब सितारोंमें समानता थी, और सबमें एक प्रकारकी ध्वनि निकालनेका भैलान विद्यमान् था। बहुतसे मनुष्योंके मन जो आपसमें एक दूसरेसे मिलते हैं इसी प्रकार एक मुख्य विचारसे उन पर प्रभाव डाला जासक्ता है। इसमें संशय नहीं कि दूरी तथा अन्य कारणोंसे इसमें विघ्न अवश्य होगा परन्तु ये सब भय इस विचारके प्रभावके लिये उपस्थित थे। मानलो मैं एक बुरा काम कररहा हूं, मेरा मन एक मुख्य दशामें है और संसारमें जितने मन मेरे मनकी समानहैं सम्भव है मेरे विचारका प्रभाव उन सब पर पडजाय, इसी प्रकार जब मैं अच्छे काम करने लगता हूं मेरे मनोविचारका प्रभाव मेरे मनकी समता रखने वाले सब मनो पर पडजाता है, जितनी न्यूनाधिक समता होगी, उतना ही न्यूनाधिक प्रभाव होगा।

इसकी और अधिक व्याख्याके लिये इसी क्रममें यह सम्भव है कि जिस प्रकार प्रकाश धारायें एक मुख्य जगह पर पहुंचनेके लिये करोडों वर्ष तक यात्रा करती रहती हैं इसी प्रकार सम्भव है कि विचारकी लहरें उस समय तक बराबर चक्रमें रहें जब तक उनके प्रवेश करनेके लिये कोई उपयुक्त मन न मिलजाय। इसलिये यह नितान्त सम्भव है कि हमारे चहुंओरकी वायु बुरे और भले विचारोंकी लहरोंसे भरी हो। प्रत्येक विचार जो किसी मस्तिष्कसे निकला हो उस समय तक बराबर चक्र लगाता रहता है जब तक उसको उपयुक्त मन न मिलजाय जो मन कि उसको ग्रहण करनेके लिये खुला है वे इसकी ओर मुडेंगे और तत्काल उसमें प्रविष्ट होजायँगे। बस जिस समय मनुष्य बुरे कर्म्म कररहा है उसने अपने मनको मुख्य दशापर खोल रक्खा है और समस्त उन विचारोंकी लहरें जो उसके विचारों से समता रखते हैं और जो वायुमण्डलमें घूम रहीहैं उसके मनमें प्रविष्ट होंगी यह कारण है जो बुराई करने वाला बुरा बनजाता है यही दशा भलाई करनेवालेकी है। उसका मन समस्त नेकी या भलाईके

विचारोंको ग्रहण करनेके लिये खुला रहैगा, जो लहरें वायुमें चक्कर लगारही हैं और उसमें मुख्य प्रकारकी दृढता आजायगी। बुराई करनेसे हमारी दो प्रकारकी हानि है प्रथम यह कि हम बुराई करनेसे अपने मनको बुराईके विचार ग्रहण करनेके लिये खोलदेते हैं, दूसरे हमारे बुरे बननेसे दूसरे भी इस बुराईसे प्रभावित और पीडित होंगे। यह भी सम्भव है कि हमारी बुराईसे हजारों वर्ष बाद लोगोंको हानि पहुंचे। बुराई करनेसे न हम अपनेको ही हानि पहुंचाते हैं प्रत्युत दूसरोंको भी हानि पहुंचाते हैं यदि हम इसके विरुद्ध भलाई करें, तब इससे हमारा भला हो और दूसरोंका भी भला हो। मनुष्यकी अन्यान्य शक्तियोंकी भांति भलाई और बुराईकी शक्तियां भी बाहरसे अपनी सहायताकी सामग्री खोजती हैं।

कर्मयोगके अनुसार मनुष्यके कर्म्म उस समय तक नष्ट नहीं होते यावत् उनका फल मिलजाय, प्रकृतिकी कोई शक्ति उसको अपना फल उत्पन्न करनेसे नहीं रोक सक्ती। यदि मैं बुरा काम करता हूं तब मुझको इसका प्रायश्चित्त भुगतना पडै गा संसारमें कोई शक्ति नहीं जो इसके विरुद्ध कुछ कर सके। इसी प्रकार यदि मैं भलाकाम करताहूं तब संसारकी कोई शक्ति इसको शुभ फल देनेसे नहीं रोक सक्ती। हर कर्मका कुछ न कुछ फल अवश्य होता है, इसमें कोई रोक टोक नहीं कर सकता। अब कर्म्मयोगके सम्बन्धमें एक बडा आवश्यकीय प्रश्न आता है, वह यह है कि हमारे सब कर्म्म अच्छे और बुरे, सब आपसम एक दूसरेके साथ रले मिले है, हम इनको पृथक् करके नहीं कह सक्ते कि यह अच्छा है, यह बुरा है या यह काम बिल्कुल बुरा है या बिल्कुल अच्छा है। कोई ऐसा काम नहीं है जिसमें अच्छे और बुरे दो प्रकारके फल एक ही समयमें न आते हों। बहुत ही निकटका उदाहरण ले लीजिये "मैं तुम्हारे साथ इस समय बातचीत कररहा हूं" तुम समझते हो मैं अच्छा काम कररहा हूं परन्तु स्मरण रक्खो कि इस समय वायुमण्डलमें करोडों प्राणी विद्यमान् हैं जो मेरी आवाजकी थरथराने वाली ध्वनिसे मर रहे होंगे, इस प्रकार मैं साथ २ बुराई भी करता जारहा हूं इसलिये मनुष्यका कोई काम ऐसा नहीं है जो बिल्कुल ही बुरा और बिल्कुल

ही अच्छा हो, जब काम हमारे निकट होता है और लोगोंपर उसका प्रभाव पडता है तब हम कहते हैं कि यह काम अच्छा है अर्थात् तुम मेरे व्याख्यानको अच्छा समझते हो, परन्तु वायुमण्डलमें घूमने वाले कीडे ऐसा न समझते होंगे इन प्राणियोंको तुम नहीं देखते तुम अपने निकट वैठे हुए मनुष्योंको देख रहेहो, जिस प्रकार मेरे वचन तुमपर प्रभाव डालरहे हैं इसकी तुमको सुध है परन्तु वायुमण्डलमें घूमनेवाले अदृश्य कीडोंके मनकी वातको तुम क्या जानो ? और इसी प्रकार यदि हम अपने बुरे कर्मोंकी विवेचना करें, तब हमको ज्ञात होगा कि इससे कहीं अच्छे फल भी उत्पन्न होरहेहोंगे । वह मनुष्य जो अच्छे काममें बुराई देखता है और बुराईमें भलाईका मिलाहुआ समझता है उसने कर्म्मके रहस्यको जानलिया है ।

किन्तु इससे क्या प्रकट होता है ? यह परिणाम निकला कि हम हजार चेष्टा करें कोई काम ऐसा नहीं करसक्ते जो बिल्कुल ही बुरा या बिल्कुल ही भला हो और न कोई ऐसा कर्म्म हो सक्ता है जो साथ २ सुख दुःख देनेवाला न हो ! हम दूसरोंको बिना कष्ट दिये न जी सक्ते हैं न श्वास ले सक्ते हैं हमारे मुंहका प्रतिग्रास ऐसा है जो दूसरोंके मुंहसे छीना जाता है, हमारे जीवन स्वयं दूसरोंके जीवनोंका नाशकारक है । भगवद्गीताकी शिक्षा है चाहै मनुष्य हो या पशु कीट हो या पतंग, इनमेंसे किसी न किसीको मरना अवश्य है जब यह हाल है तब इससे स्पष्टतया सिद्ध है कि किसीको हानि न पहुंचानेवाला कर्म्म किसी प्रकार प्राप्त नहीं होसक्ता । हम जीवनभर काम करते रहें पर इस भ्रमरसे निकलना कठिन है तुम नितान्त कर्म्म करतेरहो अन्तमें भलाई और बुराईके साथ पाला पडता रहैगा ।

दूसरी वात सोचनेकी यह है कि कर्म्मका फल क्या है ? हर देशके निवासी विचार रहे हैं कि एक समय ऐसा आएगा जब यह संसार पूर्ण होजायगा, और उस समय वीमारी दुःख और मृत्यु नामको न रहैगी । यह सुननेमें अच्छा मालूम होताहै, विचार भी अच्छा है और इससे शुद्ध वनने और मूर्खोंके उद्धार करनेकी युक्ति हाथ आती है किन्तु यदि हम थोडी देरके लिये सोचें तब भलीप्रकार समयमें आजायगा कि ऐसा कभी सम्भव ही नहींहै कि यह

किस प्रकार सम्भव हो सक्ता है कि जब एक पदार्थ के दो अलग २ भाग भलाई और बुराई विद्यमान् हैं ? एकही समयमें हम कैसे कोई काम करसक्ते हैं जिसमें भलाई और बुराई मिली नहीं Perfection या पूर्णतासे तुम्हारा क्या अभिप्रायहै ? पूर्ण जीवन भ्रममात्र है जीवन स्वयं उस गडबडका नाम है जो हमारे भीतरी और बाहरी सम्बन्धोंमें विद्यमान् है और यदि हम हार जांय तब जीवन समाप्त होजाता है यदि भोजन और वायु न मिले तब वहीं इसकी समाप्ति होजाय, जीवन कोई एक चीज नहीं है प्रत्युत यह मिश्रित फल है । बाहरी और भीतरी सम्बन्धोंके झगडोंका नाम ही जीवन है बस इससे स्पष्टतया सिद्ध है कि जब झगडे न रहैंगे तब जीवन स्वयं लोप होजायगा ।

उत्तम बल, प्रसन्नता या अत्यानन्दसे जो अभिप्राय है उसका अर्थ यह है कि जब वह दशा होजायगी ये सब खींचा तानी दूर होजायगी परन्तु तब जीवन न रहै गा, और ये झगडा उस समय समाप्त होंगे जब जीवन समाप्त होगा, जब हम इस सुखकी दशाका हजारवां भाग भी प्राप्त करलेंगे तब यह संसार बिल्कुल शान्त हो जायगा और हमारा चिह्न तक बाकी न रहैगा, इसलिये इस संसारमें उस अन्तिम दशाका ध्यान रखना भूल है मानो कि वह दशा कहीं और प्राप्त होगी, । हम पहिले निवेदन कर चुके हैं, कि इस संसारके उपकार करनेमें हम अपनाही उपकार करते हैं कर्म्म करनेका सच्चा अर्थ यह है कि हम अपने आपको शुद्ध बनालेते हैं दूसरोंके लाभके विचारमें हमको अपनी सुधि भूल जाती है बस यही सच्चा योग है जो हमको जीवनमें प्राप्त करनाहै । मनुष्य मूर्खतासे सोचा करता है कि हम अपने आपको प्रसन्न करसक्ते हैं किन्तु वर्षों बाद इसकी आंख खुलती है कि सच्ची प्रसन्नता स्वार्थत्यागमें है और स्वार्थ छोडकर हम प्रसन्न बन सक्ते हैं उदारता भलाई और उपकारके सब काम स्वार्थको हमसे छीनते रहते हैं, हम अपने आपको कुछ नहीं समझते प्रत्युत सबसे नीच समझते हैं । यहीं आकर हमको मालूम होजाताहै कि भक्ति ज्ञान और कर्म्मका फल एकही है योग ही जीवनका उद्देश है जिसमें स्वार्थ नामको नहीं रहता बल्कि जहां "तत्" के

अतिरिक्त "मैं" की गुंजाइश ही नहीं है। मनुष्य चाहे इसको जाने या न जाने कर्म्म योग उसको इस सीढी तक पहुंचादेता है। धार्म्मिक उपदेशक चाहे अव्यक्त ईश्वरका नाम सुनकर हक्का बक्का रहजाय इसका समस्त बल व्यक्तिवाचक ईश्वर पर है और चाहै वह कुछ ही क्यों न कहा सुना करै वह हर समय अपनी व्यक्ति विशेषता कि आगे धरता है यह चाहे कितनाही सभ्य हो परन्तु इसमें सच्ची उदारता कभी न आयेगी। सच्ची उदारता और अपने जीत लेनाही सच्ची सभ्यताकी मूल है इसको देवताओं तक फैला सक्ते हो यह एक ऐसा नियम है जो तुमको हरस्थल पर दृष्टिगत होगा।

इस संसारमें नाना प्रकारके मनुष्य हैं, प्रथम ईश्वर कोटके मनुष्य हैं। जो सच्चे उदार और ज्ञानी हैं और जो स्वयं संकटमें पडकर मूसरोंका काम करते हैं ये सबसे उत्तम हैं। यदि किसी देशमें ऐसे १०० महात्मा भी विद्यमान हों तब उस देशको निराश न होना चाहिये। परन्तु शोक है कि ऐसे मनुष्य बहुत ही कम हैं। उनके बाद भले आदमियोंका नम्बर आता है, जो उस समय तक भलाई करते रहते हैं जबतक उनकी स्वयं कोई हानि न हो। तीसरे नम्बरमें असुर कोटिके मनुष्य हैं, जो अपना भला और दूसरोंकी हानि करते हैं। संस्कृतके एक कविने कहाहै कि संसारमें एक चौथे प्रकारके मनुष्य और हैं जो निष्प्रयोजन दूसरोंको हानि पहुंचाते हैं। जिस प्रकार उत्तम कक्षामें वे महात्माहैं जो अपनी हानि होते हुए भी दूसरोंका भला करतेहैं उसी प्रकार नीच कोठिमें ऐसे मनुष्य हैं जो अपना किसी प्रकारका लाभ भी न होते हुए निष्प्रयोजन दूसरोंकी हानि करते हैं। परन्तु बुराई करना उनका स्वभाव होगया है। इनके लिये मानुषिक कोशमें कोई शब्द नहीं है। इस कविके विचारके अनुसार उत्तम कोटिके वेही मनुष्यहैं जिनमें किसी प्रकारका स्वार्थ नहीं है और जो औरोंके लिये अपने नोछावर कर देते हैं।

संस्कृतमें दो शब्द हैं, प्रवृत्ति और निवृत्ति संसारसे सम्बन्ध रखना प्रवृत्ति है और इसका त्याग करना निवृत्ति है। प्रवृत्तिमें मेरा तेरा उसका विद्यमान् है। स्वार्थ, नाम, दाम सम्पत्ति, धन और प्रसिद्धिकी तृष्णा भी इसीमें आजाती है। प्रवृत्तिसे यह अभिप्रायहै

कि दूसरोंका धन लूटकर अपना करलिया जाय, जिस समय मनुष्यकी निष्ठा इसमार्गसे हटती है उसी समयसे "निवृत्ति" आरम्भ होजाती है और सदाचार और धर्म्मका संस्कार मनमें उत्पन्न होजाता है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों ही कर्म्ममें सम्मिलित हैं। एक बुरा कर्म्म है दूसरा अच्छा कर्म्म है। निवृत्तिमें त्याग वैराग्य उदारता और शुभ कर्म्मोंका प्रयोग होता है, जिस समय किसी मनुष्यकी यह दशा होजाती है उसको "कर्म्मयोग" का अन्तिमफल मिलजाता है। यह कर्म्मका सबसे उत्तम फल है। माना कि मनुष्य फिलोसोफीसे नितान्त बेसुध हो, चाहे वह ईश्वरपर भी विश्वास न रखताहो चाहे उसने कभी ईश्वरके प्रति वन्दना न की हो, किन्तु यदि शुभ कर्म्मोंकी शक्तिने उसको इस दशामें पहुँचादिया है कि वह दूसरोंके लिये अपने प्राण देनेको तय्यार है, तब वह उसी पदपर पहुंचगया जो पद उपासना, ज्ञान और भक्तिसे मिलता है। क्योंकि इन सबका अभीष्ट फल एकही है और ये सब ममताके शत्रु हैं। चाहें इनके अन्य मतावलम्बियों-के धर्म्म एवं शास्त्रमें भेद हों परन्तु जिस समय दूसरोंकी भलाईमें प्राण देनेवाला मनुष्य खडा होजायगा सब इसकी प्रतिष्ठा करनेके लिये विवश होंगे, यहां जाति एवं धर्म्मका प्रश्नही नहीं आएगा वल्कि वे, लोग जो इसके साथ धर्म्ममें भेद रखते हैं जब इसकी उदारता और त्यागके उदाहरण देखेंगे उनके मनमें सच्ची भक्ति उत्पन्न होगी। ईसाई देशोंमें एक भी ऐसा कट्टर ईसाई न मिले गा जिसने एडविन एर्नोल्ड (Edwin Arnold's Light of Asia) "लाइट आव एशिया" को पढकर गौतम बुद्धके चरणोंमें अपना शिर न झुकाया हो। बुद्धने त्याग और उपकारके अतिरिक्त कहीं भी ईश्वर सम्बन्धी उपदेश नहीं दिया, परन्तु फिर भी इसकी संसारमें कितनी प्रतिष्ठा है। कट्टर मनुष्य इस बातको कभी नहीं देखता कि जिन बातोंमें इसके साथ वह सहमत नहीं है उसका अभीष्ट भी वही है, ईश्वरका सच्चा ध्यान करनेवाला और भलाई करनेवाला दोनों एकही जगह पहुँचते हैं, जिस प्रकार ईश्वरका सोचनेवाला कहता है "सब काम तेरी इच्छानुसार हों" इसका उद्देश्य वही है जो शुभ काम करने-

वालेका है; क्योंकि यह भी अपने लिये कुछ शेष नहीं रखता सच्चा त्याग सच्चा उपकार और सच्ची वलि इसको कहते हैं। ज्ञानी अपनी ज्ञान दृष्टिसे देखता है कि "मैं" और 'तू' का विचार नितान्त भ्रम है और बड़ी सुगमतासे ममताको छोड़ देता है यह भी त्याग है। इसीलिये कहागया है कि 'कर्म्म भक्ति और ज्ञान सब यहां आकर एक होजाते हैं पहिले समयके उपदेशक और आत्मिक ४ अध्यापक कहाकरते थे कि संसार ईश्वर नहीं है। इसका यही भाव है कि ईश्वर और पदार्थ है और संसार और पदार्थ है। यह वात भूल नहीं है, संसारसे अभिप्राय स्वार्थसे है। निःस्वार्थ जीवन ईश्वरका है। सम्भव है कोई मनुष्य सिंहासन पर वैठाहुआ और महलोंमें रहता हुआ निःस्वार्थ जीवन व्यतीत करसक्ता है। ऐसी दशामें वह ईश्वर-कोटिमें है। दूसरा मनुष्य झोंपड़े और छप्परोंमें रहताहुआ संसारी वना रहै यदि इसमें स्वार्थ है तव वह अकिंचन भी बड़ा भारी संसारी है।

अब हम अपने फिर पुराने विचारकी ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि कोई शुभ कर्म कभी नहीं किया जासक्ता जिसमें बुराई न मिली हो और न कोई ऐसी बुराई है, जिसमें भलाई न हो। जव यह दशा है तव वताइए कोई क्या करै? संसारमें कुछ ऐसे पंथ हुए हैं जिन्होंने अपने प्राण देदिये, क्योंकि उनकी दृष्टिमें जीवित रहनेसे किसी न किसी प्राणीके संकटमें पडने या जानसे मारेजानेका भय रहता है, उनका इच्छानुसार मरजाना ही संसारसे छूटजाना है। जैनियोंने इस सिद्धान्त पर वडा जोर दिया है। प्रकटमें यह शिक्षा वडी मनोरंजक है परन्तु इसका निर्णय भगवद्गीतामें मिलता है, गीतामें लिखा है "कर्म्म किये जाओ परन्तु असंग वनेरहो" स्मरण रखो तुम संसारसे विल्कुल अलग हो, तुम संसारमें हो और जो कुछ तुम संसारमें कर-रहे हो वह सव अपने ही लिये है. जो काम तुम अपने लिये करोगे उसका फल तुमको ही भोगना पडेगा। यदि कर्म्म अच्छा है तो फल अच्छा होगा, कर्म बुरा होगा, तव फल बुरा होगा। किन्तु जो कर्म्म अपने लिये नहीं कियाजाता उसका फल हमको भोगना नहीं पडता। हमारी धर्म्म पुस्तकोंमें एक वाक्य आता है जो इस विषयको भलीप्रकार समझाता है वह यह है "यदि वह मनुष्य समस्त

संसारको वध करडाले या स्वयं आत्मघात करले, तब वह न मारने वाला है न मरने वाला ही है, किन्तु वह यह जानता है कि मैं अपने लिये काम नहीं कररहा हूं" इसीलिये कर्म्म योगकी यही शिक्षा है "संसारको मत छोडो संसारमें रहो, उससे सम्बन्ध रखो, किन्तु यदि अपने सुखके लिये काम करना है तब बिल्कुल कर्म्म न करो क्योंकि सुख आदि हमारे जीवनका उद्देश्य नहीं है । पहिले अपने आपको मारदो, तब समस्त संसारको अपना समझो । ईसाइयोंमें एक कहावत है "बूढेको मरना चाहिये" यह बूढा तुम्हारे स्वार्थ भरे विचार हैं जिसके कारण मनुष्य यह सोचता है कि संसार भोग विलासके लिये बना है, मूर्ख माता पिता अपने बालकोंको इसप्रकार प्रार्थना करना सिखाते हैं "हे ईश्वर ! तूने मेरेलिये चन्द्रमा और सूर्य्य बनाए" मानो ईश्वरके लिये इन बच्चोंके खिलौने बनानेके अतिरिक्त और कुछ काम ही न था । ऐसी वृथा बातें अपनी सन्तानको कभी न सिखाओ, और भी मनुष्य हैं जो अन्यान्य प्रकार द्वारा निंद्य काम करते हैं, वे शिक्षा देते हैं कि ये सब पशु हमारे लिये बनाए गए हैं इनको मारो और खूब खाओ, संसार केवल मनुष्यके भोगने के लिये है ये सब निंद्य और वृथा काम हैं । शेर कह सक्ता है "मनुष्य मेरे लिये बनाए गए हैं" और वह मूर्ख मनुष्यों की भांति आशीर्वाद मांग सकता है "ये मनुष्य कैसे मूर्ख हैं जो मेरे पास नहीं आते जिससे कि मैं अपना उदरपूर्ण करसकूं ईश्वर ! देख ! यह तेरे नियमको तोडते हैं" यदि संसार हमारे लिये बनाहै तब हम संसारके लिये बने हैं, यह कहना कि संसार हमारे भोग विलासके लिये बनाया गयाहै अत्यन्त घृणित बात है । यह संसार हमारे लिये नहीं बना, हरसाल हजारों बल्कि करोडों आदमी, मरेचले जारहे हैं संसार कुछभी इसको ध्यानमें नहीं लाता । करोडों दूसरे आदमी इनकी जगह आजाते हैं यदि संसार हमारे लिये है तो हम संसारके लिये हैं ।

इस लिये कर्म्म करनेके लिये सबसे पहिली बात यह है कि किसी प्रकारका सम्बंध न हो दूसरी बात यह है कि लडाईमें सम्मिलित न हो केवल असंग होकर कर्म्म करते जाओ, मेरे वृद्ध गुरु कहाकरते थे "अपने वाट-

कोंको तुम उसी दृष्टिसे देखा करो जिस दृष्टिसे बालकोंको दाई देखती है" दाई तुम्हारे बच्चेको लेकर खूब खिलावेगी, प्यार करैगी, किन्तु जहां तुमने इसको छुडादिया वह उसी समय अपना डेरा डण्डा उठाकर चल देगी, और इसको तुम्हारे घरसे कुछ सम्बंध न रहैगा । सब कुछ भूल जायगी, और बालकोंके वियोगसे उसको कुछ दुःख न होगा । यदि तुम विचारो तब तुम्हारे बालकोंके साथ तुम्हारी भी यही दशा है, तुम दाईके समान हो- यदि तुमको ईश्वर पर सच्चा विश्वास है तब यह सब पदार्थ जो तुमको प्राप्त हैं उसीके हैं किसी समयकी कमजोरी भलाई और मजबूती बनजाती है यह विचार कि कोई हमारे अधीन है और हम उसको लाभ पहुंचा सकते हैं निर्बलता यह है अभिमान हमारे सब संबधोंकी माता है और इस प्रकारके सबंधोंसे दुःख उत्पन्न होता है, अपने मनको समझना चाहिये कि संसारमें कोई हमारा अधीन नहीं है भिखारी तकको हमारी सहायता की आवश्यता नहीं है प्रकृति स्वयं सबकी सहायता करती है और हममें से चाहैं करोडों अभी मरजांय,वह दयालु माता बराबर सहायता करती रहैगी हमारे या तुम्हारे कारण संसारके काम बन्द होने वाले नहीं हैं पहिले कहदिया गया है कि तुमको दूसरोंकी सहायता करनेका अधिकार प्राप्त है । यह कैसा कल्याणकारी अधिकार है इसके कारण हमको आत्मिक शिक्षा मिलती है यह बहुत बडी शिक्षा है जो हमको और तुमको संसारसे सीखनी चाहिये । और जिस समय अच्छी प्रकार इसको सीखलिया फिर हम कभी दुःखी न होंगे । हम चाहै किसी समाजमें चले जायँ, उसमें सम्मिलित हों हमको हानि नहीं पहुँचैगी । यदि तुम्हारे स्त्रीहों, पुत्रहों पतिहों नोकर चाकर हों राज पाटके काम धंधे हों, किन्तु यदि तुम इस नियमको सन्मुख रखकर काम करेजाओ और संसारके होकर भी उसमें लिप्त न रहो, तब तुमको कुछ भी हानि नहीं पहुंचैगी । इसी वर्ष बहुतसे तुम्हारे मित्र मरगए होंगे क्या संसारको इनके वापिस लानेकी आवश्यकता प्रतीत होती है ? क्या यह क्रम टूट जाताहै ? नहीं वह बराबर जारी रहता है । बस तुम अपने मनसे इस विचारको निकाल डालो कि संसार तुम्हारे अधीन है, यह झूंठी बात है कि तुम संसारके उपकार-

के लिये आए हो यह गर्व है और यही स्वार्थ है । जब तुम्हारे मनकी ऐसी दशा होजाय तब तुम स्वतंत्रताके विषयको भली प्रकार समझ जाओगे, और इसका हमपर प्रभाव न पडैगा जब तुम किसीको कुछ दो तब उससे प्रतीकार की पर्वाह न करो तब तुमको दुःख न होगा तुमने उसको जो कुछ दियाहै वह उसका अधिकारी था, इसके कर्म्मने तुमको देनेके लिये विवश किया । तुम्हारे पास तो एक प्रकारका बोझा था तुम हलके होगए । तुमको किस बातका अब अभिमान करना चाहिये ? तुम इसके बोझी बने थे वह तुमसे रुपया ले गया । जरा विचारो तो सही कि इसमें क्या अभिमानकी बात रही ? तुम्हारे देनेसे इसमें क्या महत्व होगया जब तुम असंग होगए, तब तुम्हारे लिये न वह अच्छा है न बुरा है । केवल स्वार्थके ही कारण तुमको भलाई बुराईके फल निकालने पडते हैं, इसका समझना जरा कठिन है किन्तु समय आयेगा जब तुम इसको समझोगे । तब संसार तुम्हारे ऊपर किसी प्रकारकी विपत्ति न लासकैगा । मनुष्यकी आत्मा स्वतंत्र है, जब वह अज्ञानके वशमें होताहै तबही स्वतंत्रतासे हाथ धो बैठता है । त्यागही एक ऐसी चीज है जिसकी सहायतासे तुम उसपर अधिकार पा सकोगे । यह कहना सुगम है कि कोई तुमपर अधिकार नहीं पा सक्ता, किन्तु जब तक मनुष्य स्वयं उसको अधीन नहीं करैगा तबतक संसार उसको दुःखी न कर सकैगा, तुम ऐसे बनजाओ कि तुम्हारे मनपर सांसारिक प्रसन्नता या अप्रसन्नता प्रभाव न डालसके उस समय तुम स्वतंत्र होगे ।

व्यास एक बहुत बडा ऋषि हुआ है वह बडा योग्य था और वेदान्त शास्त्रोंका निर्म्माताहै । इसके पिताने चेष्टा की कि वह पूर्णयोगी बने उसके दादाने भी चेष्टा की परन्तु निष्फल यत्न रहा उसे भी सफलता प्राप्त नहीं हुई । परन्तु उसका पुत्र शुकदेव बडा योग्य उत्पन्न हुआ, व्यासने अपने पुत्रको ज्ञानोपदेश दिया और उसको सिखलाकर राजा जनकके पास भेजा । जनक विदेह कहलाता था, विदेहके अर्थहैं जो शरीर (देह) में न रहै । यद्यपि वह महाराजा था परन्तु वह अपने शरीरको भूलगया था वह हर समय अपनेको

आत्मा समझता था। शुकदेव बाल्यावस्था ही में शिक्षा पानेके लिये राजा जनकके पास गया, राजा को मालूम हुआ कि व्यासपुत्र शुकदेव हमारे पास ज्ञान सीखनेके लिये आरहा है, इसलिये उसने पहिलेहीसे कुछ प्रबंध कररखा था, जब लडका राजद्वार पर पहुँचा, द्वारपालोंने तनिक भी ध्यान नहीं दिया, केवल इसको बैठनेके लिये स्थान दे दिया, वह तीन दिन तीन राततक वहीं बैठा रहा कोई भी इससे न बोला और न किसी ने यह पूंछा कि तुम कौन हो कहांसे आए हो। शुकदेव व्यास पुत्र था व्यासका नाम समस्त हिन्दोस्थानमें प्रसिद्ध था। व्यास भी स्वयं महात्मा था परंतु गंवार दर्वान इससे बोले तक नहीं। तीन दिनके बाद मंत्री इसके पास आए और उसे बडी प्रतिष्टासे महलके सुन्दर एवं शोभायुक्त कमरोंमें लेगए। वहां उसको सुगंधित जलसे स्नान कराया, सुन्दर २ वस्त्र पहिनाए और आठ दिन तक अनेक प्रकारकी भोगसामग्री प्रस्तुत की परन्तु उनके कारण शुकदेवके मनपर कुछ भी प्रभाव न पडा न वह अपमानसे अप्रसन्न न मानसे प्रसन्न था। वह जैसा पहिले त्यागी था वैसा हीं अब था। इसके बाद उसको राजा जनकके पास ले गए राजा जनक ने उसको दूधका एक भराहुआ कटोरा देकर कहा कि तुम सभामें सात बार चक्कर लगाओ परन्तु दूधकी एक बूंदभी पृथ्वी पर न गिरै। बालक शुकदेवने कटोरा हाथपर रखलिया और यद्यपि वहां गाना बजाना होरहा था जहां तहाँ सुन्दर स्त्रियां खडींथीं परन्तु ये सब होतेहुए भी शुकदेव सातवार सभामें घूम फिर आया। परन्तु दूध एक बून्दभी न गिरा क्योंकि इसने अपने मनको उसमें गाड दिया था और जब वह राजाके पास पहुँचा उसने उससे कहा "जो कुछ तेरे पिताने तुझको शिक्षा दी है, सत्य है, मैं केवल उसीको दोहरा दूंगा, इसलिये तू घरजा, तू ज्ञानी है और सत्यता तेरे हृदय पर विराजगई है"।

शुकदेवने अपने मनको इतना वशमें कररखाथा कि, किसी प्रकारका बाहरी दृश्य उसको नहीं लुभा सका था, ऐसे आदमीको कोई सेवक नहीं बनासक्ता. और केवल ऐसे आदमीहीं संसारमें रहनेके योग्य हैं। हम देखते हैं

लोगोंकी सम्मतियाँ संसारके संबंधमें दो प्रकारकी हैं एक कहते हैं। "संसार बहुत बुरा और भयानक है" दूसरे कहते हैं अहा! "संसार कैसा सुन्दर है" जिन्होंने अपने मनको वशमें नहीं किया उनके लिये संसार या तो बुरा है या बुराई भलाईसे मिलाहुआ है परन्तु जिस समय हमको अपने मनपर अधिकार होगया वह (संसार) सौन्दर्यमय बनजाता है उस समय इसकी भलाई बुराईका हमपर कुछ प्रभाव नहीं होता। हर चीज अपनी २ जगह और समय पर भली लगतीहैं जो मनुष्य संसारको दुःख सागर कहते हैं जब वह मनस्वी बन जाते हैं उसीको सुख सागर मानने लगते हैं। यदि हम सच्चे कर्म्मयोगी हैं और अपनेको इस मुख्य दशामें रखना चाहते हैं तब जहां तुमने अपने कामका आरम्भ करदिया, कुछ दिनों बाद वह पूर्ण होजाता है और हम परोपकारी बनजाते हैं और जहां स्वार्थ स्वाभिमान गया बुरा संसार भला प्रतीत होने लगता है। उसके जल वायुमें परिवर्त्तन होजाताहै, और हर मनुष्यमें भलाईका तेज चमकने लगता है यह कर्म्म योगका उद्देश्य है। उत्तम और शुद्ध जीवन इसीका नाम है। योग कई प्रकारके हैं परन्तु इनमें कुछ भी भेद नहीं है सबका उद्देश्य एक ही है, सब एकही स्थान पर पहुंचाते हैं, हां? यदि हम उसको सचाईके साथ करना आरम्भ करदें। सारा भेद अभ्यासमें भरा है, पहिले सुनो फिर विचारो फिर करो, हर प्रकारके योगकी यही शिक्षा है, हर कामकी समझ तुम्हारे भीतर है, कोई किसीको क्या सिखाएगा तुम अपने आपको स्वयं सिखाते हो। सबसे पहिले विचार फिर मनन तदन्तर कर्म्म होता है। निष्काम कर्म्मद्वारा मनुष्य को आत्मिक प्रकाश लाभ होता है फिर वह उसमें समस्त संसारको देखता है कर्म्म योग किसी मत या जातिके अधीन नहीं है, चाहे कोई मनुष्य ईसाई हो या यहूदी सबको एक सा लाभदायक है। लेकिन् प्रश्न केवल यह है कि क्या तुममें स्वार्थ भाव नहीं है? यदि नहीं है तब बिना किसी धर्म्म पुस्तकके पढेहुए भी तुम पूर्ण बनजाओगे, चाहै तुम मसजिद या मन्दिरमें जाओ या न जाओ। हमारे योगके लिये किसी बाहरी पदार्थकी आवश्यकता नहीं है। सब योगोंका परिणाम मोक्ष है, केवल मूर्खही कहा करते हैं कि कर्म्म और

ज्ञानमें अन्तर है, यह विद्वानोंका मत नहीं है। विद्वान् जानते हैं कि माना कि उनमें वाह्य दृष्टिसे भिन्नता प्रकट होती है परन्तु अन्ततः वे सब मनुष्य जन्मके मुख्य फलको प्राप्त होते हैं।

॥ इति षष्ठपरिच्छेद समाप्त ॥

अथ सप्तम परिच्छेद ।

मोक्ष ।

कर्म्मका फल भी कर्म्म हुआकरता है कर्म्म मन और वचनसे जो फल निकलता है वह भी कर्म्म और अपने क्रममें कर्म्मका उत्पन्न करनेवाला है, इसलिये कर्म्मको कार्य्य और कारण दोनों कहते हैं। जहां कोई कारण होगा वहां कुछ कर्म्म अवश्य होगा; इससे कभी बचाव नहीं होसकता, और इसलिये हमारे शास्त्रके अनुसार वह कर्म्मका नियम समस्त संसारमें एक सच्चा मत समझलिया गया है, जो कुछ हम देखते, सुनते या करते हैं जहां कहीं संसारमें कर्म्म होरहा है वह स्वयं तो कर्म्म है परन्तु अपनी बारीपर वह दूसरे कर्म्म और कर्म्मोंका कारण भी बनरहा है । इसलिये आवश्यकीय है कि हम सोच कि यहां "नियम (Law) शब्दसे क्या अभिप्राय है ? जहां एक कर्म्म होरहा है वहां हमको यह आशा करनी चाहिये कि उसके सिलसिलेमें अनेक कर्म्मोंका होना आवश्यकीय है। नैयायकोंने इसके लिये "व्याप्ति" शब्द नियत करलिया है उनकी सम्मति है कि हमारे समस्त विचार संगत यानी मेलमिलाप प्रेमके कारण उत्पन्न होते हैं, मनमें एक प्रकारके विचारके आतेही हम देखते हैं कि उससे सम्बंध रखनेवाले और प्रकारके विचार भी लहरोंकी समान उत्पन्न होजाते हैं, हमारे अध्यात्म शास्त्रके अनुसार जहां चित्तमें एक विचार उदय हुआ तब समझ लेना कि इसके साथही दूसरे विचारोंकी लहरें अवश्य उठेंगी यह एक भली बात है। संस्कृतमें इसीको व्याप्ति कहते हैं। जड और चैतन्य संसारमें एकही नियमसे काम करते हैं,

एकके बाद दूसरेका और फिर इस प्रकार क्रम बँधा रहना एक अटल नियम है।

दूसरा विषय ध्यानदेने योग्य यह है कि नियम सार्वभौम है या नहीं। हमारा यह भूमण्डल उस सृष्टिका एक अंश है जिसको संस्कृतके ज्ञाता देश-काल और निमित्तके संयोगसे बताते हैं। यह संसार केवल ब्रह्माण्डका एक अंश मात्र है और यह एक भाग देशकाल और निमित्तके कारण एक मुख्य दशामें दृष्टिगत होता है इस संसारके भीतर ही नियम काम कररहा है इसके बाहर नियमको कोई नहीं पूछता। जहां हम संसारका नाम लेते हैं वहाँ हमारा अभिप्राय सृष्टिके उस भागसे हुआ करता है जिसको हमारे मनने नियमित कर रक्खा है। यह इन्द्रियोंका जगत् है जिसमें देखते सुनते, स्पर्श करते, सोचते और समझते हैं, इससे आगे बढकर फिर नियमका काम बन्द होजाता है क्योंकि हमारे मनके बाहर फिर कार्य और कारणका क्रम नहीं रहता। जो चीज़ हमारे मन और इन्द्रियोंसे परे है वहां कार्य्य कारणका नियम काम नहीं करता, और जहां विचार (संकल्प) नहीं है वहां इसका कुछ भी पता नहीं है जहां सत्ता नाम और रूपमें रमजाती है वहां ही तक कार्य्य और कारणकी अवधि है और वहीं तक नियम चलता है, क्योंकि नियम स्वयं कार्य्य और कारणभूत है। अब हम विचार सकते है कि यहां स्वतंत्र विचार शक्ति नहीं है। ये शब्द स्वयं एक दूसरेके विरुद्ध हैं, क्योंकि जिस चीजको हम विचारशक्ति कहते हैं या जिसका हमको ज्ञान है वह हमारे संसारमें विद्यमान है और हमारे संसारमें सब पदार्थ देशकाल और निमित्तके संयोगसे हैं जिसको हम जानते हैं या जिसका जानना सम्भव है, वह सब इस नियमके अधीन है और जहां अधीनता है वहां स्वतंत्रताका शब्द व्यवहार करना भूल है। क्योंकि यहां और कारण काम करते रहते हैं और अपने अवसर पर उन कारणोंके फल भी कारण बनजाते हैं किन्तु वह जिसने विचार ही में परिवर्त्तन करलिया जो पहिले विचारशक्ति मन था परन्तु देशकाल और निमित्तके कारण वह मानुषिक इच्छा बनगई तब वह स्वतन्त्र है और जिस समय वह देश काल और निमित्तसे पृथक होजायगी,

तब भी स्वतंत्र हो जायगी, यानी वह पहलेभी स्वतंत्र थी और स्वतंत्र होगी, सिर्फ बीचमें बंधनमें पडजाती है।

प्रश्न यह है कि सृष्टि कहांसे आती है कहाँको जाती है और किसमें रहती है ? इसका उत्तर यह दियागया है कि वह मोक्षसे आती है बंधनमें रहती है और फिर मोक्षको चलीजाती है। इसलिये हम जहां कहीं मनुष्यका नाम लेते हैं तब हमारा अभिप्राय यह होताहै कि यह मनुष्य इस अनन्त सृष्टिका एक अंशस्वरूप उसका पुत्र है उसका शरीर और उसका मन इस सृष्टिका छोटा नक्शा है, यह ब्रह्माण्ड स्वयं अनन्त अपार और अगम्य सत्तामें विन्दुमात्र है और हमारी सब प्रसन्नता, अप्रसन्नता बंधन सुख दुःख इस छोटे संसारके भीतर है और हमारी उन्नति और अवनति भी उसीमें होरही है, बस यह आशा रखना कि यह संसार नित्य है बालकों जैसी बात है। क्योंकि यह केवल हमारे मनके कारण हैं और हमारी यह आशा रखना कि हम इसके बाद स्वर्गको जायंगे उसी संसारमें पुनरागमन है। तुम सोचो तो सही कि इस बातकी इच्छा करना कि अनन्त सृष्टि हमारी तुच्छ सृष्टिके समान हो, कैसी वृथाबात है। इसलिये जबकभी कोई मनुष्य इस प्रकार बात चीत करै कि हमको यहां ही बार २ रहना है और वह किसी ऐसे ही मतकी आड लियाकरै तब समझ लो कि वह आत्मिक विषयोंमें इतना गिरगया है कि वह उसके लिये विचार भी नहीं कर सकता। वह इसीको सब कुछ मान रहा है वह इस अपार आनन्दसे परिचित ही नहीं है वह तो क्षणभगुर हंसी खुशीको ही सबकुछ समझता है वह इस तुच्छको ही अनन्त समझता है और अपनी मूर्खतासे बाज नहीं आता। बौद्ध कहते हैं कि वह (मनुष्य) तृष्णासे बावला हुआ इसी संसारमें घूमता है। सम्भव है कि इस संसारसे बाहर करोडों प्रकारके आनन्द हों असंख्य उन्नतिके द्वार हों क्योंकि जिस संसारमें हम रहते हैं वह अनन्त ब्रह्माण्डके सामने क्या चीज है ?

मोक्ष–प्राप्तिके लिये हमको सांसारिक बंधनोंसे बाहर जाना होगा यहां उसकी इच्छा करना वृथा है क्योंकि वह यहां नहीं है। पूर्ण शान्ति जो समझमें नहीं आसकती इस संसारमें नहीं है न स्वर्गमें है न कहीं ऐसे स्थानमें

मिलसकतीहै जहां हमारा मन पहुँच सके। ऐसे किसी स्थानमें मोक्ष प्राप्त नहीं होसकती। क्योंकि ये सब स्थान हमारे संसारमें हैं और वे देश काल और निमित्तसे घिरेहुए होंगे, यह सम्भव है कि आकाशमण्डलमें असंख्य ऐसे स्थान हों जो बडे मनोरंजक हों और जहां भोग विलास की सामग्री खूब मिलती हो परन्तु ये स्थान भी इसी संसारमें हैं। इस लिये बंधनके नियमसे मुक्त नहीं हैं, इसलिये हमको इनसे परे जाना होगा और जहां इस संसारकी इति होगी वहांसे ही सच्चे धर्म्मकी आदि होती है। ये सुख और दुःख सब यहीं समाप्त होजाते हैं फिर सच्चा आनन्द मिलता है जबतक हम जीवनकी इच्छाको मनसे न निकाल दें और संसारसे विरक्त न होजांय तबतक हमको मुक्तिकी आशाकी झलक भी दिखाई नहीं देगी, बुद्धि कहती है कि इस मुक्तिका जो मनुष्य जीवनका मुख्य उद्देश्य है एक ही साधन है कि इस तुच्छ जीवनके विचारको छोडदिया जाय, स्वर्ग नरक मन इन्द्रिय, सबसे अलग हो जाय, क्योंकि ये सब बंधनका कारण हैं, यदि हम किसी प्रकार मन और इन्द्रियोंके सम्बन्धको तोडदें, तब हम उसी समय मुक्त होजायंगे। बंधनसे छुटकारा पानेके लिये आवश्यकीय है कि हम कार्य्य कारण और नियमकी अवधिसे बाहर आजांय।

परन्तु इस संसारका छोडना बहुत कठिन है बहुत कम मनुष्य इस योग्य हैं हमारे शास्त्रोंमें लिखा है कि इसकी प्राप्तिके दोही प्रकार हैं एकको नेति नेति (यह नहीं यह नहीं) कहते हैं दूसरेको इति इति (यह है यह है) कहते हैं। पहिलेमें निषेध है दूसरेमें ग्रहण है। दूसरा साधन बहुत कठिन है इस पर वही चल सक्ते हैं जो बडे धीर वीर और योग्य हैं, वह सत्पदार्थको जानकर मनमें ठानलेते हैं कि हमको इसकी आवश्यकता नहीं। शरीर इन्द्रियां और मन उनके आधीन होजाते हैं और वह सफल मनोरथ होजाते हैं। परन्तु ऐसे पुरुष विरले हैं। नहीं तो सबको इतिके मार्ग पर चलना होता है और वह सब बंधनोंमें होते हुए अन्तमें मुक्त होजाते हैं। यह भी एक प्रकारकी उपासना है केवल इतना अन्तर है कि यह काम धीरे २ होता है। मनुष्य अनुभव और ज्ञानप्राप्ति करता हुआ भोगविलास छोडता जाताहै और सत् असत्को

जानता हुआ मुक्त होता जाता है । पहिले साधनवाले केवल ज्ञान द्वारा अपना कर्म्म करते हैं अन्तिम साधनवालेको अनुभव और कर्म्मसे सहायता लेनी पडती है पहिला ज्ञान योग है जिसको कर्म्मके महल बनानेसे नितान्त निषेध रहता है । दूसरा कर्म्म योग है जिसमें तेजीके साथ कर्म्म करनेकी आवश्यकता है, हरमनुष्यको कर्म्म करना आवश्यकीय है केवल वे मनुष्य जो अपने आत्माके विचारमें मग्न हैं जिनकी इच्छाएँ आत्मामें ही हैं जिनका मन आत्मा ही में रहता है जिनके लिये आत्माही सब कुछ है, वे कर्म्म नहीं करते अन्य सबको कर्म्म करना पडता है, लहर वेगसे जारही है किसी गहरी जगहमें पडकर भंवर बनजाती है और बार २ चक्कर लगाकर फिर तेजीके साथ वह निकलती है । प्रति मानुषिक जीवन एक प्रकारकी लहर है, यह भँवरमें फंस जाती है और चक्कर खाया करती है । देश काल और निमित्तमें कुछ काल इसको फंसा रहना पडता है माता पिता भाई धन सन्तान और प्रसिद्धिकी तृष्णामें इसको तडपना पडता है, परन्तु अन्ततः वह उससे निकल भागती है और अपनी प्रकृत मुक्तिकी दशामें आजाती है चाहे हम इसको जानें या न जानें । हम विद्वान् हों या मूर्ख हम सबलोग संसारके स्वप्नसे जागनेके लिये कर्म्म करते रहते हैं । मनुष्यका अनुभव इसको भवसागरके पार जानेके लिये साहाय्य देताहै । परन्तु कर्म्मयोग क्या है ? यह कर्म्मके रहस्यके जानलेनेका ज्ञान है, हम देखते हैं कि सब संसार कर्म्म कररहा है; यह कर्म्म क्यों हो रहा है ? स्वतंत्रता या मुक्तिके लिये । छोटेसे परमाणुसे लेकर बडेसे बडे पदार्थ तक सब जानते हुए या न जानते हुए कर्म कररहे हैं; सबका उद्देश्य यही है कि मन स्वतंत्र हो शरीर स्वतंत्र हो और आत्मा स्वतंत्र हो, सब मुक्तिके अभिलाषी हैं सब बंधनसे दूर भागना चाहते हैं । सृष्टिमें दोप्रकारकी शक्तियां काम कररही हैं एक खींचती है दूसरी दूर भागती हैं ये कर्म्मके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कर्म्मयोग बताता है कि कर्म्म किसप्रकार किया जाय, इसकी बजाय कि हम संसारकी चक्कीमें पिसते रहें वह हमको सच्चा मार्ग दिखाकर कर्म्मके रहस्यको खोलता है सम्भव है कि कर्म्म करनेमें बहुतसी शक्ति वृथा ही खर्च हो, यदि हम कर्म्म करनेके भेदको नहीं जानते तब वह शक्ति वृथा खर्च होगी, कर्म्मयोग कर्म्मका

सायंस Science है इससे तुमको शिक्षा मिलेगी कि किस प्रकार कर्म्म क
नेसे शीघ्र और अच्छे परिणाम निकाले जासक्ते हैं कर्म्म करना आवश्यर्क
है परन्तु हमको अपना उत्तम उद्देश्य सन्मुख रख कर कर्म्म करना चाहिये
कर्म्मयोग हमको बतादेगा कि संसार केवल पांच मिनिट्का है हमको इ
छोडना है इसमें मुक्ति नहीं है प्रत्युत इससे बाहर है सांसारिक बंधनसे शी
मुक्त होनेके लिए हमको इससे धीरे २ परन्तु विश्वासके साथ गुजरना है
संसारमें ऐसे विरले ही मनुष्य हैं जो अलग खडे होकर इसको छोडदेते
जिस प्रकार सर्प अपनी केंचलीको शरीरसे निकालकर उसको बाहर फेंक
देता है। उसी प्रकार संसारको छोड अलग होकर इसके दृश्यको देखते है
ऐसे आदमी संसारमें हैं परन्तु बहुत ही कम और दुष्प्राप्य हैं। अब सबको
कर्म्म करना पडेगा, कर्म्मयोगसे ज्ञातहो जाता है कि किस प्रकार हम अपने
उद्देशकी सिद्धि करसकते हैं।

वह क्या कहता है। "तेजीके साथ कर्म्म किएजाओ परन्तु असंग रहो"
अपने आपको उसमें लिप्त न करो, अपने मनको स्वतंत्र रखो. तुम
देखते हो कि दुःखों और विपत्तियोंका होना संसारमें आवश्यकीय बातें हैं।
निर्धनता या सम्पत्ति, प्रसन्नता या अप्रसन्नता क्षणभंगुर हैं। उनसे हमारी
आत्माका कोई भी सम्बन्ध नहीं है हमारी आत्मा दुःख और सुखसे परे है
इन्द्रियभोग और विचारसे दूर है, परन्तु तथापि हमको कर्म्म करना ही है
संगके कारण दुःख होताहै परंतु कर्म्म करनेसे नहीं। जब किसी कामको हम
अपना मानलेते हैं और उससे संबंध करलेते हैं तो दुःखमें फँसजाते हैं किन्तु
यदि हम इससे अलग रहसकें तब कभी दुःखी न होंगे, यदि किसी आदमीकी
सुन्दर तस्वीर जलादी जाय, तब हमको दुःख न होगा, किन्तु जब हमारी
अपनी ही तस्वीर कोई जलादे तब दुःख मानेंगे। क्यों कि दोनों चित्र बढिया
थे? कदाचित् दोनों एकही प्रकारके चित्र रहे हों, परन्तु एकके जलानेसे दुःख
हुआ दूसरीके जलानेसे दुःख नहीं हुआ, क्योंकि एकमें हम असंग थे दूस-
रीमें अपना सम्बन्ध समझते थे, यह सारी विपत्ति "ममता" के कारण है,
लगावसे स्वार्थ होता है और स्वार्थ विपत्तियोंका मूल है स्वार्थके कारण हम

उसको अपना समझने लगते हैं "चित्तमें जितनी लहरें मेरे और तेरेपनेके विचारकी उठती हैं उन सबमें दासत्वकी वेडियां रहती हैं और वे जकडकर बांधलेती हैं और इस मेरे और तेरे पनेकी ही वजहसे बंधन और विपत्तियां उत्पन्न होती हैं इसलिये कर्म्मयोग हमको बतलाता है कि तुम संसारके सब चित्रोंको देखो उनके देखनेसे प्रसन्न हो, किन्तु उनसे सम्बंध मत जोड़ो यह कभी न कहो कि "यह मेरी है" जहां यह कहागया कि "यह मेरी है" वहां ही दुःख बनकर गलेका हार बन जांयगी, अपने मनमें भी न कहो कि "यह लडका मेरा है" लडकेको अपने पास रखो उसका पालन पोषण करो परंतु उसको अपना न कहो "मेरा शरीर" "मेरा स्थान" ये सब दुःखके चिह्न हैं । यह शरीर मेरा है न तुम्हारा है न और किसीका है ? शरीर आताहै और जाता है, जाना और आना प्रकृतिका नियम है; तुम स्वतंत्र हो, केवल साक्षी बनकर उसको देखते रहो, इस शरीरको चित्र या दीवारसे अधिक महत्व नदो । अन्ततः इस शरीरसे क्यों संबंध रखा जाय ? यदि एक मनुष्य चित्र खींचकर फिर चलाजाता है तब उसको क्या आवश्यकता है कि चित्रसे सम्बंध पैदा करे । तुम क्यों स्वार्थके कारण कहते हो कि "मेरी है" जहां यह विचार आया कि वहीं आपत्ति आई ।

कर्म्मयोग कहता है कि स्वार्थकी जड काटदो । जब तुम इसको उत्पन्न ही न होने दोगे तब तुम्हारा मन इसकी लहरोंमें न डूबेगा, जब यह दशा होजाय तब संसारमें प्रसन्नता पूर्वक घूमो । जहांतक सम्भव हो काम करो औरोंसे मिलो जहां जी चाहै जाओ, तुमको बुराई कभी स्पर्श न करैगी कमल जलमें रहता है परन्तु जल उसके पत्तोंको कभी तर नहीं करता । इसी प्रकार तुम संसारमें रहो इसका नाम "वैराग्य" है। मुझको स्मरण है मैंने तुमसे कहदिया है कि किसी प्रकारका योग विना वैराग्यके नहीं होसकता, सब योगोंकी वैराग्य ही जड है । जो मनुष्य अपने स्थानको छोडदेता है अच्छे भोजन वस्त्रसे किनारा करके जंगलमें जाकर वास करता है सम्भव है संन्यासी हो इसकी सम्पत्ति उसका शरीर है वही इसके लिये सब कुछ है और चूंकि उसको जीवन व्यतीत करना है उसको अपने शरीरके लिये कर्म्म करना होगा "वैराग्य" का

संबंध शरीरसे कुछ नहीं है "वैराग्य" मनसे होना चाहिये। बंधनकी बेडीतो "ममता" है, यदि शरीरके भीतर यह जंजीर नहीं है और वह इन्द्रियों एवं इन्द्रियोंके विषयोंसे भीतरसे असंग है तब इसको वैरागी कह सक्ते हैं, वह जहाँ चाहे रहै उसकेलिये कहीं बंधन नहीं है। सम्भव है एक मनुष्य राज्य करताहुआ नितान्त असंग हो दूसरा फटे वस्त्र पहिने हुए संसारी बना हो। प्रथम हमको विरक्त बनना चाहिये इसके बाद फिर कर्म्म करना चाहिए। कर्म्म-योगसे हमको निष्काम कामका भेद मालूम होता है संबंध और लगावकी जड काटदेना वास्तवमें महा कठिन है।

कर्म्मयोगमें वैराग्यके दो प्रकार बतायेगये हैं एक उनके लिये है जो ईश्वर-पर विश्वास नहीं रखते, किसी बाहरी सहायताकी आशा रखते हैं वे अपने ही बल पर विश्वास रखते हैं और अपने मन एवं दृढ विचारशक्तिके भरोसे पर कहते हैं कि "मैं विरक्त रहूंगा" और विवेकके साथ काम करते हैं। दूसरे वे जो ईश्वरपर विश्वास रखते हैं उनके लिये दूसरा साधन है जो पहिलेकी अपेक्षा अधिक कठिन नहीं है, वे, अपने कर्म्मके फलको ईश्वरके अर्पण करते हैं वे कर्म्मतो करते हैं पर इसके फलकी इच्छा नहीं रखते, वे जो कुछ करते, सुनते और देखते हैं वह सब ईश्वरके लिये है। जो कुछ शुभकाम हम करैं हमको किसी प्रसिद्धिकी इच्छा न रखनी चाहिये, सब काम ईश्वरका है; हमने ईश्वरको अपने कर्म्मोंका फल अर्पण करदिया है, बडेसे बडा काम जो हम अपने जीवनमें करजाए, उसके लिये यह विचार रक्खें कि इसका फल हमको आगे कभी नहीं मिलेगा। चाहे यह सोचैं कि हमने कुछ काम ही नहीं किया सारा काम उसीका है हमको उससे पृथक् रहना चाहिये और सोचना चाहिये कि हम उसके केवल सेवक हैं हम केवल उसकी आज्ञा पालन करते हैं जो कुछ विचार हममें उत्पन्न होते हैं वे सब उसीसे आते हैं "जो कुछ तू पूजता है, जो कुछ तू देखता है सब कुछ उसीके अर्पण करदे तब तुझको शान्ति प्राप्त होगी" आओ शान्ति लाभ करो, अपना तन मन धन ईश्वरके अर्पण करदो, हवनकरो और यज्ञ करनेकी बजाय इस महा तपकोकरो और रात दिन

अपनी आहुतिदेते रहो। हे ईश्वर ! तूही मेरा धन है तूही मेरा प्यारा है मैं अपनेको तेरे चरणोंपर न्योछावर करताहूं हे देव देव ! मेरा सब कुछ तूही है। तुम रात्रि दिन इसी मंत्रको जपो "मुझको कुछ नहीं चाहिये भला हो या बुरा जो भी कुछ हो, मेरा कुछ नहीं है मेरा तो जो कुछ है वह तू ही है" निशिदिन अपनी आत्माको उसपर न्योछावर करते रहो, यहां तक कि तुम्हारा स्वभाव ही वैसा बन जाय, तुम्हारे रक्तमें यह विचार मिलजांय, सब शरीरमें सच्चे वैराग्य और भक्तिकी लहरें फूट निकलें उस समय तुम युद्धक्षेत्रमें चले जाओ जहां गोले बरस रहे हों तलवारें खडक रही हों वहां भी तुम अपनेको स्वतंत्र पाओगे वहां भी तुम शान्त रहोगे कर्मयोग सिखाता है कि, साधारण धर्मका पालनकरना साधारण ही है, तथापि हमको धर्मका पालन करना चाहिये परन्तु कभी २ यह धर्म ही दुःखका कारण बनजाता है धर्म ही बीमार हो जाताहै धर्म ही हमको दुःखकी ओर खींचकर लेजाता है यह हमको जकड कर पकड लेता है और जीवन नीरस होजाता है। "इस प्रकारका धर्म दोपहरके सूर्यकी धूप है जो हमारे मनकोभी भस्म करदेता है" इन लोगोंको देखो जो ऐसे धर्मके दास बनरहे हैं धर्मके कारण नतो उनकी प्रार्थना करनेका अवकाश मिलता है न स्नान करनेका समय ही मिलता है हर समय धर्म और कर्त्तव्यका ध्यानही उनके पीछे लगा रहता है जब देखो तब धर्म ही का झगडा जब देखो तब कर्तव्य का ही रोना। वे बाहर जाते हैं और काम करते हैं घर आने पर भी वही विपत्ति शिरपर सवार रहती है यह गुलामोंका जीवन है वे मरते दमतक कसे कसाए रहते हैं लोग इसीको धर्म समझते हैं । सच्चा धर्म या सच्चा कर्त्तव्य वह है जिसमें मनुष्य असंग रहै, स्वतंत्र रहै स्वामीके समान काम करता रहे, और अपने कामोंको ईश्वरके अर्पण करै, हमारी सब इच्छाएँ उसकी हैं धन्य हैं वे मनुष्य जो इसप्रकार काम करते हैं। हम अपना समय व्यतीत कर रहे हैं कौन जानता है कि हम अच्छा कर रहे हैं या बुरा कररहे हैं ? यदि हम

१ त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ! त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव !

अच्छा कररहे हैं तो हमको इसका फल नहीं मिलता यदि हम अच्छी प्रकार नहीं करते तबभी हमको क्या पर्वाह है। शान्त चित्त बनो, स्वतंत्र होकर कर्म्म करो, इसप्रकार की स्वतंत्रता मिलनी दुस्तर है। धर्म्म या कर्म्म को दासोंकी जुबानमें कह देना कैसा सुगम है वे, रक्त मांसके दासत्वको धर्म्म या कर्त्तव्य कहते हैं, मनुष्य संसारमें रुपये पैसेके लिये लडने झगडने चलता है, रुपयेकी इसको तृष्णा रहती है। यदि तुम पूछो भाई! ऐसा क्यों करते हो। तब उत्तर मिलेगा कि "यह हमारा धर्म्म है!" यह रुपया पैसेका लोभ है इससे अधिक और कुछ नहीं है परन्तु ये मूर्ख इस पर दोचार फूल रखकर इसको ढकदेना चाहते हैं।

किन्तु अन्ततः धर्म्म है क्या चीज! वास्तवमें यह हमारे रक्तमांस और सम्बन्धका विकार है और जब इसके साथ संबंध होजाता है तब उसीको धर्म्म बताते हैं, यथा बहुतसे देशोंमें जहां विवाह नहीं होते वहां पति और पत्नीके बीचमें कोई धर्म्म नहीं है। जब विवाह होजाता है तब पति पत्नीके बीच संबंध होजाता है यह नियम फिर पीढियों तक जारी रहता है और जहां यह दृढताके साथ जारी रहा यही धर्म्म बनजाता है। इसी प्रकार और बातें भी हैं उनपर फूल चढायाजाता है और मंत्र पढेजाते हैं फिर सारा संसार आपसमें धर्म्मका नाम लेले कर लडने झगडने लगता है यह धर्म्म वहीं तक अच्छा है जहांतक इसके द्वारा पाशविक काम नहीं बनते। नीचे गिरेहुए मनुष्योंके लिये जो ऊंचे विचार नहीं रखते यह धर्म्म कुछ अच्छा है किन्तु जो कर्म्मयोगी बनना चाहते हैं वह इस धर्म्मकी क्या पर्वाह करते हैं! हमारे या तुम्हारे लिये कोई धर्म्म नहीं है, जो कुछ तुम संसारको देना चाहते हो हर प्रकारसे दो, किन्तु उसको धर्म्म क्यों कहते हो! ऐसा विचार तक मनमें न उठने पावे, विवश न हो विवश होनेकी आवश्यकता क्या है। जिस काममें विवशता होगी उसीमें संबंध होगा, क्यों ऐसा धर्म्म तुम्हारे गले-की फांसी बने "हर चीजको ईश्वरके अर्प्पण करो" इस भयानक अग्निगृहमें धर्म्मकी अग्नि हरएकको झुलसरही है इस अमृतके प्यालेको पीलो और निर्द्वन्द होजाओ "हम सब, उसीकी इच्छानुसार काम कररहे हैं हमको सुख दुःखसे क्या प्रयोजन ? यदि तुम पारितोषिक चाहते हो तब तुमको दण्ड भी मिलेगा।

दण्डसे बचनेकी एक उत्तम युक्ति यह है कि इनामके विचारको मनसे निकाल दो दुःखसे तभी बचोगे जब सुखके ध्यानको छोडदोगे क्योंकि सुख और दुःख दोनों साथ २ गुथे रहतेहैं एक ओर सुख है दूसरी ओर दुःख है। एक ओर मृत्यु है दूसरी ओर जीवन है। मौतसे बचनेका उपाय यह है कि जीवनकी आशा और उसका प्रेम छोड दिया जाए, जीवन और मरण यदि ध्यानसे देखे जांय, तव एकही चीज हैं सुख विना दुःखके और जीवन विना मृत्युके केवल वालकों और स्कूलमें पढनेवाले बच्चोंकी वातचीत है। परन्तु तत्वदर्शी सचाईको जानते हैं और इनके रगडोंमें नहीं पडते जो काम करो उसके लिये प्रसिद्धि या इनामकी अभिलाषा मत रखो, हममें यह दोष है कि जहां कोई काम करते हैं झट उसकी प्रसिद्धि भी चाहने लगते हैं जहां हमने दश वीस रुपये दानमें दिये, हम चाहते हैं शीघ्र उनका वृत्तान्त समाचार पत्रोंमें छपजाए, ऐसी इच्छाओंका फल दुःख होता है, संसारमें वास्तवमें वडे २ महात्मा हुए हैं उनका कोई नामतक नहीं जानता। बुद्ध और क्राइस्ट (Christ) दूसरे नम्बरके महात्मा हुए हैं प्रथम कक्षाके महात्माओंके नामतक कोई नहीं जानता, हर देशमें ऐसेही महानुभाव हुए हैं जो शांतिके साथ कर्म करते हुए यहांसे प्रस्थान करगए, चुपचाप जीवन व्यतीत किया और चुपचाप चल दिये समय आया और उनके विचारोंने बुद्ध ईसा आदि महात्माओंका रूप धारणकिया, इनको हम जानते हैं बडे आदमी नाम और दामकी पर्वाह नहीं करते। वे अपने विचार संसारको देजाते हैं न पंथ चलाते हैं न सम्प्रदाय वनाते हैं न उनका कोई मत होता है न अपने नामसे किसी शास्त्रकी रचना करते हैं वे सात्विक होते हैं जो विलकुल वेसुध रहते हैं और प्रेममें मग्न होतेहैं मैं एक ऐसे ही योगीको जानताहूं जो आर्यावर्त्तमें रहता है इसको अपनी भी सुधि नहीं है उसने अपने आपको भुलादिया है वह प्रेममें मग्न है उसकी दशा इस वातकी साक्षी देती है। यदि कोई पशु उसके एक हाथको काटना चाहे तव वह अपना दूसरा हाथ भी उसके सामने करदेगा, और यूंही कहता रहैगा कि "परमात्मन्। तेरी इच्छा पूर्ण हो" उसकी दृष्टिमें सव कुछ ईश्वरका है ईश्वरमें हो रहाहै और ईश्वरके वास्ते है। वह अपने आपको कभी नहीं समझता परन्तु फिर भी वह प्रेम और शुभ विचारोंका सागर है।

इनके बाद उनका नम्बर आताहै जिनमें राजसी वृत्ति है, इनमें तेजीसे काम करनेकी शक्ति है वे पूर्ण उद्देश्यको सन्मुख रखकर काम करते हैं और संसारको उपदेश सुनाते हैं अच्छे और शुद्ध मनुष्य चुपचाप सच्चे और अच्छे विचारोंको एकत्र करजाते हैं बुद्ध और ईसा जैसे महान् पुरुष सबको उनका उपदेश देते हैं गौतम बुद्धके जीवन चरित्रमें हमने प्रायः पढा है कि २४ बुद्ध उससे पहिले बीत चुके हैं और वह पच्चीसवां है । चौबीस बुद्धोंके वृत्तान्तको किसको मालूम है यद्यपि गौतमबुद्ध जो ऐतिहासिक बुद्ध हैं स्वयं कहता है कि उसने अपने उपदेशका क्रम उनके विचार लेकर जारी किया है उत्तम कोटिके मनुष्य चुपचाप और शान्त रहते हैं उनको कोई नहीं जानता । ये वे लोग हैं जो विचार शक्तिको जानते हैं वे जानते हैं यदि वह अपनी गुफाके द्वारको बन्द करके केवल पांच सच्चे विचार सोचकर जाएंगे तब भी उनके ये पांच विचार संसारमें प्रलय तक नष्ट न होंगे । वास्तवमें ये विचार पर्वतोंको छेदते हुए समुद्रको पार करतेहुए संसारमें बराबर चक्र लगाते रहेंगे और समय पाकर मनुष्यके मनमें प्रविष्ट हो उसको महात्मा और शुद्ध बुद्ध बनायंगे, और उनमें इन विचारोंके कारण सच्चे मनुष्य जीवनका भाव उत्पन्न हो जायगा, ये सात्विकी पुरुष ईश्वरके इतने निकट होते हैं कि ये लडने झगडने व्याख्यान देने और जैसा कि साधारण मनुष्य कहते हैं वे भलाई करनेके योग्य ही नहीं रहते, तेजीसे काम करनेवाले कितने ही सौम्य हों फिर भी उनमें कुछ न कुछ अज्ञानका अंश रहजाता है, जबतक हम अशुद्ध हैं तभीतक कर्म्म करते हैं कर्म्म में फिर भी कुछ अभिलाषा बनीही रहती है ईश्वर में ध्यान लगाकर जो एक पक्षीके परकी आवाज सुनता है कैसे कोई अपने कामको बडा कहसकता है ? ऐसा करना बहुतही बुरा होगा । क्योंकि वह हर बात-के तत्त्वको जानता है हम उसके निकट केवल इतना ही कह सके हैं कि "तेरी इच्छा पूर्ण हो" बडे आदमी कर्म्म नहीं किया करते, क्योंकि कर्ममें सम्बंध होता है जिसका आत्मा ईश्वरमें लीन है जिसकी इच्छाएं परमात्मामें मग्न होगई हैं उनके लिये कर्म्म नहीं है" ऊँची कोटिके महात्मा ऐसे हुआ करते हैं इनके अतिरिक्त और सबको कर्म्म करना पडता है । इसी प्रकार

कर्म्म करनेपर हमको भलीप्रकार समझलेना चाहिये कि हम संसारके तनिकभी लाभ नहीं पहुंचा सके, हम वास्तवमें कुछ कर नहीं सक्ते, हम संसारके अखाड़ेमें केवल अपनी सहायता करते रहे हैं, यह कर्म्म करनेका अच्छा साधनहै यदि हम इस प्रकार कर्म्म करैं -यदि हम समझें कि हमको वर्त्तमान समय केवल अधिकारकी समान मिला है तव हम अवश्य असंग रहैंगे । हमारी तुम्हारी भाँति करोडों मनुष्य संसारमें विचारते हैं कि हम वडे आदमी हैं परन्तु हम सव मरजाते हैं और पांचमिनटमें ही संसार हमको भूलजाता है, किन्तु ईश्वरका जीवन अनन्त है, "यदि इसकी इच्छा न हो तव कौन जीसक्ता है और कौन सांस लेसक्ताहै" वह आत्माओंका आत्मा परमात्मा है समस्त शक्तियां इसकी और इसमें हैं उसीकी आज्ञासे वायु वहताहै सूर्य चमकता है पृथ्वी जीवित है मृत्यु आताहै वह सवमें है वह सव कुछ है, हम केवल इसकी उपासना करसकते हैं । तुम कर्मोंके फलकी इच्छाको त्यागदो, अपनी भलाईके लिये भला करो तव तुम पूर्ण विरक्त वनोगे, मनकी वेडी टूट जायगी और तुमको पूर्ण मुक्ति मिलजायगी जो कर्म्मयोगका अभीष्ट है ।

इति सप्तम परिच्छेद समाप्त ।

अथ अष्टमपरिच्छेद ।

कर्म्मयोगका उद्देश्य ।

वेदान्त धर्म्ममें यह एक वहुत वडा विषय है कि हम अनेक मार्गों द्वारा एक ही स्थानपर पहुंचजाते हैं, वे चारभाग हैं पहिला कर्म्म दूसरा प्रेम तीसरा अध्यात्म शास्त्र चौथा ज्ञान । किन्तु तुमको स्मरण रखना चाहिए कि ये मार्ग ऐसे ही नहीं हैं जो नितान्त भिन्न ही भिन्न हों और एक दूसरेमें सम्मिलित न हों, ये सव आपसमें मिले जुले हैं ये भिन्नता वैसी ही है जैसी हमको संसारमें दृष्टिगत होती है तुमको ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं मिलेगा जो केवल कर्म्म ही करता हो, न ऐसाही आदमी दिखाई देगा जो केवल ईश्वरोपासना का ही दम भरता हो, और न ऐसे मनुष्य दृष्टिगोचर होंगे जो केवल ज्ञानी ही हों मनुष्योंकी मानसिक वृत्तियोंको देखकर यह भिन्नता स्थिर की है हमने यह

निवेदन करदिया है कि ये चारों मार्ग अन्तमें मिलकर एक होगए हैं। समस्त धर्म्मोंके साधन एवं पूजाके सब विधान एक ही स्थानपर पहुंचानेका प्रबंध करते हैं।

मैंने तुमको उस उद्देश्यके समझानेकी चेष्टा की है वह जो केवल मोक्ष या मुक्ति है। हर चीज जिसको हम देखते हैं स्वतंत्रताके लिये चेष्टा कररही है यहांतक कि जड और चैतन्य सबका उद्देश्य एक यही (मोक्ष) है। यह सृष्टि स्वयं स्वतंत्रताकी चेष्टा करतीहुई दीख रही है। हर परमाणु दूसरेसे भाग रहा है दूसरे इसको बंधनमें डालनेकी चेष्टामें लगेहुए हैं। पृथ्वी सूर्यसे भागना चाहती है चन्द्रमा पृथ्वीसे अलग होना चाहता है हर चीजमें मुक्तिका ध्यान विद्यमान है समस्त सृष्टि इसी मुक्तिकी धुनमें है, इसी कारण महात्मा ध्यान और उपासना करते हैं लुटेरे लुटते हैं जब काम करनेका उचित ढंग दिखाई नहीं देता, हम उसको बुरा कहते हैं, जब उचित प्रतीत होता है, वह अच्छा कहाजाता है। परन्तु बात एकही है सब स्वतंत्रता चाहते हैं, सन्तको अपनी बंधनकी दशाका दुःखहै, वह इससे छूटना चाहता है इसलिये ईश्वरकी उपासना करता है चोरको किसी चीजकी इच्छा है वह उस इच्छासे बचनेके लिये चोरी करता है। समस्त सृष्टिमें सबका उद्देश्य मुक्ति है, चाहे जड हो या चैतन्य जानते हों या न जानते हों सब उसी स्थान पर पहुंचनेके अभिलाषी हैं। जो स्वतंत्रता सन्त महात्मा चाहते हैं वह स्वतंत्रता चोर डाकुओंकी स्वतंत्रतासे भिन्न है सन्तोंकी मुक्ति महा आनन्दकी दशा है परन्तु चोरने अपने मनको ऐसी ओर झुकाया है जो उसकी आत्माके लिये नई २ जंजीरें बनाती जायगी।

इसी मुक्तिके पृथक् २ विचारोंके फल स्वरूप सब मत हैं। यह समस्त सभ्यता और निःस्वार्थ भावकी मूल है जिससे यह अभिप्राय है कि हम अपनेको रक्त मज्जा मांस न समझें। जब हम देखते हैं कि एक मनुष्य शुभ कर्म करता है दूसरोंको सहायता देरहा है तब इसके यह अर्थ होते हैं कि वह "मेरे और तेरे पने" के संकुचित चक्रमें कभी घिरा नहीं रहसक्ता। स्वार्थ और ममताके फेरमें पडकर, मनुष्य कभी मुक्त नहीं होसक्ता। सब प्रकारके ज्ञान विज्ञानका यही परिणाम है कि स्वार्थ और स्वाभिमानको बिल्कुल छोड दो। समझलो कि यदि मनुष्य इसप्रकार निःस्वार्थ होजाय, तब उसकी क्या

दशा होगी ? वह संकुचित संसारमें न रहेगा, इसके लिये यह न कहा जायगा कि वह सुखदेवहै या महादेव है । इसने अपनेको अनन्त बनालिया बस यही सब धर्मोंका निचोड है और सब प्रकारकी शिक्षाओंका फल है । जिन्होंने अपनेको संकुचित कर ै है जब वे उस विचारको सुनते हैं घबरा उठते हैं माना कि जब वह ौंफसीको उपदेश देते हैं तब वे इसी बातको और २ शब्दोंमें प्रकट करते हैं । समझलो कि कोई व्यक्ति विशेष अपनी व्यक्ति विशेपता छोडकर नितान्त पूर्ण होजाय, तब हम इसको दूसरे पूर्ण महात्माओंसे किस प्रकार पहिचान सकेंगे ? वह सृष्टिमें मिलकर एक होगया, और ऐसा ही हो जाना सबका उद्देश्य है, केवल व्यक्ति विशेपताके फंदेमें पडेहुए मनुष्य अपने भोलेपनसे इसको नहीं समझसके न सच्चे फलपर पहुंचते हैं । कर्म्म योग इसी रागको गाता हुआ मुक्तिके जीवनका उत्तम उद्देश्य बतलाता है हर प्रकारका स्वार्थ मात्र हमको अभीष्ट स्थान पर जानेसे रोकता है । और हर प्रकारका निष्काम कर्म्म हमको उस ओर ले चलनेका प्रबंध करता है, इसलिये सबसे अधिक उत्तम नीति यही है कि " जिसमें स्वार्थ है वह असभ्य है जिसमें निःस्वार्थता और परोपकार है वही सुसभ्य है " ।

किन्तु यदि हम बाहरी विषयोंपर वादविवाद करने लगेंगे तब इसका समझमें आना बहुत कठिन होगा क्योंकि इर्दगिर्दके वृत्तान्तके कारण उसमें भिन्नता होजाती है, एक काम मुख्य दशामें निष्काम कहाजाता है किन्तु दूसरी दशामें वही स्वार्थसे पूर्ण बनजाता है इसलिये हम साधारण तया एक सार्वभौम साधन बतलाते हैं वह यह कि अपने कामोंको देशकाल और दशापर छोड दो । एक देशमें एक काम अच्छा समझाजाता है दूसरे देशमें वही बुराहोजाता है । क्योंकि सबकी दशा एकसी नहीं होती, पर सब सृष्टिका उद्देश्य मुक्ति है और मुक्ति निष्काम कर्म्म करनेसे प्राप्त होती है । हरएक शब्द विचार और कर्म्म जो स्वार्थसे नितान्त शुद्ध हैं वे मुक्तिके लिये पथप्रदर्शक हैं । और इसीलिये इसीको सबसे उत्तम शिक्षा बताई है । हरदेश एवं हरजातिका नीतिशास्त्र इसको सच्चा बताता है कुछ मतोंमें बतायाजाता है कि सदाचारकी शिक्षा ईश्वरकी ओरसे है । यदि तुम उनसे प्रश्न करो कि हम क्यों ऐसा काम

करें ? तब उत्तर मिलेगा "कि ईश्वरकी आज्ञा है" किन्तु उसकी वास्तविक दशा कुछ ही हो सबमें एकही विचार काम कररहा है वह यह है कि स्वार्थ, स्वाभिमान और ममताको नष्ट करदो परन्तु फिरभी बहुतसे आदमी इस उत्तम विचारको सुनकर डरजाते हैं क्योंकि उनको अपनी प्रसिद्धिके खोजानेका भय रहता है किन्तु उनलोगोंसे हमारा यह प्रश्न है कि जब मनुष्य निष्काम होजाता है और अपनेलिये न कुछ बोलता है और न कुछ करता है तब उसकी क्या दशा होती है ? यावत् तुम अपनेही लिये कर्म्म करते रहोगे तभी तक तुम्हारे साथ "ममता" रहैगी, जहां तुमको दूसरोंका विचार उत्पन्न हुआ फिर वह "ममता" काफूर हो जाती है ।

इसलिये कर्म्मयोग कहताहै कि तुम निष्काम कर्म्म करतेहुए मुक्ति प्राप्त करो; कर्म्मयोगी चाहै और किसी बातको न मानै; उसका चाहै ईश्वरतक में विश्वास नहो चाहै वह जीव आदिकी शंकाओंका समाधान न करसके तथापि उसका उद्देश्य यह रहता है कि परोपकार करताहुआ स्वार्थको सबके लिये तिलांजलि देदे इसके जीवनके हरक्षण सचाईके समझमें व्यतीत होते हैं क्योंकि वह केवल कर्म्मकी सहायतासे सत्पदार्थका खोज कररहा है भक्तको यह समझ भक्तिसे और ज्ञानीको ज्ञानसे आती है ।

अब प्रश्न यह है कि यह कर्म्म क्या है ? संसारमें शुभ कर्म किसे कहते हैं ? क्या हम संसारका उपकार कर सक्ते हैं ? वास्तवमें इसका उत्तर "नहीं" है परन्तु किसी दशामें इसका उत्तर "हां" भी होगा । संसारको कोई मनुष्य सर्वदा लाभ नहीं पहुंचा सकता, यह हो ही नहीं सकता क्योंकि उस समय संसार फिर संसार ही न रहैगा । आप थोडी देरके लिये किसी बुभुक्षितकी भूंख दूर करसक्ते हैं परन्तु वह फिर भूखा होगा, हर प्रकारकी प्रसन्नता क्षणभंगुर है । कोई मनुष्य सदाके लिये दुःख और सुखको दूर नहीं कर सक्ता । क्या कोई मनुष्य संसारको सदाके लिये सुख देसकता है, समुद्रमें एक जगह लहरें उठती हैं दूसरी जगह खाली होजाती हैं संसारमें सब भलाइयोंकी संख्या हर समय मनुष्यकी इच्छा और तृष्णाके अनुसार एकसी रही है न कोई इसको बढा सक्ता है न घटा सकता है आज तुम संसारके इतिहास पर दृष्टि डालो तो क्या दुःख सुख जो पहिले थे आज नहीं हैं क्या

धनी निर्धन ऊंचे नीचे आरोग्य, रोगी अब दिखाई नहीं देते यूनानी रूमी और मिस्रियोंके समयमें भी वही दशा थी, अब भी वही हाल है, जहांतक इतिहास बताता है इसमें कमी नहीं आई, परन्तु फिर भी हम देखते हैं कि यह सब कुछ होतेहुए भी मनुष्यकी उन्नतिका द्वार खुलाहुआ है । इतिहासके हर भागमें हजारों स्त्री पुरुषोंने दूसरोंके जीवन शुद्ध बनानेमें चेष्टा की है देखो उनकी कहांतक सफलता हुई ? गेंद इधरसे उधर लुडक गई शारीरिक दुःख कम हुआ मानसिक बढ गया एक जगह कमी हुई दूसरी जगह वृद्धि होगई यह कहना कि किसी समयमें संसार दुःखशून्य होजायगा बालकों जैसी बात है । सब जातियोंमें यह विचार विद्यमान है परन्तु यह उनकी भूल है ।

हम न संसारमें दुःख बढ़ासक्ते हैं न सुख, सदा इनकी संख्या एकसी रहेगी केवल इतना होता है कि गेंद इधरसे लुडक कर उधर चलीगई यह न्यूनाधिकता प्रकृतिका स्वभाव है । कैसे कोई मानले कि बिना मृत्युका जीवन सम्भव है ! वृथा और झूंठी बात ! जहां जीवनका विचार है वह मृत्युके विचारका रहना भी आवश्यक है । कोई सुख दुःखसे खाली नहीं है । दीपक बल रहाहै यह उसका जीवन है परन्तु धीरे २ वह बुझाजाता है यदि तुम जीना चाहते हो तब साथही मरना भी पडैगा जीवन और मरण वास्तवमें एकही पदार्थ हैं इनको विचार दृष्टिसे देखाजाए यदि एक मनुष्य उतारकी ओर देखता है दुःखी होजाता है दूसरे की दृष्टि चढावकी तरफ है वह सुखी है जब लडका स्कूल पढने जाता है तब माता पिता इसकी रक्षा करते हैं, उसके लिये हरवस्तु सुखदाई है उसकी आवश्यकता बहुत थोडी है और वह प्रसन्न रहता है परन्तु वृद्धोंका अनुभव इसके विरुद्ध है सब धातु क्षीण होगई और अब वे, शान्त हैं पुरानी जातियोंमें मुर्दनी छाई है उनकी आशालता सूख गई, नई जातियां प्रसन्न हैं क्योंकि उनके चढाव और उतारके दिन हैं, हिन्दोस्थानमें एक कहावत प्रसिद्ध है कि "हजार वर्षका शहर और हजार वर्षका जंगल" शहरोंका जंगलोंमें और जंगलोंकी शहरोंमें परिवर्त्तित होना हर जगह दिखाई देगा, और उसीके अनुसार लोग सुखी और दुःखी दिखाई देते हैं ।

इसके बाद समताका विचार ध्यान देने योग्य है कुछ मतानुयायी कहते हैं "ईश्वर उनके बीचमें राज्य करने आए गा, तब बडाई छुटाईका अन्तर जाता

रहे गा, यह सिद्धान्त कट्टर आदमियोंका है ये अपने विचारके सच्चे हैं परन्तु सचाईसे कोसों दूर हैं इसी विचारने रूमी एवं यूनानी गुलामोंको ईसाई धर्म्ममें प्रवृत्त किया, ये गुलाम समझने लगे कि जब ऐसा समय आए गा इनको खूब खाने पीनेको मिलैगा और वे झुण्डके झुण्ड ईसाई झण्डेके नीचे आने लगे, जिन्होंने आरम्भमें इस सिद्धान्तको लोगोंमें फैलाया वे कट्टर मूर्ख थे, इस समयमें समता और मनुष्योंके अधिकार एक से हैं तब भी इस बातका उपदेश दिया जाता है यहभी कट्टरपन है न तो कभी संसारमें समता हुई और न कभी होगी। कैसे कोई जाति इस संसारमें समता प्राप्त करसक्ती है ? यह समता असम्भव है। और इसमें मृत्यु है संसार क्यों सृजागया ? इसलिये कि उसकी साम्यावस्थामें अन्तर आगया आरम्भमें प्रकृति साम्यावस्थामें थी। वर्त्तमान समयमें वह असम्भव है क्योंकि हर जगह खेंचातानी और मुकाबलेके लिये हाथापाई होरही है। समझलोकि संसारके सब परमाणु साम्यावस्थामें आजाएं, तब क्या वह फिर स्थित रहैगा ? पानीको हिला दीजिये उसमें खलबली मच जाएगी, परन्तु फिर वह शान्त होजाएगा, और इस शान्तिके लिये उसके परमाणु लडने झगडने लगें गे। यही सृष्टि है इसमें हर चीज़ उसी साम्यावस्थाके लिये चेष्टा कररही है परन्तु फिर खलबली पड जाती है "असाम्यावस्था" ही संसार है परन्तु साम्यताकी चेष्टा भी आवश्यकीय है। और यह संसारको नष्ट करदेती है। पूर्ण होना यहां दुस्तर है, जिस समय वह दशा आजाय गी प्रकृति अपनी साम्यावस्थामें चलीजाए गी और संसारकी इतिश्री होजाय गी जैसे २ वह दशा आती जायगी तैसे ही तैसे उसमें जीवित रहनेकी शक्ति कम होती जायगी। यहां कोई न रहैगा, इस विचारको छोड दो। मनुष्यकी दशा और उसके अधिकार भिन्न २ क्यों हैं ? यह उनके मस्तिष्ककी भिन्नताका कारण है। इस समयभी पागल आदमीको छोडकर कोई न कहै गा कि हम सब एकसा मन और मस्तिष्क लेकर आए हैं हम संसारमें अनेक और भिन्न २ पदार्थोंका समूह लेकर आते हैं हम चाहे बडे या छोटे बने आए हैं, इसमें हमारा वश नहीं है। अमेरिका (America) में पहिले हजारों इण्डियन रहते थे कुछ अंग्रेज वहां पहुंचे पृथ्वी धन सब कुछ [illegible] लिया, अब क्या दशा है ? इण्डियनों ने क्यों उन्नति नहीं की ! और [illegible]

क्यों अंग्रेजोंके वरावर नहीं हैं इसलिये कि उनके मन और मस्तिष्ककी दशा एकसी नहीं थी, अंग्रेजोंका मस्तिष्क खास तरहका था । इनमें और विचार थे और वे प्रकट हुए " सभ्यता " मृत्यु है । जबतक यह संसार है तबतक "साम्यता" नहीं है । "साम्यता" उस समय होगी जब इसकी इतिश्री होजायगी तथापि "साम्यता" का विचार काम करानेके लिये अच्छा है । जिस प्रकार "असाम्यता" सृष्टिके लिये जरूरी है उसी प्रकार यह भी "स्वतंत्रता" या मुक्तिके लिये अच्छा है । यदि मुक्तिके लिये चेष्टा न कीजाएं तब हम ईश्वरतक नहीं पहुंच सकें गे और फिर सृष्टि भी न होगी, संसारकी अनेक शक्तियोंकी भिन्नता ही एक ऐसी चीज़ है जो मनुष्यसे कर्म्म कराती रहती है क्योंकि कर्म्म करनेके लिये किसी न किसी अभिलाषाको सामने रखना आवश्यक है इसलिये कि इस बधनसे छुटकारा मिल सके ।

संसार एक प्रकारकी चर्खी है जिसके पहियोंके भीतर पहिये हैं यदि हम अपना हाथ उसमें देदें तब फँस जायंगे । और हमारी बुरी दशा होगी । हम सोचते हैं कि हमने एक काम किया और अव हमको आराम मिलेगा परन्तु देखते हैं कि अभी एक काम समाप्त भी नहीं हुआ कि दूसरा और तैयार हो गया हमको संसारकी चर्खी विवशतया खींच लेजाती है । इससे बचनेकी दो युक्ति हैं एकतो यह कि इस चर्खीका विचार ही मनसे निकाल दियाजाय, इससे अलग होकर खडे होजाओ इच्छाओंको छोडदो, और इसको चलने दो । परंतु यह काम बडा दुस्तर है मैं नहीं समझता कि बीस करोडमें से एक आदमी भी ऐसा निकले गा जो इस प्रकार करसक्ता हो कहना सरल परन्तु करना कठिन है । दूसरा यह कि संसार सागरमें गोता लगाओ कर्म्मके रहस्यको समझो यह कर्म्मयोग है संसार चक्रके पहियोंसे दूर न हटो प्रत्युत इसके भीतर चले जाओ और कर्म्मकरनेका ढंग सीखलो, उसके भीतर रहकर उचित कर्म करतेहुए बाहर आजाना सम्भवहै क्योंकि इस चर्खीके भीतर ही भीतर बाहर आनेका मार्ग भी विद्यमान है ।

अब हमने देखलिया कि कर्म्म क्या है यह कर्म्म ही सृष्टिका मूल है । और इसका क्रम सदा जारी रहता है, जो लोग ईश्वर पर विश्वास रखते हैं वे इसको औरोंसे अच्छा समझ सक्ते हैं कि ईश्वर हमारी सहायताका अभिलाषी

नहीं है। माना कि यह संसार सदा रहैगा परन्तु हमारा उद्देश्य मुक्ति है और निष्काम कर्म्म है। कर्म्म ही से मुक्ति मिलती है। संसारको सुखी करनेका विचार चाहैं कट्टर आदमियोंके लिये अच्छा हो, परन्तु हमको उससे वंचना चाहिये, क्योंकि उसमें बुराई है कर्म्म–योगी प्रश्न करता है कि तुमको अपनी मुक्तिसे अधिक और किस बातका ध्यान रखना चाहिये? सांसारिक पदार्थोंसे दूर हटजाओ, गीता कहती है "कर्म्म करनेका तुमको अधिकार है परन्तु फलके लिये इच्छा करना बुरा है" अपनी उन्नति करो, जब शुभ कर्म्म द्वारा शुभ विचार तुम्हारे मनमें उत्पन्न होने लगेंगे तब तुमको किसी बाहरी पदार्थकी आवश्यकता नहीं रहै गी, शुभ कर्म्म करो क्योंकि भलाई करना अच्छा है, जो स्वर्गप्राप्तिके लिये भलाई करता है वह भी अपने बंधनके लिये जंजीर बनाता है, जरा स्वार्थ हुआ नहीं कि जंजीर बनी नहीं।

इसलिये फलस्पृहाको छोड दो, हम संसार हैं हमें शरीर नहीं, वास्तवमें हम कर्म नहीं करते हम आत्मा हैं, हम शान्ति और आनन्द हैं हम क्यों बंधनमें पडें? रो मत, क्योंकि आत्माके लिये रोना नहीं है सहानुभूतिके विचारसे भी रोना बुराहै, यह केवल हमारा विचार है, हम सोचते हैं कि हमारी तरह स्वर्गी सिंहासनासीन ईश्वर भी रोया करता है। ऐसा ईश्वर किस काम का? रोना निर्बलता और गुलामीका चिह्न है। असंग बनो, शुभ काम विना फल स्पृहाके करो, वह तुम्हारे बंधनकी जंजीरोंको खण्ड २ करदेगा, हम शुद्ध होतेजायंगे यहांतक कि हममें बुराई लेशमात्र न रहैगी।

कुछ शब्द आपको और सुनाता हूँ संसारमें एक बहुत बडा कर्म्म योगी हुआ है उसका नाम बुद्ध था सब पैगम्बरोंने किसी न किसी अभिलाषासे कर्म्म किया है, परन्तु बुद्ध उनके विरुद्ध था, संसारमें दो प्रकारके पैगम्बर आए हैं एक तो अपने आपको ईश्वरका अवतार मानते थे दूसरे "रसूल" अर्थात् उसके भेजेहुए मानेगए हैं, दोनोंने सांसारिक अभिलाषाको लेकर काम किया, माना कि उनके वाक्योंमें आत्मिकभाव भराहुआ है। परन्तु बुद्ध अकेला महात्मा था जिसका यह वचन है कि "मुझको ईश्वर संबंधी विषयोंने जाननेकी तनिक भी इच्छा नहीं आत्माके सूक्ष्म भावको विचारने की क्या आवश्यकता है शुभकर्म करो और शुद्ध

बनो, तुमको इसीसे मुक्ति मिलेगी" वह अपने विचारोंकी साक्षात् मूर्त्ति था इसमें स्वार्थका विचार तक नहीं था, जरा देखो तो सही संसारमें उससे अधिक अच्छा कर्म्म और किसने किया है ? इतिहासमें एक उदाहरण भी ऐसा नहीं मिलता जो ऐसा आश्चर्य्य जनक और प्रभावशाली हो। मनुष्ययोनिमें केवल एक यही ऐसी व्यक्तिथी जिसने इस योनिका महत्व प्रकट किया ऐसा ज्ञान परोपकार और कहां दिखाई देता है, यह महात्मा बडे ऊंचे विचारवाला दार्शनिक (Philosopher) हुआ है जिसकी सूक्ष्म फिलोस्फीका समझना आसान बात नहीं है परन्तु उसको छोटेसे छोटे प्राणी तकसे सहानुभूति थी, उसने सबके साथ दयाभाव प्रकट किया, और कभी किसी प्रकारका प्रतीकार नहीं चाहा, यह आदर्श कर्म्मयोग है इसमें न स्वार्थ है और न किसी प्रकारकी और अभिलाषा। इतिहास गला फाड २ कर कह रहा है कि संसारमें बुद्ध जैसे महात्मा उत्पन्न नहीं हुए, वास्तवमें ऐसे विचारवाला जिसमें इतना आत्मिक बलही कहीं दिखाई नहीं दिया वह सबसे बडा सुधारक (Reformer) हुआ है। वह पहिला महान् पुरुष था जो कहा करताथा "पुरानी पुस्तकोंपर उनकी प्राचीनताके कारण विश्वास न करो, अपने जातीय सिद्धान्तों पर केवल जातिके कारण विश्वास न करो, बल्कि उसको बुद्धिकी ताराजू पर तौलकर देखो यदि उसमें सचाई और भलाई है तब ग्रहण करो, और उसपर विश्वास करो और अपना जीवन उसीके अनुसार बनाओ जैसे तुम्हारे विचार हों तुम वैसेही बनो। और दूसरोंकी सदा सहायता करो।" जिसकी कोई इच्छा नहीं है वह सबसे अच्छा काम करता है, न उसमें नामकी इच्छा है न दामकी और जब मनुष्य ऐसा बनजाताहै वही बुद्ध होजाताहै उसमें एक अद्वितीय शक्ति का संचार होताहै और वह इस प्रकार कर्म्म करताहै कि संसार पलटा खा जाता है देखो, गौतम बुद्ध आदर्श कर्म्म योगी हुआ है।

॥ इति अष्टम परिच्छेद समाप्त ॥

इति कर्मयोग समाप्त।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बंबई.

श्रीरामकृष्णपरमहंसजीके

२०–उपदेश.

अनेक बिरुदावली विराजमान १०८ श्रीसंयुक्त
अलवर राज्याधिपति महाराजा सवाई
जयसिंहजी बहादुरके
स्टेट सेक्रेटरी मुंशी जगमोहनलालजी महोदय द्वारा
संगृहीत और अपने स्थानपर नृपतिवरकी दावतके
समय उपस्थित सभ्योंमें वितरित अंग्रेजी पत्रका
उक्त मुन्शीजी महोदयकृत–

भाषानुवाद.

जिसको
पंडित गणेशदत्तजी शास्त्री वाजपेयी महोपदेशकने
खेमराज श्रीकृष्णदासके
बंबई
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालयमें मुद्रित कराकर,
**"श्रीभारतधर्ममहामण्डल" के प्रयागस्थ
महाऽधिवेशनपर सम्मिलित धर्माऽनुरागी महा-
शयोंके प्रमोदार्थ वितरित किया ।**

अलवर, जनवरी सन् १९०६ ई०

श्रीहरिः ।

श्रीरामकृष्णपरमहंसजीके २०-उपदेश.

अनेक विरुदावली विराजमान १०८ श्रीसंयुक्त अलवर राज्याधिपति महाराजा सवाई जयसिंहजी वहादुरके स्टेट सेक्रेटरी मुंशी जगमोहनलालजी महोदय द्वारा संगृहीत और अपने स्थानपर नृपतिवरकी दावतके समय उपस्थित सभ्योंमें वितरित अंग्रेजी पत्रका उक्त मुन्शीजी महोदयकृत-

भाषानुवाद.

जिसको

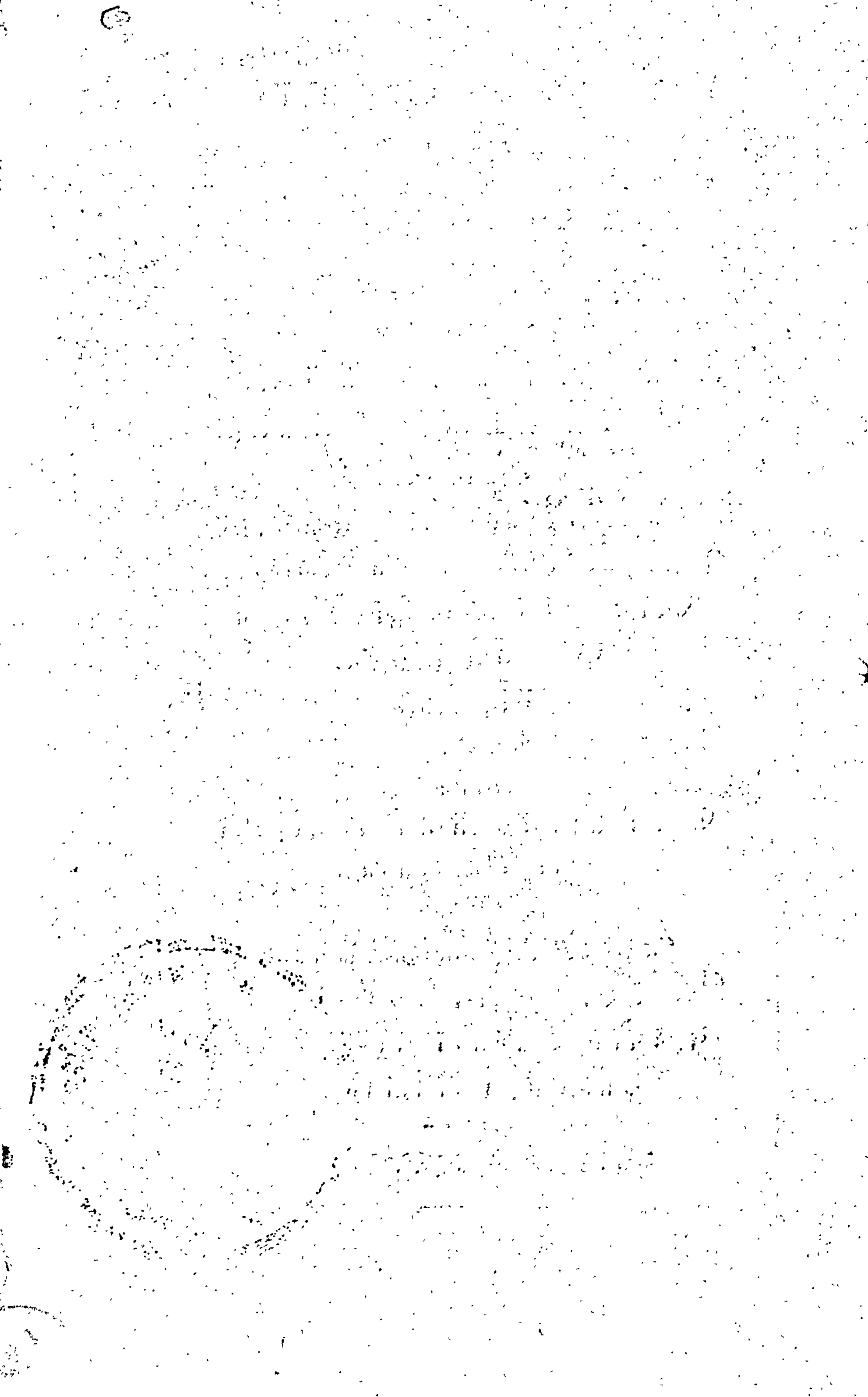
पंडित गणेशदत्तजी शास्त्री वाजपेयी महोपदेशकने खेमराज श्रीकृष्णदासके

बंबई

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालयमें मुद्रित कराकर,

"श्रीभारतधर्ममहामण्डल" के प्रयागस्थ महाऽधिवेशनपर सम्मिलित धर्माऽनुरागी महाशयोंके प्रमोदार्थ वितरित किया ।

अलवर, जनवरी सन् १९०६ ई०

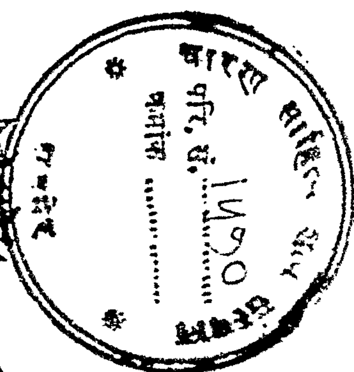


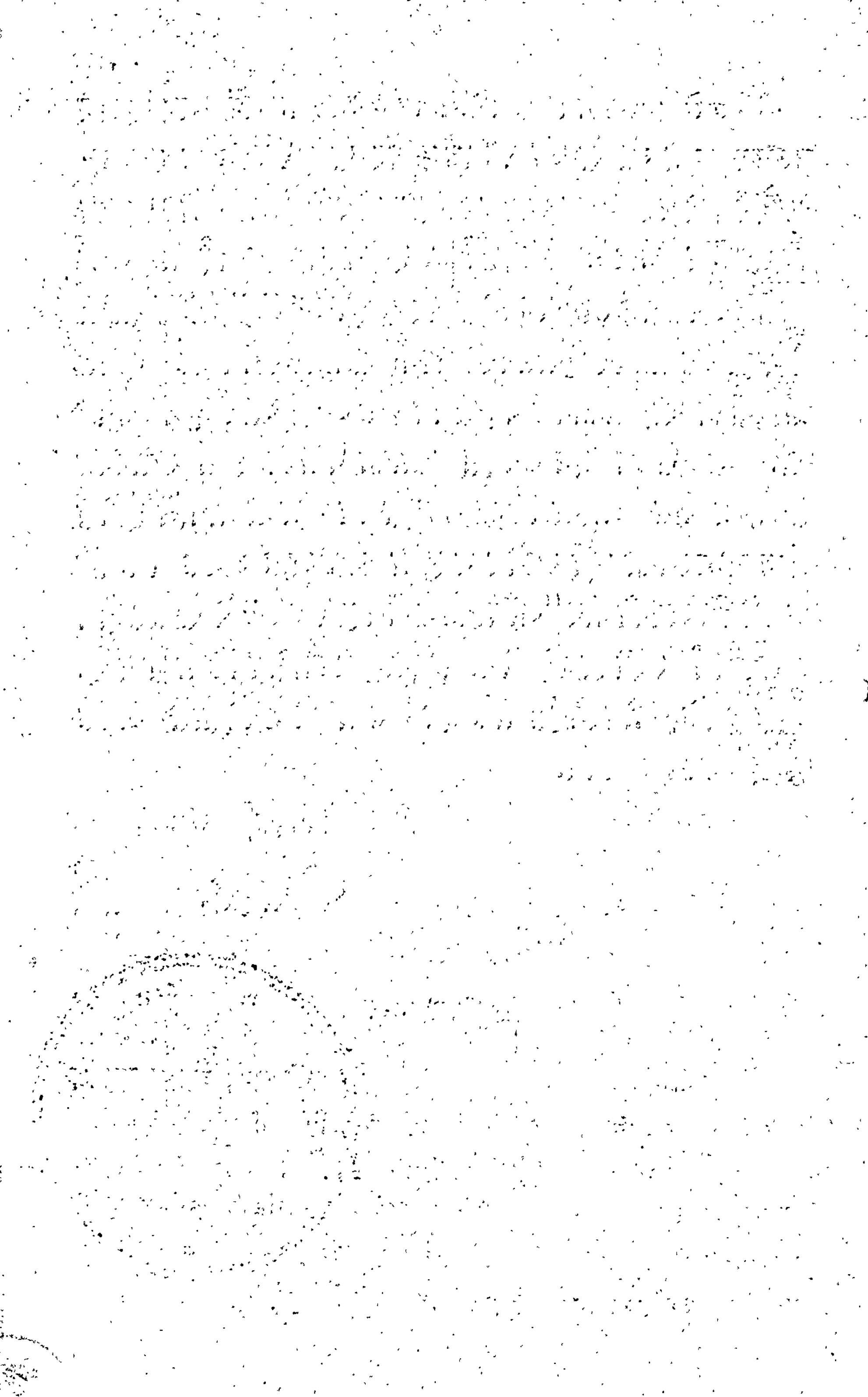
अनेक विरुदावली विराजमान १०८ श्रीयुक्त महाराजा बहादुर अलवरेश्वरकी ओरसे जो ११ दिसम्बर सन् १९०५ के आमद्-रवारमें मेरे परमसुहृद् श्रीयुत मुन्शी जगमोहनलालजी महोदय को ताजीम और पैरमें सुवर्णकी इज्ज़त बख़्शी गई थी. उसी खुशीके उपलक्षमें ता० १४ दिसम्बर सन् १९०५ को उक्त मुन्शीजी महोदयके स्थानपर नृपतिवरने स्वयं सपरिकर पधारकर दावत स्वीकृतकी थी, वास्तवमें वह समय एक अपूर्व आनन्दका समय था. उस समय इन उपदेश रत्नोंकी वर्षाका सुख उपस्थित सभ्योंको प्राप्त हुआ था किन्तु उपदेश पत्र अंग्रेजी भाषामें होनेसे सर्व्वसाधारणको पूर्ण संतोष न हुआ था. अतः अनेक मित्रोंके अनुरोधसे अबकी बार "श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल" के सभासदोंमें वितरणार्थ उसीका हिन्दीभाषाऽनुवाद प्रकाशित किया गया है. आशा है कि, श्रीपरमहंसजीके इन उत्तमोत्तम उपदेशोंसे अनेक सुहृद्वर्ग लाभ उठावेंगे.

निवेदक,

गणेशदत्त.







१–यदि आप एक मिट्टीके बर्तनमें पानी भरें और उसको उठाकर ताक़में रखदें तौ थोड़े दिनोंमें उसमेंका पानी सूख जावेगा. परन्तु जो आप उसी बर्तनको पानीमें डूबा हुआ रक्खें तो जबतक वह वहां रक्खारहैगा भराही रहैगा. ऐसीही हालत आपके परमेश्वरमें प्रेमकी है. अपने हृदयको कुछ समयतक परमेश्वरके प्रेमसे भरो और सम्पन्न करो और फिर बराबर उसको भूले हुए अपने आपको दूसरे कामोंमें लगाओ तो निश्चय थोड़ेही कालमें मालूम पड़ेगा कि आपका हृदय निर्धन तथा खाली होगयाहै और वह बहुमूल्य प्रेम जाता रहाहै. परन्तु जो आप अपने हृदयको सदा भगवद्भक्तिके समुद्रमें निमग्न रक्खें तौ वह निश्चय सदा भगवतप्रेमके जलसे परिपूर्ण रहैगा.

२–प्रश्न–सच्चा प्रेमी परमेश्वरको कैसा मानताहै ?

उत्तर–वह उसको अपने अत्यन्त निकट व अत्यन्त प्यारेकी समान मानताहै. जैसा कि वृन्दावनकी गोपियोंने श्रीकृष्णको जगन्नाथ करके नहीं माना किन्तु अपनाही प्रियतम गोपीनाथ करके माना.

३–जैसे कोई व्यभिचारिणी स्त्री घरके कामधन्धोंमें सर्व्वथा लगी हुई सारे समय अपने गुप्त प्रेमीका चिन्तन करती रहतीहै, इसीप्रकार हे संसारी मनुष्य ! तू अपने सांसारिक कामोंको कर परन्तु अपना चित्त सदा प्रभुमेंही लगाये रह.

कृपणका चित्त जिसप्रकार सुवर्णप्राप्तिमें लगा रहताहै उसी प्रकार तुमभी अपने चित्तको परमेश्वरमें आसक्त रक्खो.

४–साकार ईश्वरके दर्शन होतेहैं और यही नहीं किन्तु प्रत्यक्ष होकर हम उसको प्रिय मित्रके समान स्पर्श भी कर सकते हैं.

५–ईश्वरका ज्ञान पुरुषकी सदृश है, और ईश्वरकी भक्ति स्त्रीकी सदृश है. ज्ञानका प्रवेश ईश्वरके बाहिरी कमरोंतक है परन्तु उसके अन्तःपुरमें अन्य कोई नहीं जासकता सिवाय भक्तिके जिसकी कि सर्व्वशक्तिमानके गुप्त भेदोंमें गति है.

६–एक समय एक ज्ञानी और एक प्रेमी दोनों बनमें होकर जारहेथे. मार्गमें उन्होंने कुछदूरीपर एक सिंह देखा. ज्ञानी बोला "हमारे भागनेका कोई कारण नहीं है सर्व्वशक्तिमान परमेश्वर अवश्य रक्षा करेगा". इसपर प्रेमी बोला "नहीं भाई, चलो भाग चलें. जो काम हमारेही पुरुषार्थसे होसकताहै उसके लिये हम ईश्वरको परिश्रम क्योंदें."

७–किसीने पूछा कि काम क्रोधादि शत्रु कब जीते जासकतेहैं, तब परमहंसजीने उत्तर दिया कि जबतक यह संसार और सांसारिक विषयोंमें लगाये जातेहैं तबतक यह शत्रु हैं, परन्तु जब ईश्वरमें इनको लगाया जाताहै तब तो यह मनुष्यके सबसे बड़े मित्र होजातेहैं क्योंकि यह उसको परमेश्वरकी सन्निधिमें पहुँचा देतेहैं. सांसारिक वस्तुओंकी कामनाको ईश्वरकी कामनामें बदल देना चाहिये. जो क्रोध अपने साथियोंकी ओर होताहै उसको ईश्वरकी ओर करो कि वह तुमपर क्यों नहीं प्रगट होताहै, और इसीप्रकार सब विकारोंको. इनवृत्तियोंको मिटादेना नहीं चाहिये किन्तु शिक्षा करनी चाहिये.

८–प्रश्न–ईश्वर कहां है और कैसे मिलताहै ?

उत्तर–गहरे समुद्रमें मोती है परन्तु उसके लेनेको पूरी जोखों उठाना चाहिये इसीप्रकार जगत्‌में ईश्वर है.

समुद्रमें एक गोता मारनेसे यदि तुमको मोती न मिले तौ यह मत समझो कि समुद्रमें मोती नहीं हैं. बारंबार गोते लगाओ, अन्तमें तुमको अवश्य फल प्राप्त होगा. ऐसेही यदि परमेश्वरके दर्शन निमित्त तुम्हारा प्रथम उद्योग निष्फल होजाय तो जी मत-हारो. उसी उद्योगमें लगे रहो समय पाकर अवश्य तुमपर भगवतकटाक्ष होगा.

९–सच्चिदानन्द सागरमें हमको गहरी डुबकी मारनी चाहिये. गहरे समुद्रके भयानक जन्तु लोभ और क्रोधसे मत डरो. विवेक और वैराग्यकी हल्दीका अपने वदनपर लेप करलो मगर मच्छ पास नहीं आवेंगे क्योंकि इस हल्दीकी गंधके सामने वे ठहर नहीं सकते हैं.

१०–प्रश्न–प्रार्थनामें क्या अवश्य कोई प्रभाव है ?

उत्तर–हां, जब मन और वाणी दोनों किसी वस्तुके चाहनेमें एकरस होते हैं, तब प्रार्थनाका उत्तर मिलताहै. उस मनुष्यकी प्रार्थनायें किसी कामकी नहीं हैं जो मुखसे तौ कहताहै "हे प्रभु यह सब तेरा है" परन्तु साथही साथ चित्तमें विचारताहै कि यह सब मेरा है.

११–एक किसान दिन भर ईखका खेत सींचताथा. काम समाप्त करनेपर उसने देखा कि जलकी एक बूंद भी खेतमें नहीं गई; पानी सब चूहोंके बड़े २ अनेक बिलोंमें होकर जमीनके भीतर चला जाताथा. ऐसीही दशा उस ध्यानीकी है जो गुप्तरीतिसे प्रतिष्ठा, सुख और सम्पत्तियोंकी संसारी विषय वासनाको तथा उच्चपद अभिलाषाको हृदयमें धारण करता हुआ परमेश्वरका पूजन करताहै. निरन्तर भजन करनेपरभी वह उन्नति नहीं करता क्योंकि उसकी सारी धारणा इन वासनारूपी मूषक छिद्रोंमें होकर व्यर्थ निकल जाती है, और उमर भरकी धारणाके अन्तमें वह जैसाका वैसाही मनुष्य है कुछभी उन्नति नहीं करसका.

१२–करामातियोंसे मत मिलो. वे सत्यके मार्गसे हटे हुएहैं. उनके मन उन सिद्धियोंके जालोंमें फँस गये हैं जो ब्रह्मकी ओर जानेवाले यात्रियोंके मार्गमें लालचरूप होकर बाधा करती हैं इन शक्तियोंसे सावधान रहो और इनकी इच्छा मतकरो.

१३–एक ब्राह्मण किसी संन्यासीसे मिला और उनमें सांसारिक तथा धर्म्मसंबंधी विषयोंपर बहुतसी बातें हुईं अन्तमें संन्यासी ब्राह्मणसे बोला–"देखो बच्चा ! इस संसारमें किसीका भरोसा नहीं है. जिनको तुम अपना कहते हो कोई तुम्हारा नहीं है." ब्राह्मणने यह बात न मानी. वह कैसे यह बात मान सकताहै कि जिनके लिये वह दिन रात पचता है अर्थात् उसके कुटुम्बी लोग उसके मित्र नहीं हैं कि जिनपर वह सहायताका भरोसा करसके ? सो ब्राह्मणने कहा–"महाशय जब मेरा माथा दुखता है मेरी माता इतनी घबराती है कि यदि उससे मेरा क्लेश निवारण होजाय तौ प्रसन्नतासे अपना प्राण न्योछावर करदेवे यह बात कि ऐसी माता मेरी मित्र नहीं है जिसपर मैं भरोसा करसकूं मेरी समझमें असम्भव है." संन्यासीने उत्तर दिया "यदि ऐसाहै तो अवश्य वे तुम्हारेही हैं. परन्तु, यथार्थमें तुम्हारी बड़ी भूल है. एक क्षणभी कभी मत मानो कि तुम्हारे पिता, माता, पत्नी वा पुत्र तुम्हारे कारण अपना प्राण देंगे. यदि तुम चाहो तौ इसकी परीक्षा करसकते हो, घरजाओ और अत्यन्त दुःखका बहाना करो और चिल्लाओ, मैं आऊंगा और तुम्हें खेल दिखाऊंगा" ब्राह्मणने वैसाही किया. अनेक डाक्टर और वैद्य बुलाये गये, परन्तु कोई आरोग्य न कर सका. बीमारकी माता हाय २ करने लगी और दुःख करने लगी, स्त्री और बच्चे रोनेलगे. इसी समय संन्यासी भी आपहुँचा.

संन्यासी बोला "बीमारी बड़ी कड़ी है, और मैं बीमारके अच्छा होनेका कोई ढब नहींदेखता, जबतक कि कोई इस रोगीके लिये अपना प्राण देनेको उद्यत न हो." यह सुनकर सब चकित होगये. संन्यासीने रोगीकी बूढ़ी माताको कहा–"जीना वा मरना तुम्हारेलिये एकही बात होगी यदि बुढ़ापेमें तुम अपने पुत्रको खोदो जो अपने तथा तुम सबके लिये कमाता है. यदि

तुम इसके प्राणके बदले अपना प्राण देदो तौ मैं तुम्हारे पुत्रको बचा सकताहूं. माता होके यदि तुम भी इसके कारण प्राण नहीं दे सकती तौ इस संसारमें और कौन साहस करेगा ?" बुढ़िया आंसू बहाती हुई चिल्ला उठी "बाबाजी जो कुछ आपकी आज्ञा हो मैं अपने पुत्रके कारण करनेको तय्यारहूं. परन्तु बात यह है कि मेरा जीवन—और मेरा जीवन मेरे पुत्रके जीवनके सामने क्या चीज़है ? यह विचार मुझे डरपोक बनारहा है कि मेरे मरनेके पीछे मेरे छोटे बच्चोंकी क्या दशा होगी. मैं तो अभागिनी हूं जो यह बच्चे मुझे रोकतेहैं." जब पितासे पूछा वह बोला "ऐ सत्पुरुष, तुम जानते हो कि मनुष्य क्या कर सकता है ? हर कोई अपने ही कर्म्मका फल भोगता है यहही संसारका नियम है. संन्यासी और अपनी सासकी इस बात चीतको सुनकर रोगीकी स्त्री धाड़ २ रोने लगी और अपने मां बापको पुकार कर बोली, "ओ प्यारे मां बाप, तुम्हारे ही कारण मैं यह प्राणदान नहीं कर सकती." संन्यासी स्त्रीकी ओर फिरा और पूछा कि इसके माता पिता तो अलग होहीगए हैं अब क्या तूभी अपने पतिके लिये अपना प्राण नहीं न्योछावर कर सकती ? स्त्री बोली "मैं बड़ी करम हीन हूं ! यदि रंडापाही मेरे भाग्यमें है तौ होनेदो मैं अपनेको ऐसा नहीं बना सकती कि मां बापोंपर उनकी पुत्रीके मरजानेका दुःख डालूं. अपरं च यदि मैं मरजाती तौ मेरापति निश्चय दूसरा विवाह करलेता और मुझे थोड़ेही दिनोंमें भूलजाता." इस प्रकार हरएकने आफ़तसे पीछा छुड़ाया. तब संन्यासीने रोगीको पुकारा और कहा " अब देखलो कोई भी तुम्हारे कारण अपना प्राण देनेको तय्यार नहीं हैं. मैंने कहाथा कि संसारमें किसीका भरोसा नहीं करना इसका अभिप्राय अब तौ समझा ? ब्राह्मणने यह सब देखही लियाथा बस अपने कल्पित घरका परित्याग किया और संन्यासीके संग होलिया.

१४—चार अन्धे एक हाथी देखने गये. एकने हाथी की टांग टटोली और कहा "हाथी खंभेके समान है." दूसरेके हाथसे सूंड लगी वह बोला "हाथी मूसल की समान है." तीसरेने उसके पेटपर हाथ फेरा और कहा "हाथी मटके के समान है." चौथे ने कानोंको छुआ और कहने लगा "हाथी छाज के समान है." इस प्रकार वे परस्पर हाथीके आकारके विषयमें झगड़ा करने लगे. एक पथिक उन्हें ऐसें झगड़ते देखकर बोला "यह क्या बात है जिसपर तुम झगड़ा कर रहे हो ?" उन्होंने उससे सारा वृतान्त कह दिया और कहा कि तुम पंच होकर फैसला करदो. वह मनुष्य बोला "तुममें से किसीनेभी हाथी नहीं देखा है हाथी खंभेके समान नहीं है, उसकी टांगें खंभेके समान हैं. हाथी मूसलकी समान नहीं है, उसकी सूंड मूसलसी है. हाथी मटकेके समान नहीं है उसका पेट मटकासाहै. हाथी छाजके समान नहीं है, उसके कान छाजके तुल्य हैं. हाथी तो इन सबका समुदाय है" इसी प्रकार वे लोग झगड़तेहैं जिनको ईश्वरका केवल एकदेशीय ज्ञान हुआहै.

१५—मनुष्यका अध्यात्मिक लाभ उसके संकल्पों और भावोंके आधीन है, उसके अन्तःकरण से उत्पन्न होता है न कि उसके दृश्य कर्म्मोंसे। दो मित्र घूमते २ एक स्थानसे होकर निकले जहां भागवत बच रही थी. उनमेंसे एकने कहा—"भाई ! चलो जरादेर वहां चलें और सुन्दर कथा सुनें" दूसरेने उत्तर दिया "नहीं, मित्र ! भागवत सुननेसे क्या फायदा ? चलो यह समय सामनेके स्थानमें चलकर सुख विलासमें व्यतीत करें" पहिलेने यह बात न मानी. वह उस स्थानपर गया जहां भागवत बचरही थी और उसको सुनने लगा. दूसरा उस दूसरे मकानमें गया परन्तु जो आनन्द उसने वहां विचारा था न मिला और सारे काल वह

यहही सोचता रहा "हाय मैं यहां क्यों आया ? मेरा मित्र न जाने इस सारे समय हरिके पवित्र चरित्र और गुणानुवाद सुनकर कैसा प्रसन्न हुवा होगा." इसप्रकार वह हरिका ध्यान करताथा यद्यपि विषयस्थानमें था. पहिला आदमी भी जो भागवत सुनरहाथा उसे कथामें आनन्द न आया. वहां बैठके वह अपने आपेको यह कहता हुआ धिक्कार करनेलगा, "अहो ! मैं अपने मित्रके साथ विषयस्थानमें क्यों न चलागया ? न जाने वह वहां इस समय कैसा बड़ा सुख भोगता होगा ! " परिणाम यह हुआ कि वह जो भागवत बचनेकी जगह बैठा था विषयस्थानके सुखका ध्यान करताथा और उसको अपने बुरे विचारोंके कारण विषयस्थानमें जानेके पापका फल प्राप्त हुवा और उस मनुष्यको जो विषयस्थानमें गयाथा अपने शुद्ध हृदयके कारण भागवत सुननेका फल मिला.

१६–चावलके आटेकी गूंजी बनती हैं परन्तु उनके भीतर मालमसाला और ही भरा जाता है. गूंजीका अच्छापन या बुरापन उसके मसालेकी जातिपर है. इसीप्रकार सब मनुष्योंके शरीर एक ही तत्त्वोंके बने हुवे हैं परन्तु चित्तशुद्धिके अनुसार वे गुणोंमें पृथक् हैं.

१७–दूसरोंके मारनेके लिये तलवारों और ढालों की अपेक्षा है परन्तु अपनेही आपको मारने के लिये केवल एक सूई बहुत है; इसी प्रकार दूसरोंके उपदेश करनेको बहुतसे शास्त्र और विद्या पढ़नी चाहिये, परन्तु आत्मप्रकाशके लिये एकही सिद्धान्त पर दृढ़ विश्वास काफ़ी होगा.

१८–प्रश्न–मनुष्य मुक्ति कब पाता है ?

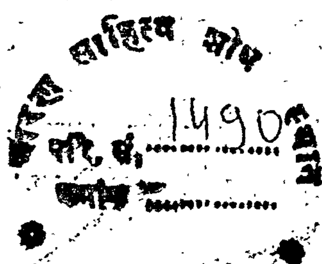
उत्तर–जब उसका अहंकार मरजाता है.

१९–दो आदमी एक बाग़में गये. सांसारिक चतुर मनुष्य तो दरवाजेमें घुसतेही यह गणना करने लगा कि आमके वृक्ष

कितने हैं, प्रत्येक वृक्षमें कितने आम लगते हैं और बागका मूल्य क्या होगा. उसका साथी मालिकके पास गया, उससे पहिचान करके चुपचाप एक आमके वृक्षके नीचे चला गया और मालिककी आज्ञासे फल तोड़ने और खाने लगा. अब इन दोनोंमें बुद्धिमान कौन है? आम खालो भूख मिटजावेगी पत्ते गिने और व्यर्थ गणना करनेमें क्या लाभ है, बुद्धिका अभिमानी पुरुष सृष्टिकी "क्यों और कैसे" ढूँढनेमें व्यर्थ लगा रहता है किन्तु विचारशील नम्र पुरुष उस करतारसे पहिचान करता है और इस जगत्में परमानन्दको भोगता है.

२०–एक चीलका जिसकी चोंचमें एक मछली थी कागोंके झुंड और दूसरी चीलोंने पीछा किया और उसपर चिल्लाते थे और चोंचें मारते थे, और मछलीके छीननेका यत्न करते थे. जिस ओरभी वह गई चीलों और कागोंके झुंड चिल्लाते और काऊं काऊं करते उसके पीछे जाते थे इस दुःखसे हारमानकर चीलने मछलीको छोड़ दिया. तत्काल दूसरी चीलने पकड़ लिया तो चीलों और कागोंके झुंडने अपनी कृपादृष्टि मछलीके नये स्वामीकी ओर फेरी. पहिली चील तो बेखटके होगई और चुपचाप होकर एक पेड़की टहनीपर बैठगई. अवधूतने पक्षी की यह शान्त व स्वस्थ व्यवस्था देखी तो उसको प्रणाम करके कहा–"ए चील तू मेरी गुरु है क्योंकि तूने मुझे उपदेश किया है कि जबतक सांसारिक इच्छाओंका भार जो मनुष्यने उठारक्खा है उसको न फेंकदे तबतक कभी भी अपने आपेमें निरुद्वेग व शान्त नहीं हो सकता."

जगमोहनलाल.



आत्मशुद्धिगुटिका

जिसको

छंदोबद्ध और टीका सहित

कायस्थ माथुर नोहारिया मुरलीधर

योधपुर निवासी

मुलाजिम महकमे सदर अदालत फौजदारी

मेघराज ने

प्रकाशित कर

मुमुक्षु पुरुषों के हितार्थ विना मूल्य वितीर्ण किया.

पण्डित बलदेवात्मज पण्डित

रामकर्ण के

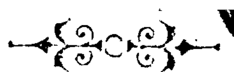
प्रताप प्रेस में

मुद्रित हुआ.

पहली वार

शान [illegible] कि कह की [illegible] नं. लि. च. क. [illegible]

भूमिका



सकल विद्वानों से जानने योग्य विषय में विनय है कि इस जगत् प्रपंच में जो स्थावर जंगम जीव अनेक भांति के हैं उन में से स्थावर से जंगम को और जंगम में मनुष्यों को ज्येष्ठता है और यह, मनुष्य मोक्ष की आकांक्षा निमित्त योग, स्वरोदय, उपासना इत्यादि में अनेक परिश्रम उठाता है हमारे मत मुमुक्षु को आत्मशुद्धि करना अवश्य है कि जिसके अभ्यास से सुगमता के साथ जीवन्मुक्त हो सक्ता है यातें प्रथम उन महात्माओं को मैं साष्टांग दण्डवत् करता हूं कि जिनके विस्तार पूर्वक ग्रंथों से यह सूक्ष्म रीति मैंने इस प्रयोजन से निकाली है कि इस लघु पुस्तक के अवलोकन में आलस्य न करके और इसके अवलोकन से आत्मशुद्धि के रसिक जन अवश्यमेव पूर्वोक्त महात्माओं के रचे हुए विस्तार पूर्वक ग्रंथों के अवलोकन में श्रद्धा युक्त होकर विशेष लाभ उठावेंगे.

मुलाजिम

महकमे सदर अदालत फौजदारी

मेघराज

॥ओं॥

॥श्रीगणेशायनमः॥

आत्मशुद्धि

दोहा

श्रीगुरु गनपति अम्बिका, चर्नकमल चित धार ॥
आत्मशुद्धि कछु वरनहूं, मेरी मति अनुसार ॥१॥

टीका

श्रीगुरु और गनपति व अम्बिका के कमल सदृश चरणों में ध्यान देकर मेरी बुद्धि के अनुसार आत्मशुद्धि का वर्णन करता हूं ॥

दोहा

पित्त वात कफ देह में, जैसे करत निवास ॥
तिमसतरजतमतीनए, आत्मा बीच प्रकाश ॥२॥

टीका

इस मानव स्थूल शरीर में जैसे वात, पित्त, कफ ये तीन पदार्थ निवास करते हैं तैसे ही आत्मा में सत, रज, तम इन तीन गुणों का प्रकाश है

दोहा

तीन गुनन की स्वच्छता, आत्म अरोगी होय ॥
न्यूनाधिक मालिन्य तें, आत्मा रोगी जोय ।३।

(टीका)

जैसे वात, पित्त, कफ की स्वच्छता अर्थात् साम्याव स्था से स्थूल शरीर आरोग्य और इन के न्यूनाधिक और मालिनता से सरोग हो जाता है वैसे ही यह आत्मा सत, रज, तम की साम्यावस्था अर्थात् स्वच्छतासे आरोग्य और इन की मलिनता, अधिकता व न्यूनता से सरोग हो जाता है ॥

सो स्थूल शारीरिकरोगों की निवृत्ति के निमित्त तो वैद्य और अनेक ग्रन्थ वैद्यक के होते हैं. और आत्मा के निर्विकार करने को सद्गुरु रूपी वैद्य और जिन ग्रन्थों में आत्मा शोधन व सदुपदेश हो उन्हीं ग्रन्थों को इस आत्मा के रोगों की निवृत्ति में प्रधानता है ॥

और शारीरिक रोगों की परीक्षा तो नाड़ी द्वारा वैद्य करते हैं और आत्मा के रोगों की परीक्षा प्रकृति के लक्षणों से है यातें प्रथम उल्लास में तो गुणों की स्वच्छता के लक्षण और दूसरे उल्लास में गुणों के रोगों और उन के उपायों का वर्णन किया जाता है ॥

प्रथम उल्लास

गुणों की स्वच्छता के विषय में

(दोहा)

सत रज तम इन तीन की, जब कहिं शुद्धी होय ॥
सँवित सँतोष रु शौर्य ए, तीनधर्म तहाँ जोय॥४॥

टीका

सत्व, रज, तम इन तीन गुणों की स्वच्छता अर्थात् साम्यावस्था से तीन धर्म प्रगट होते हैं.

(१) सतोगुण की साम्यावस्था से "संवित्" (ज्ञान) धर्म प्रकट होता है और भलेप्रकार जानलेने को ज्ञान कहते हैं.

(१)रजोगुण की शुद्धि अर्थात् समभाव से "संतोष" (तृप्ति) धर्म प्रकट होता है.

(३) तमोगुण की साम्यावस्था से "शौर्य" धर्म प्रकट होता है "शौर्य" पद का यह अर्थ है कि रजोगुण और तमोगुण की मलिनता, न्यूनता, अधिकता से जो काम क्रोधादि उत्पन्न होते हैं उनके वेगों को जीतके स्वच्छ तमोगुणके धर्म को धारण करने को समर्थ होना.

(दोहा)

सँवित सँतोष रु शौर्य पुनि, इनकी शुद्धी होय ॥
न्यायधर्मसूंप्रकटभयें, सुखीहोतजनसोय ॥ ५ ॥

(टीका)

संवित, संतोष, शौर्य, अर्थात् ज्ञान, तृप्ति, वीरता इन तीनों धर्मोंके समभाव से एक न्याय नाम धर्म प्रकट होता है और इस न्याय में स्थिर रहकर मनुष्य जीवन्मुक्त होसक्ता है

(संवित् के सात ७ धर्म)

बोध, बिचार, रु, अवगमन, बुद्धि तीव्रता, होय॥
धारणा, स्मृति, सप्त ए, संवित शुद्धी जोय ॥ ६॥

सतोगुण की साम्यावस्था से "संवित्"(ज्ञान) धर्म

प्रकट होता है और जिस आत्मा में ज्ञान का प्रकाश होता है तहां ये सात गुण उनके साथ निवास करते हैं.

(१) "बोध" नित्य प्रति कामों को करते २ संपूर्ण व्यवहारों के अंत फल को शीघ्र समझजाना. जैसा कि अंकविद्या में निपुण पुरुष अभ्यास के वश से अनेक अंकों का सिद्धांत तुरत जानलेते हैं ॥

(२) 'विचार' कारण को देखके कार्य का अनुमान प्रथम ही करलेना कि इस कर्म का यह फल होगा.

(३) " अवगमन " देखते और सुनते सर्व व्यवहारों के तात्पर्य को तुरंत जान लेना कि इस क्रिया के करने और बात के कहने का यह प्रयोजन है.

(४) 'बुद्धि' किसी विद्या और व्यवहारको सीखनेके समय कुछ कठिनता न प्रतीत हो जिस बात की चाहै सुगमही सों ग्रहण करले.

(५) 'तीव्रता" वादविवाद और जिज्ञासा के समयज्ञान सीमा को उल्लंघन न करना ॥ तात्पर्य यह है कि पदकी जिज्ञासा और वाद होतो पद के अर्थ विवेचन में न लगना ॥ ज्ञानसीमा का उल्लंघन यह भी होता है कि जैसे किसी उत्तम स्थान में मदिरा को धरी देखके झट यह निश्चय करलेना कि मदिरा आदिक मंद वस्तु का आना तो यहां कठिन और असंभव है यह अवश्य कोई अन्य पदार्थ है ॥ चाहे ऐसे स्थल में मदिरा का गंध अन्य पदार्थ के निश्चय में प्रतिबन्धक भी है तो भी ज्ञान सीमा के उल्लघंन ने ज्ञेय वस्तु के यथार्थ भाव को न समझने दिया सो जो कोई ज्ञानसीमा को उल्लघंन न करके यथार्थ विचार करे उसमें तीव्रता होती है.

(६) "धारणा" पठन श्रवण और दर्शनादि क्रिया से जो जो व्यवहार अनुभूत होचुका हो उसका बुद्धि में सदा स्थिर रहना.

(७) "स्मृति" देखे, सुने और पढ़े हुए पच्च की जिस की बुद्धि में धारणा होरही है जब अपेच्चा हो तुरन्त विना यत्न स्फूर्ति हो आवे.

संतोष के दश धर्म ॥

(चौपाई)

लज्जा, शम, विवेचना, गौरव,
संतुष्टि, वभूषा, अरु आर्ज्जव, ॥
स्नान, औदार्य्य, प्रवन्ध, सुकर्मा
ए संतोषहि के दश धर्मा ॥७॥

रजोगुण की शुद्धि अर्थात् साम्यावस्था से संतोष नाम धर्म प्रकट होता है और जहां संतोष है वहां नीचे लिखे दश धर्म निवास करते हैं.

(१) लज्जा-लोकापवाद के भय से कुकर्म्म में प्रवृत्त न होना

(२) शम-उन्मार्ग प्रवृत्ति वा कामातुरता के समय मन के रोकने में समर्थ होना.

[३] विवेचना- लोक एषणा के साथ मन का सदा संग्राम रहना। अर्थात् यह विवेक होते रहना कि शुभ एषणा और अशुभ एषणा कौनसी है॥ यह एषणा दो प्रकार की होती है; एक शुद्धा दूसरी अशुद्धा, शुद्धा वह होती है कि जो आवश्यक पदार्थों के इकट्ठा करने में क्रोध छल, हिंसा, अधर्म आदिक न करावे। अशुद्धा वह होती है के जिस कि द्वारा धन कमाते समय पूर्वोक्त क्रोधादि

रचनेपड़ें सो इन दोनों से संग्राम का नाम विवेचना है तात्पर्य्य इसका यह है कि हिंसा, छल, क्रोध अधर्म करके जो पदार्थ कमाया जाता है उसको अशुद्ध समझ कर त्यागे और इनके बिना जो द्रव्य उपार्जनहो उस रीति में तत्पर रहे.

(४) गौरव– तुच्छ तुच्छ कार्य्यों की सिद्धि के निमित्त अपने उचित जाति, कुल, मान, प्रतिष्ठा, को भंग करके शीघ्र ही किसी दूसरे के सन्मुख दीन और याचक न होजाना.

(५) संतुष्टि– खान, पान, वस्त्र, आभरण, यान, स्थानादि प्राप्त पदार्थों पर न्यून, अधिक की कल्पना छोड़ के सदा संतुष्ट रहना

(६) बभूषा– सर्व प्रकार से अपनी अच्छाई पूर्ण करने की इच्छा रखना तात्पर्य यह है कि मैं संसार की दृष्टि में किसी रीति से भी निन्द्य और अपूर्ण न गिना जाऊं

(७) आर्ज्जव– सर्वदा काल मन को जगत् के भले में प्रवृत्त रखना

(८) स्नान– शुद्ध और पवित्र होने का नाम है.

(९ औदार्य्य– प्राप्त हुआ पदार्थ जिस के खर्च और भोग में संकोच न करना.

(१०) प्रबन्ध– समस्त आचार्य्य व्यवहार को ऐसे कर्म्म से रखना कि कभी उलटे पलटे और अशुभ तथा अयुक्त न हो तात्पर्य यह है कि जो व्यवहार और जो वस्तु जहांजिस प्रकार से शोभनहो उसी भांतिसे रखना

(स्नान केभेद)

(दोहा)

देह गेह की शुद्धि को, कहत जगत में स्नान ॥
सो है उभय प्रकार को, तिन के सुनहु वखान। ८।

टीका

शरीर और मकान की शुद्धि को जगत् में स्नान कहते हैं और स्नान दो प्रकार के होते हैं.

(दोहा)

देह गेह की शुद्धि जो, जल मृतका से होय ।
बाह्य स्नान ताकूं कहे, बुधजन भाखे सोय ॥९ ॥

(टीका)

शरीर और मकान की शुद्धि जो जल, मृत्तिका से की-जाती है उसको बाह्यस्नान कहते हैं.

(दोहा)

कायिक, वाचिक, मानसिक, दश दोषनतें हीन ॥
अंतरस्नान हि समुझिये, मेघराज लख लीन ॥१० ॥

काया के वाणीके और मन के दश दोषों से वचता रहे उसको अन्तर स्नान कहते हैं.

(सोरठा)

हिंसा[1], अरु व्यभिचार[2], चोरी[3] तनके दोष त्रिहुं ॥
गाली[1] मिथ्याचार[2], परनिन्दा[3] त्रिहुं वचनके ॥ ११

(टीका)

हिंसा, व्यभिचार, चोरी, ये तीन दोष काया के हैं; गालीदेना, झूटबोलना, निन्दाकरना, ये तीन दोष

वचनके हैं

(दोहा)

क्रोध इर्षा मान छल, च्यार दोष मन केर ॥
इन दशहुन को छोड़ दे, पापमिटे तनकेर ॥ १२ ॥

टीका

क्रोध, ईर्षा, मान, और छल, ये चार दोष मनके हैं और पूर्वोक्त कायाके ३ वाणीके ३ मनके ४ इन १० दोषों को तजे उसका नाम अन्तर स्नान कहते हैं। और मनुष्य को बाह्य स्नान से अंतर स्नान की विशेष आवश्यकता है ॥

औदार्य्य के भेद ॥

(दोहा)

औदार्य्यसु द्वेभांति को, श्रेष्ठ अश्रेष्ठ निहार ॥
जहां श्रेष्ठ तहां दान पुनि, शुश्रूषा चित धार॥१३॥
सुकृत त्याग आतिथ्य पुनि, उत्सव प्रत्युपकार ॥
आल्हादजु पुनि जानिये, अष्ट जगत बिच सार १४

(टीका)

औदार्य्यदोतरहकेहोतेहैं अकश्रेष्ठदूसरा अश्रेष्ठ। श्रेष्ठ- यह जोनीचेलिखेहुए आठ स्थानों में द्रव्य खर्च करना.

(१) दान-दानके अधिकारी तथा दीन पुरुषों पर द्रवीभूत होके यथा शक्ति अन्न, जल, वस्त्र, धन आदिसे सहायता करना, सो यह दान भी दो तरह का होता है (१) उत्तम जो दीन को देखकर दयालुता से देवे (२) अनुत्तम दान जो मान वा कीर्त्तिके वास्ते अथवा किसी दूसरे दाताको जीतने के लिये तथा किसी

पूर्व परिचित पुरुष को वा उपकारी को दिया जावै और यह दान केवल धन मात्र से ही नहीं होता। विद्यादान, मानदान, निर्भयतादान, आदिक और भी अनेक दान करना श्रेष्ठ है .

विद्यादान—यदि कोई जगत् हितैषी विद्या अपने को प्राप्त होतो किसी दूसरे को सिखाने में संकोच न करे।

मानदान—आप निर्मान होके भी दूसरों के मान को आवश्यक समझना॥

निर्भयतादान—जो पुरुष तुम से या अन्य किसी अथवा परलोक दण्ड से डरा हुआ हो उसे येन केन प्रकार से निर्भय करदेना। यदि कोई तुम से अपने किये हुये अपराध के कारण भयभीत होतो अपराध क्षमासे निर्भय करना॥ और यदि किसी अन्य का किसी को भय होतो उचित सहायता से निर्भय करो और यदि परलोक से डरा हुआ होतो सत् उपदेश आदि से निर्भय करना योग्य है। अथवा डरा हुआ वही होता है कि जो अपराधी हो सो बुद्धिवान् को चाहिये कि सब जगत् को अपराध से रोकता रहे यही पूर्ण निर्भयता का दान कहलाता है

(२)शुश्रूषा—अपने सम्बन्धि और समीपी और अधिकारियों के भरण पोषण में द्रव्य का लगाना। सम्बन्धि, माता पिता, स्त्री, पुत्र, भ्राता, भगिनी, आदि प्रसिद्ध हैं और समीपी मित्र, पड़ोसी, आदिक को कहते हैं और अधिकारी उन का नाम है कि जो पूज्य वर्ग में हो जैसा कि सद्गुरु, साधु, अभ्यागत आचार्य आदिक प्रसिद्ध हैं

(३) सुकृति—पदार्थों को धर्म के अर्थ व्यय करना जैसा कि धर्मकी वृद्धि के अर्थ पाठशाला वा उपदेश को स्थापित करना तथा धर्म की उन्नति में उत्साह करना अथवा धर्मार्थ कूप, तड़ाग, वापी पथि गृह बाटिका आदि का बनाना अथवा जगत् की सहायता के निमित्त सदाव्रत वा वैद्यों को स्थापित करना ॥ और शुभ उत्साह में उद्यम करना.

(४) त्याग—जिन पदार्थों की प्राप्ति में अधिक क्लेश और विवाद और अनवकाश, और लोकापवाद हो उन के त्याग देने में समर्थ होना.

(५) आतिथ्य—अपने गृह में आये हुए पुरुष को अन्न, जल, वस्त्र, से अधिकार पूर्वक सेवन पूजन में द्रव्य लगाना.

(६) उत्सव....स्थान बनाना और विवाह आदि मंगल कार्य्यों में जो गृहस्थ को आवश्यक है द्रव्य व्यय करने में अत्यंत संकोच करना

(७) प्रत्युपकार....यदि किसी ने अपने साथ कुछ उपकार किया हो तो उस को कृत ज्ञता में जीवन पर्यन्त अपने धन पदार्थ द्वारा पलटा देने को उपस्थित रहना

(८) आल्हाद—किसीके अमूल्य गुण विद्या वा आश्चर्यकर्म और यथार्थ सेवादि को देखके यदि मन को आल्हाद (प्रसन्नता) होवे तो उस समय कुछ दान देना जो पुरुष रीझ के समय कुछ दान न करे उसका रीझना उपहास के योग्य है

(चौपाई)

डूम[१] भाट[२] नट[३] गनिका[४] स्वांगी[५]

निंद प्रशंसक देत सुमांगी ।

दान अश्रेष्ठ कही षट रीति।
रजो बृद्धि हित जान सुनीति १५

(टीका)

डूम भाट नट वेश्या बहुरूपिया निन्दा वा प्रशंसा करने वालों को अनुचित विषयानन्द में दान देने को अश्रेष्ठ दान कहा है ॥

यद्यपि ऐसे स्थलों में व्यय करना मनोरंजन रूप होने से व्यर्थ तो नहीं गिनाजाता तथापि अत्यंत रजोगुण का वर्द्धक होने से उत्तम पुरुषों को ग्राह्य नहीं होता.

॥ शौर्य्य के ११ धर्म ॥

(दोहा)

दृढता[1], दम[2], जिघ्रोहयिषा वाक्यपालना होय ॥
क्षान्ति[5], तितिक्षा[6], धृति[7], तथा आर्द्रव उद्यम[9] जोय १६
गौरव[10] तथा महत्त्व[11] ये ग्यारह लक्षण होय ॥
मेघराज ऐसें भनें शौर्य्य शुद्धि तहां जोय ॥ १७ ॥

(टीका)

तमोगुण की स्वच्छता अर्थात् संभाव से "शौर्य" (शूरवीरता) धर्म प्रकट होता है सो यह शौर्य्य कैसा है कि जो निन्द्य रजोगुण तमोगुण के वेग से काम क्रोधादि उत्पन्न होते हैं उन के वेगों को रोकने में और स्वच्छ तमोगुण के नीचे लिखे हुए एकादश धर्मों को स्वीकार करने में समर्थ होना।

(१) दृढता—निन्द्य और वर्जित वस्तु की ओर मन प्रवर्त्तन होने पावे। और धन से आनन्द और निर्धनता से कुछ शोक न मानें। यदि किसी अलभ्य वा मन्

ल्य वस्तु की हानि हो जावे तो अत्यन्त गर्वित न हो जावे।

(२) दम--तन और मन को व्यर्थ और अयोग्य क्रिया से रोके।

(३) जिग्राहयिषा--शुभचिन्तन और शुभ ग्रहण में मृत्यु से भी न डरे।

(४) वाक्यपालन--यदि किसी को कुछ देना वा सहायता करना वा मिलना वा कुछ करना, वाणी से कहा है। तो यथा शक्ति उस की पूर्णता में यत्न करना

(५)चान्ति-समयऔर व्यवहारोंको अपनी इच्छा से विरुद्ध होते देख के क्रोधाग्नि के धूम को अपने नेत्रों में न भरने देना.

(६) तितिक्षा—चाहे कैसा ही खेद और विपत्तिसन्मुख आवे परंतु मन में भय और कम्प तथा व्याकुलता आदिक उत्पन्न न हो.

(७) धृति....शत्रु के सामर्थ्य को और बल को देख के ऐसा डरपोक न हो जावे कि इन्द्रियों को उसकी निवृत्ति की शक्ति ही न रहे.

(८) आर्द्रव....अन्य जीव वर्ग को चकित और दुःखित वा शोकित देखकर द्रवीभूत अर्थात् दयालु होकर यथाशक्ति उस की निवृत्ति में यत्न करना

(९) उद्यम जो कार्य हाथ में है उसे पूरा करके किसी दूसरे कार्य को हाथ लगाना

(१०) गौरव....तुच्छों और दीनों पर बड़ाई का न चाहना और किंचित् अपराध आदिक को देखके उनपर शीघ्र क्रोधित न हो जाना वरन लोगों के कुवाक्यादि

की और कान न लगा के मत्त गज की नाईं अपने आनन्द में मगन रहना

(११) महत्व....अपने को बड़ा और योग्य समझना और यह महत्व दो प्रकार का है

अेक निंद्य महत्व....अपने धन गुणादि में उन्नति होके सर्व संसार को तुच्छ और अपने को पूज्य समझना। सो ऐसे पुरुष से समस्त जीव शत्रु भाव रखता है। दूसरा श्लाघ्य महत्व---अपने में महत्व मान के प्रतिष्ठा भङ्ग के भय से अनुचित क्रिया कलाप में चित्त को प्रवर्त्तन करना।

॥ न्याय के दश धर्म ॥

(दोहा)

भक्ति, ध्रुवता, योग्यता, अनृणित्वता, प्रीति ॥
अरु कृतज्ञता, दातृता. लियोजगत कोजीति ॥१८॥
शुभसम्बन्ध, अरु अनुग्रह, रु पुनिविवेचनाहोय ॥
ए दशलक्षण न्यायके, बुध जन भाखे सोय ॥ १९॥

[टीका]

संवित्, संतोष, शौर्य्य धर्मों की पूर्वोक्त शुद्धि अर्थात् समभाव से एक न्याय नाम धर्म प्रकट होता है ॥ मतलब इस न्याय नाम पद का यह है कि संपूर्ण व्यवहारों में यथार्थता को दृष्टि गोचर रखना किसी व्यवहार में न्यूनता अधिकता न होने पावे और जहां यह न्याय वर्त्तमान है उस आत्मा में यह दश लक्षण होते हैं।

(१) भक्ति—मन, वचन, कर्म से सर्व संसार के भले में यत्न करते रहना। और अपने कुल, रूप, धन, वि-

घा, बल आदि का अभिमान तज के सब की सेवा प-
रिचर्या में प्रीति रखना।

(२) ध्रुवता--यदि सारा जगत् उलटा होके निन्दक
वा विघातक हो जावे अथवा कोई दुष्ट वृथा ईर्षा वा द्वे
ष करके दुःख देने लगे और सब प्रकार से समय प्रतिकू
ल दिखाई देवे तो अयोग्य और मन्द क्रिया द्वारा सु-
खी होना न चाहे। किन्तु शुभ रीति से सुखी होना चा
हे॥

(३) योग्यता--समस्त जीव वर्ग के साथ उस की
समझ और शक्ति के योग्य बात करे। तथा उस ही के
अनुसार काम ले और उतना ही आदर सत्कार करे

(४) अनृणित्वता--जो कुछ किसी दूसरे का तुम्हारे
ऊपर ऋण चढ़ा हुआ हो चुका दो।

(५)प्रीति--सच्चा प्रेम कि जिससे दोनों का भेद मि
टजाय। और संपूर्ण व्यवहारों में स्वत्व परत्व का वि
चार न रहे। जैसा अपने देह में प्रेम होवे वैसा ही मि
त्र के शरीर में होवे और दोनों की काया मन वाणी स
त्य से पूर्ण हो और कदा पी झूठा व्यवहार बीच में न
आवे।

(६) कृतज्ञता--जो फल दूसरे से पावे उस से अधि
क फल पहुंचाने की इच्छा रक्खे और उस के उपकारको
भी न भूले और यदि बुरा फल किसी से पहुंचा हो तो
भूल जाना चाहिये उस के पलटा देने की घात में रह
ना श्रेष्ठ नहीं।

और मृत्यु को तथा अपने ऊपर किये हुए उपकार
को न भूलना चाहिये।

और अपने पर किसी ने अपकार किया हो तथा

आपने किसी पर उपकार किया हो तो भूल जानाचाहिये।

(७) दातृत्व--जिस आनन्द और ऐश्वर्य्य से आप विभूषित हो अन्य पुरुषों को भी उस में युक्त करना चाहिये।

(८)शुभसम्बन्ध--आपस में ऐसी रीति से कार्य व्यवहार को करे जिस से किसी का मन दुःखित न होवे

(९)अनुग्रह--किसी को दुःखित देखे तो मन में खेद मानकर उस की निवृत्ति में यत्न करे।

(१०)विवेचना--जिसका जो अधिकार है उस को यथार्थ रीति से विचारे और पूर्ण करे अर्थात् हकदार को पूरा हक देवे और दिरावे और मान्य पुरुष को सत्कार देवे।

इति संवित् संतोष शौर्य्य न्यायके
लक्षण वर्णनो नाम प्रथम
उल्लासः समाप्तः॥



अथ गुण दोष वर्णनो नाम द्वितिय उल्लासः प्रारंभः

(वार्ता)

हर एक गुण की तीन २ व्यवस्था होतीहै और हर एक अवस्था से प्रथम एक रोग प्रकट होता है ॥ और उनका यत्न न होने से फिर उन मुख्य रोगों से अनेक प्रकार के और रोग प्रगट होते रहते हैं उन के नाम लक्षण और यत्न सुनो

॥ प्रथम अध्याय ॥

॥ सतोगुण के तीन रोग ॥

(दोहा)

मन्द अधिकता न्यूनता सतगुण की जब होय ॥
आलस्य चांचल्यअज्ञता रोग व्यतिक्रम जोय।२२।

टीका

सतोगुण की मलिनता से अज्ञान, अधिकता से चांचल्य और न्यूनता से आलस्य ये तीन रोग प्रकट होते हैं

अज्ञान के ७ रोग

(दोहा)

स्वश्लाघा रु स्व उन्नति रु निरंकुशता केर ॥
दंभ वक्रता क्रूरता परनिन्दा पुनि हेर ॥ २१ ॥
ए विशेष अज्ञान के सातूं लक्षण वीर ॥
सामान्य जु अज्ञान व्है मैं हूं अज्ञ अधीर॥ २२ ॥

(टीका)

अज्ञान दो प्रकार का होता है—

(१) विशेष अज्ञान—अर्थ इस का यह है कि आप महा मूर्ख है तौ भी अपने को बडा ज्ञानी समझता है. उपाय इस रोग का दुर्घट है क्योंकि यह असाध्य रोग है. परन्तु उचित है कि प्राणी अक विद्या पढे कि जिससे अपने में भूल प्रतीत होकर दूसरे की शिक्षा माननी वाजिब समझ सत्संगति करे और विद्या पढे. वरना इस विशेष अज्ञान से सात रोग और हो जाते हैं।

(१) स्वश्लाघा-अर्थात् अपने मुख से अपनी बडाई करना। उपाय इस का यह है कि प्राणि यह विचारे कि मुझे लोग तुच्छ और वाचाल समझकर मेरे दूसरे सच्चे गुण भी झूठे मांनने लग जावेंगे।

(२) उन्नति—अपने वस्त्र भूषण धन सुख रूप कुलादि पदार्थों पर गर्वित होके सब से खिंचे रहना। उपाय इस का यह है कि इन सब को नासवान समझकर उन्नति वो गर्वित न होवे।

(३) निरंकुशता-अपने ज्ञान के प्रताप से विपत्ति में भी किसीकी शिक्षा न मानना कि मेरे शिर पर ज्ञानदाता खड़ा होजावेगा। उपाय इसका यह है कि सदा ग्रंथों को बाचै उसको गुप्त में शिक्षा होजावेगी.

[४] दंभ-अपनी थोड़ी सी विभूति को छलसे अधिक दिखानी। उपाय इसका यह है कि प्राणी यह समझे कि बुद्धिमानों से बात छांनी नहीं रहती और कपट अवश्य प्रकट होजाता है फिर लज्जा उठानीपड़ेगी.

[५] वक्रता-किसीको कभी प्रेमभाव न दिखाना कुटिल रहना। उपाय यह है कि प्राणी यहबिचारे कि सं

सार से अनेक काम पड़ते हैं और वक्र पुरुषके साथ सारा संसार वक्र ही रहता है फिर तुझसे कौन राजी रहेगा और कैसे तेरा कार्य सिद्ध होगा.

[६] क्रूरता-अष्टप्रहर अपने अज्ञान से तप्त रहना जिससे लोग डरते रहैं। उपाय इसका यह है कि प्राणी यह सोचे कि मैं भी सबसे मेल रक्खूं तो लोगों की तरह कितना लाभ उठाऊं। अथवा मैं ने मेरे ही स्वभाव से सब को शत्रु बनारक्खा है। इस खोटे स्वभाव से तो मैं भी अपने आप दुःखी रहता हूं.

(७) परनिंन्दा-उपाय इसका यह है कि प्राणी यह विचारे कि मैं बडा नीच हूं सो निन्दा करूं अथवा मेरे निन्दा करने से उस की कीर्ति नहीं मिटसक्ती और वह मेरा शत्रु होजावेगा.

और दूसरा सामान्य अज्ञान—अर्थ इसका यह है कि प्राणी जानता है कि मैं अज्ञानी हूं। उपाय इसका यह है कि विद्या पढ़ै और सत्संग करे.

॥ चांचल्य के ३ रोग ॥

(दोहा)

ज्ञान विपर्यय दुराग्रह, और हु अभिमाति मान ॥
ए लक्षण चांचल्य के,समुझ हि परम सुजांन॥२३॥

टीका

सतोगुण की अधिकता से चांचल्य नाम रोग होता है अर्थ इसका यह है कि जो विषय मनुष्य की बुद्धि से बाहिर हो उसके विचार में प्रवर्त होना। जैसाकि अग्नि में उष्णता जल में शीतलता क्यों और कैसे अथवा उन विषयों के विचार में लगेरहना कि जिनके जानलेने में भी

कुछ लाभ नहीं जैसाकि ऊंट बकरी के पेटमें मींगणाको न घड़ता है. उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी यह विचारे कि संसार में कई असे पदार्थ हैं कि जो कभी किसीके समझ में नहीं आसक्ते। और इस चांचल्य से विपर्ययज्ञान दुराग्रह अभिमाति ये तीन रोग उत्पन्न हो जाते हैं.

(१) विपर्ययज्ञान-अर्थ इसका यह है कि बुद्धि के चांचल्य से अत्यंत विचार करते करते यथार्थ भाव को छोडके कुछ अन्यथा ही निश्चय करलेना। जैसा कि जगत् की उत्पति के विषय में मनुष्यों नें अनेक भांति के अनुमान करछोडे हैं कोई शिवशक्ति, कोई ब्रह्मा विष्णु महेश, कोई तीनों गुणों से, कोई कर्मसे, कोई माया ब्रह्मसे, कोई बाबा आदम बीबी हव्वासे, संसार की उत्पत्ति मानते हैं, तात्पर्य यह है कि यह सब बुद्धि का चांचल्य है यथार्थ भाव को किसी ने न पाकर कोई किसी से और कोई किशी से जैसा जिस की बुद्धि में ऊचा जगत् का प्रारंभ माननेलगे। उपाय इस रोग का यह है कि यथार्थ अनुभव के उपयोगी प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान, शब्द, आदि प्रमाणों विना किसी बात को सत्य न मानें.

(२) दुराग्राह-अर्थात् बुद्धि के चांचल्य से जो विषय निश्चय किया गया वो सच्चा हो चाहे झूठा परंतु उसके विरुद्ध किसी दूसरी बात को न मानना। यदि कोई अधिक विद्वान् अपने अनुभूत विषय में युक्ति पूर्वक मिथ्यात्व भी दिखावे तो उसको ही विवादी और दुराग्रही मानलेना। सो यह दुराग्रह दो तरह का होता है.

(दोहा)

दुराग्रह हु द्वे भांति को स्वतः रु परतः होय ॥

इनहिं छोड़ बुध जन कहत आत्मा ले सुख जोय॥२४॥

(टीका)

[१] स्वतः दुराग्रह-यह है कि जो अपने ही अज्ञान से हुवा हो जैसा कि मूर्ख लोग जो कुछ मान बैठते हैं कभी त्याग नहीं करते.

[२] परतः दुराग्रह-यह है कि जो किसी के वृद्ध वा आचार्य ने वा किसी मूर्ख रचित ग्रंथने असत्य निश्चय करा छोडा हो। जैसा कि संसार में अनेक अैसे मत और पंथ हैं कि बालकभी उस की भ्रष्टता और असत्यताको समझ सक्ता है परंतु तन्निष्ठ पुरुष को उन पर अैसा दुराग्रह हो जाता हैकि यदि कोई उनके ग्रहीत पक्ष में कुछ छिद्र दिखावे तो मरने मारने को उपस्थित हो जाते हैं.

उपाय इस रोग का यह है कि सर्वदा यथार्थ विचार को मुख्य रक्खे। और युक्ति हीन बात कीसीकी भी सत्य न मानालिया करे,

(३) अभिमति-अपनि बुद्धि रूप धन मान के तुल्य अन्य को न समझना और इससे ईर्षा ज्वलन इन दो रोगों की उत्पत्ति होती है,

(दोहा)

अभिमति ते व्है ईर्षा और ज्वलन सुन तात॥
इनको तज भज भगवती ह्वै जगमें विख्यात ॥२५॥

(टीका)

अभिमति से ईर्षा और ज्वलन ये दोय रोग होते हैं इन को तज कर भगवती को भजो यातें जग में विख्यात होवो

(१) ईर्षा-पराये यश मान धन विद्या के ऐश्वर्य को दे

ख के वा सुनके सहार न सकना। और जहां तक होसके उसके विनाश में यत्न करना। उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी यह सोचे कि विरोध की उत्पति बिना मुझे इस ईर्षा से और क्या लाभ है

(२) ज्वलन-अपने से अधिक संपन्न देखकर सहार न सकना और चित्त में जलना अथवा कोई भूलसे भी अक वचन से पुकारें वा नमस्कार न करे तो अपनी अभिमति के प्रताप से चित्त में दग्ध होना और अपने को सब का पूज्य समझना और सांसारिक पुरुषों का किंचित टेढापन को सहार न सकना। उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी संपूर्ण दुःखों का मूल समझकर इस को त्याग देवे.

॥ आलस्य के ३ रोग ॥

(दोहा)

विस्मृति तथा निरुद्यम रु दीर्घसूत्रता जान ॥
मेघराज आलस्य के ए त्रिहुं गुण पहिचान ॥२६॥

टीका

सतोगुण की न्यूनता से आलस्य नाम रोग उत्पन्न होता है उपाय इस का यह है कि पुरुष निरालसी रहै और इस आलस्य से विस्मृति और निरुद्यमता और निरुद्यमता से दीर्घसूत्र नाम रोग होजाता है.

(१) विस्मृति-देखे सुने पढे हुए पद की पुनरावृत्ति न करने से विस्मृति होती है। उपाय इस का यह है कि पुरुष को उचित है कि आलस्य त्याग कर चित्त लगाकर देखे सुने पढे और फेर पुनरावृत्ति करता रहै.

(२) निरुद्यमता—अत्यन्त सुख की इच्छा में मन

को ऐसा अनवकाशी रखना कि अंत को काम के नाम से ही सिथिल हो जाय इस निरुद्यमता से अधांग वात ग्रंथी गुल्म इत्यादि शारीरिक रोग भी हो जातेहैं और दीर्घसूत्र हो जाता है ।

(३) दीर्घसूत्री---आज के काम को कल पर छोड़ना सो ऐसे पुरुषों का मनोरथ सिद्ध होना मुशकिल है

॥ इति प्रथम अध्याय ॥

॥ अथ द्वितीय अध्याय ॥

॥ रजोगुण के ३ रोग ॥

(दोहा)

मंद अधिकता न्यूनता राजस गुण की होय॥
मनोराज्य अरु काम पुनि कार्पण्यता जोय॥२७॥

रजोगुण की मलिनता से मनोराज्य और अधिकता से काम और न्यूनतासे कार्पण्यनाम रोग प्रकट होता है ।

(१) मनोराज---आठों पहर वृथा मन में संकल्प खडे होते रहना । जैसा किहमारे पास धन हो तो ऐसा मकान ऐसा जेवर ऐसा बगीचा इत्यादि बनावें उपाय इस रोग का यह है कि इन सब को नाशवान और अन्त को शोक और उदासी का भरा हुआ समझकर निःसंकल्प रहै नहीं तो इससे कुवासना नाम रोग होजाता है ।

(दोहा)

मनोराज्यतें होत है अक हि रोग प्रसिद्ध ॥

जाको नाम कुवासना ताकों तजे सो सिद्ध॥२२॥

टीका

मनोराज्य से अेक कुवासना नाम रोग होताहै उस को तजे वह सिद्ध पुरुष है कुवासना का यह अर्थ है कि आप तो उद्यम करके धन इत्यादि उपार्ज्जन नहीं करे औ र दूसरों का धन और सुख देखकर अपनी इच्छा रूपी अग्नि में जलता रहना। प्रतीकार इस रोग का यह है कि अपने से न्यून संपदा वा पुरुषार्थ वाले को देखकर प्राणी आप सुख माने की मैं इस से अच्छा सुखी हूं।

(२) काम—रजोगुण की अधिकता से काम नाम रोग उत्पन्न होता है अर्थ इस का यह है कि भोगों से कभी तृप्त न होना सो यह काम दो प्रकार का होताहै

(दोहा)

अत्रक तथा परत्रक हु उभय भांति को काम ॥
इन द्वै तें आसक्ति व्है कुविषय तजो तमाम॥२६।

टीका

अत्रक और परत्रक ये दो भांति के काम होते हैं और इन दोनों कामों से आसक्ति नाम रोग हो जाता है यातें इन खोटे विषयों को तजो।

[१] अत्रक काम वह है कि जो संसार के भोगों से तृप्तन होना। उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी य ह सोचे की अत्यन्त भोगों से मुझे दरिद्रता और नाना व्याधि और लोकापवाद की प्राप्ति होवेगी यातें अत्य न्त भोगों में रुचि ठीक नहीं

और इस अत्रक काम से फेर आसक्ति नाम रोग उत्पन्न हो जाता है-अर्थ इसका यह है कि भोगों में

अत्यन्त सम्बन्ध हो जाता है सो यह आसक्ती दो तरह की है-एक तो यह है कि एक पैसा भी धन में से न खर्च ना। उपाय इस का यह है कि प्राणी यह शोचे की मरने के पीछे सब कुछ धरा ही रह जायगा इत्यादि

दूसरी लंवडे बाजी या किसी स्त्रि से आसक्ति होना कि जिस से अनेक दुःख खडे हो जाते हैं उपाय इस रोग का अति दुर्घट है कदापि ऐसे पुरुष के मित्र भ्राता आदिक उसको उस से किसी यत्न से जुदाई कर देतो कुछ काल दुख पाकर सुखी हो जावे।

[२] परत्रककाम—अर्थ इस का यह है कि परलोक की झूठी कामना श्रवण कर उसकी बांछना तथा पवित्रता के निमित्त सदा काल अपने को व्रती हटी विवाहादि करने में प्रतिबंध करके आवश्यक आनंदों से अत्यन्त वार्जित रखना। उपाय इस रोग का यह है कि यदि परत्रक सुख की इच्छा हुवे तो परा विद्या का उपदेश सुने और भोगों की अधिक प्रवृत्ति का त्याग कर जिस पदार्थ विना शरीर यात्रा दुर्घट हो संयम पूर्वक उस को ग्रहण करलेने में दोष न समझे सो मुमुक्षु को चाहिये कि इन दोनों भांति के काम को मन में न आने देवे क्योंकि काम के प्रताप से कभी कभी प्राणी के मन में कुवृत्ति और उत्कृष नाम रोग उत्पन्न हो जाता है जो श्रेष्ट पुरुषों को वर्जित है।

(दोहा)

आसक्ति के दोय रुज कुवृति तथा उत्कर्ष ॥
धृक छोडयो संतोष तिहिं भयान बोध विमर्ष॥३०॥

(टीका)

आसक्ति के दो रोग होते हैं एक तो अत्रक काम की आसक्ति से कुवृत्ति नाम रोग होता है; दूसरा परत्रक काम की आसक्ति से उत्कर्ष नाम रोग प्रगट होता है। अर्थ इस उत्कर्ष पद का यह है कि चाहे यथार्थ शुचि प्राप्त हो भी जावे तो भी उस को बढाने के लिये देह को मल मल के दुखी होते रहना धिक् है उन जीवों को जिन को संतोष और ज्ञान नहीं। उपाय इस उत्कर्ष नाम रोग का यह है कि प्राणी यह विचारे कि अत्यन्त अधिकता किसी बात की अच्छी नहीं

॥कुवृत्ति ८ प्रकार की॥

(दोहा)

जुआ रु चोरी छल बहुरि कुटनि भांडहु जान ॥
नट नृतकारी भिक्षुकहु अष्ट कुवृत्ति पिछान ॥३१॥

(टीका)

जुआ, चोरी, छल, कुटनी अर्थात् पर पुरुषों को परस्त्रीगमन करानेवाली भांड नट नृत्यकारी भीखमांगना ये आठ कुवृत्तियां हैं इन वृत्तियों से द्रव्य कमाना श्रेष्ठ पुरुषों को वर्जित है

॥उत्कर्ष के ३ रोग॥

(चौपाई)

संशय भ्रम संकोच पिछानहु ।
त्रिहुं उत्कर्षहि सों व्है जानहु ॥
संकोचहीसों पक्षपात पुनि ।
नैर्घृण्य रु विद्रोह तीन सुनि ३२

(टीका)

उत्कर्ष से संशय भ्रम संकोच ये तीन रोग होते हैं (१) संशय, मुझे शुचि प्राप्त हुई वा नहीं। उपाय इसका यह है कि आत्मशुद्धियुक्त गुरुद्वारा यदि एकवार शुचि के साधन प्राप्त हो जांय तो फिर उसमें संशय कभी न उठावे क्योंकि संशय युक्त मन स्थिर नहीं होता और स्थिर होये विना सुखी नहीं होता।

(२) भ्रम-मेरी शुचि टूटतो नहीं गई। उपाय इसका यह है कि प्राणी शुचि पद के अर्थ को बिचारे कि यथार्थ शुचि किसको कहते हैं।

[३] संकोच-अपनी पवित्रता को अधिक करने के वास्ते अन्य पुरुषों से पला लेना और स्पर्श न होना। उपाय इसका यह है कि प्राणी यह बिचारे कि किसीका नीचपन किञ्चित् स्पर्श मात्र से मुझको पतित नहीं कर सकता हां अलबत्ते विशेष संग करने वो उसके आचार ग्रहण करने से पतित हो सक्ता हूं।

और इस संकोच से नैर्घृण्य विद्रोह पक्षपात ये तीन रोग उत्पन्न होते हैं।

(१) नैर्घृण्य-शुचि रहित पुरुषों को अत्यन्त आपदा में भी सहायता न देना। इसका उपाय यह है कि प्राणी यह समझे कि अन्न जल वस्त्र ये तीन वस्तु अशुचि पुरुष को भी आपदा में देना श्रेष्ठ पुरुषों का काम है।

(२) विद्रोह-परमत के पुरुषों को देखकर तपत रखना फिर प्राण घात का इरादा करना। उपाय इसका यह है कि प्राणी यह शोचे कि तूने जो प्राणिवध को कटिबांध रक्खी है इसमें तेरी शुचि का क्या ठिकाना

है उलटा महानीच ठैराया जाता है।

(३) पत्तपात-अपने मत की प्रशंसा और परमत की निंदा करना उपाय इस का यह है कि प्राणी समस्त जीवों के सुख दुःख को अपने समान समझके पत्तपात नहीं रक्खे और ऐसी कथायें सुनता रहे कि जिस से संपूर्ण धर्मों में सामान्य वृत्ति हो जावे।

कार्पराय २ तरह के

(दोहा)

स्वार्थ परार्थ द्वि कृपणता ए जग में पहिचान ॥
कायिक वाचिक मानसी तिहुं परार्थ ही जान॥३३॥

(टीका)

रजोगुण की न्यूनता से कार्पण्य नाम रोग प्रगट होता है अर्थात् स्वाभाविक ही भोगादिक से रुके रहना यथायोग प्रवृत्त न होना जहां लों हो सके संकोच और संक्षेप में दृष्टि रखना सो यह कार्पण्य दो प्रकार का होता है।

एक स्वार्थ कार्पण्य अर्थात् आप सर्व प्रकार सपन्न है तो भी अपने खान पान यान स्थानादि आवश्यक भोगों में ऊनता रखना अर्थात् कभी अच्छा खाना न खाना न अच्छा पहरना। उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी यह शोचे कि यदि आवश्यक कार्यों में भी संपदा काम में न लाऊं तो फिर यह किस काम की है और जो मैं आवश्यक भोगों में ऊनता रखता हूं फिर मनुष्य योनि का मुझे क्या फल हुआ।

दूसरा, परार्थ कार्पण्य-किसी दूसरे को कुछ देना वा खवाना पहिराना या उत्सव करना तो फिर मन से

यथाशक्ति और यथायोग्य खर्च न करना। उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी यह शोचे कि दान और सेवादि तब ही श्लघ्य होते हैं कि जब दाता और भोक्ता दोनों की तृप्ति पूर्वक होय, नहीं तो निन्द्य हो जाते हैं

सो यह परार्थ कार्पण्य कायिक वाचिक मानसिक तीन तरह के होते हैं।

(१) कायिक कार्पण्य-अपने शरीर से किसी की सेवा और सहायता न करना। उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी यह सोचे कि मनुष्य देह से परोपकार न हुआ तो पशुवत् है। और जो मैं किसी की सेवा व सहायता करूंगा तो लोग मेरी भी करेंगे।

(२) वाचिककार्पण्य-किसी का वाणी से शिष्टाचार न करना। उपाय इस का यह कि प्राणी यह शोचे कि शिष्टाचार करने की योग्यता मनुष्य की जिव्हा को ही है, जो मैं न करूं तो जिव्हा मैंडकवत किस काम की।

[३] मानसिक कार्पण्य-जगत् हितैषी बातों को न विचारना। और किसी से शुभ परामर्श करने में वो कृतज्ञता वो शुभ फल प्रदानादि में प्रवृत्ति न करना। उपाय इसका यह है कि प्राणी यह बिचारे कि जिस बुद्धि से परोपकार न हो वो मनुष्य नहीं किंतु शींग पूंछ रहित पशु है।

तमोगुण के तीन रोग।

[दोहा]

मंद अधिकता न्यूनता तबहि तमोगुण होय ॥
क्रोध उद्योग रु क्लैव्य ए तीन रोग तहां ये ॥३४॥

(टीका]

तमोगुण की मलिनता से क्रोध, अधिकता से उ-

योग, न्यूनता से कर्त्तव्य ये रोग प्रकट होते हैं।

क्रोध २ तरह के होते हैं।

(दोहा)

क्रोध हु उभय प्रकार का एक सामान्य विशेष॥
या विशेष के हेतु तू एकादश ही पेष॥ ३५॥

(टीका)

मन में तपन ज्वलन हो जाने का नाम क्रोध है सो यह क्रोध दो प्रकार का होता है एक सामान्य दूसरा विशेष और विशेष क्रोध के ११ कारणहोते हैं।

साम क्रोध वो है कि अपने निन्दकों और विधातकों की बुराई चित्त में रखकर पीछा पलटा देने की घात में लगारहना। उपाय इस रोग का यह हैकि प्राणी यह सोचे कि न जाने मैं पलटा देने से पहले से ही मरजाऊं अथवा मेरा शत्रु मेरे कपट को जानजावेगा तो ऐसा न हो कि वो पहले ही मेरा काम बनादेवे यह समझ कर मन के क्रोध को रोके.

दूसरा विशेष क्रोध-वृथा ही आठों पहर जलते रहना। और अयोग्य स्थानों में अपनी क्रोधाग्नि को प्रकाशित करना। जैसा कि मूर्ख लोग क्रोध के समय भींत, पाषाण, वर्तन, वस्त्रादि पर दांत पीस २ कर क्रोध करते हैं.सो क्रोध के समय एक तो उसको शिक्षा नहीं करना चाहिये दूसरे जिस पर उसने क्रोध किया उसकी सहायता न करनी चाहिये क्रोधाग्नि में ये दोनों ईंधनरूप हैं यातें ऐसा उस समय न करना चाहिये। इससे क्रोधाग्नि दूनी होजाती है। उपाय इसकी शांति का यह है कि क्रोधी खड़ा हो तो बैठ जावै, बैठा हो तो सोजावै, तथा स्थान छोड़ देवे अथवा शीतल जल पीवे

भूखा हो तो कुछ खावे चलता होतो किसी वृक्ष की छाया बैठे और इन एकादश बातों को नजीक न आने देवे कि जो क्रोध के कारण हैं.

[दोहा]

गर्व[१], दर्प्प[२], संघर्षता[३], ठठ्ठा[४], बहुरि विवाद[५] ॥
परिवर्तन[६], रु प्रभुत्व[७], पुनि निर्दयता[८] करि याद॥६॥
दुर्जनता[९], रु प्रमत्तता[१०], मगरूरी[११] पहिचान ॥
मेघराज ऐसे भने, एकादश ए जान ॥ ३७ ॥

[टीका]

[१] गर्व-अपनी शक्ति और सामर्थ्य वो संपदा पर लाड करना.

[२] दर्प्प-अपने हाथ से किये बिना किसी अन्य के किये हुए अच्छे काम को भी अच्छा न कहना.

[३] संघर्ष- एक ही बात को बार २ कहना यानी बहुत घसना.

[४] ठट्टा-हासी, मशकरी.

[५] विवाद-बात चीत में जिद करना.

[६] परिवर्तन-चित्तकोस दैवी और यथार्थ स्वभाव से उलटके रोगी होजाना.

[७] प्रभुत्व-अपने स्त्री पुत्र नौकर इत्यादि पर क्रुद्ध होना सो यह दो तरह का होता है.

एकसकारण-अपने आधीन पुरुषों का अपराध देखके क्रोध करना.

दूसराअकारण-वृथा ही अपराध लगाकर क्रोध करना.

[८] निर्दयता-किसी को सताना

[९] दुर्जनता दुष्ट स्वभाव से किसी की हानि में प्रवृत्त होना .

[१०] प्रमत्तता-जो क्रिया वा व्यवहार श्रेष्ठ पुरुषों के करिवे योग्य नहीं उन के करने में इस ख्याल से प्रवृत्त होना कि हमारा कोई क्या कर सकता है .

[११] मगरूरी-घमंड यानी अपने धन कुल रूप विद्या जाति पर घमंड करना.

सो मनुष्य को इन पूर्वोक्त एकादश बातों से वचता रहना चाहिये नहीं तो अवश्य क्रोध होगा .

विवाद के ९ फल ।

दोहा

वैर[१] ,वैमनस्य[२] ,छल[३] ,कपट[४], झूठ[५] , हठ[६], अरु मान[७] ॥
दंभ , क्रोध, ए नव हि जु फल विवाद के हु जान ३८

टीका

जहां विवाद होता है वहां वैर, वैमनस्य, छल, कपट झूठ, हठ, मान, दंभ, क्रोध, ये फल प्राप्त होते हैं .

प्रमत्तता के २ रोग

दोहा

मिथ्या[१] , हिंसा[२], उभय ए प्रमत्ततातें होय ॥
इनतें मनोमुख होत है समुझ लेहु सब कोय ३९

टीका

जहां प्रमत्तता होती है तहां मिथ्या और हिंसा ये दो रोग होजाते हैं और जहां इन दोनों का निवास होता है वो आत्मा मनोमुख होजाता है .

॥ मनोमुख के १०दश लक्षण ॥

दोहा

द्रोह[१], क्रोध[२], मद[३], मान[४], छल[५], तस्कर[६] विषयासक्त[७] ॥
परनिंदा[८], अरु ईर्षा[९], वैर[१०], मनोमुख रक्त ॥ ४० ॥

टीका

जो पुरुष मनोमुख होता है तो उसमें द्रोह, क्रोध, मद, मान, छल, तस्कर, विषयासक्तपन व परनिंदा, ईर्षा वैर, ये धर्म प्रकट होजाते हैं,

॥उद्योग के ३ रोग ॥

(वार्ता)

तमोगुण की अधिकता से उद्योग नाम रोग प्रगट होता है, अर्थ इस का यह है कि अपनी शूरवीरता के अभिमान से किसी काम को भारी न समझना अपने प्राण को हतेली में लिये फिरना कि हम संसार में किसी से नहीं डरते। उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी इस बात को सदा बिचारता रहै कि दुःख सुख हानि लाभ में व्याकुल न होवे अथवा काम क्रोध लोभ मोह इन शत्रुओं को जीते वो शूरबीर है न कि वृथा प्राण नष्ट करदेना अथवा तुच्छ जीवों के भय का कारण बने। आश्चर्य है कि लोक बाहर के शत्रुओं के जीतने का तो उद्यम करते हैं और अंतर के शत्रु काम क्रोध लोभ मोह इन की तरफ देखते भी नहीं;

दोहा

अभिमति हठ अरु निठुरता तिहुं उद्योगतें होय ॥
हिंसा कपट रु वैमनस्य, निठरताहितें जोय॥४१॥

(टीका)

आसक्ति के दो रोग होते हैं एक तो अन्नक काम की आसक्ति से कुवृत्ति नाम रोग होता है; दूसरा पर अन्न काम की आसक्ति से उत्कर्ष नाम रोग प्रगट हो ता है। अर्थ इस उत्कर्ष पद का यह है कि चाहे यथार्थ ग़ुष्वि प्राप्त हो भी जावे तो भी उस को बढाने के लिये देह को मल मल के दुखी होते रहना धिक् है उन जीवों को जिन को संतोष और ज्ञान नहीं। उपाय इस उत्कर्ष नाम रोग का यह है कि प्राणी यह विचारे कि अत्यन्त अधिकता किसी बात की अच्छी नहीं

॥कुवृत्ति ८ प्रकार की॥

(दोहा)

जुआ रु चोरी छल बहुरि कुटनि भांडहु जान ॥
नट नृतकारी भिक्षुकहु अष्ट कुवृत्ति पिछान ॥३१॥

(टीका)

जुआ, चोरी, छल, कुटनी अर्थात् पर पुरुषों को परस्त्रीगमन करानेवाली भांड नट नृत्यकारी भीखमांगना ये आठ कुवृत्तियां हैं इन वृत्तियों से द्रव्य कमाना श्रेष्ठ पुरुषों को वर्जित है

॥उत्कर्ष के ३ रोग॥

(चौपाई)

संशय भ्रम संकोच पिछानहु ।
त्रिहुं उत्कर्षहि सों व्है जानहु ॥
संकोचहीसों पक्षपात पुनि ।
नैर्घृण्य रु विद्रोह तीन सुनि ३२

(टीका)

उत्कर्ष से संशय भ्रम संकोच ये तीन रोग होते हैं (१) संशय, मुझे शुचि प्राप्त हुई वा नहीं। उपाय इसका यह है कि आत्मशुद्धियुक्त गुरुद्वारा यदि एकवार शुचि के साधन प्राप्त हो जांय तो फिर उसमें संशय कभी न उठावे क्योंकि संशय युक्त मन स्थिर नहीं होता और स्थिर होये विना सुखी नहीं होता।

(२) भ्रम-मेरी शुचि टूटतो नहीं गई। उपाय इसका यह है कि प्राणी शुचि पद के अर्थ को विचारे कि यथार्थ शुचि किसको कहते हैं।

[३] संकोच-अपनी पवित्रता को अधिक करने के वास्ते अन्य पुरुषों से पल्ला लेना और स्पर्श न होना। उपाय इसका यह है कि प्राणी यह बिचारे कि किसीका नीचपन किञ्चित् स्पर्श मात्र से मुझको पतित नहीं कर सकता हां अलवत्ते विशेष संग करने वो उसके आचार ग्रहण करने से पतित हो सक्ता हूं।

और इस संकोच से नैर्घृण्य विद्रोह पक्षपात ये तीन रोग उत्पन्न होते हैं।

(१) नैर्घृण्य-शुचि रहित पुरुषों को अत्यन्त आपदा में भी सहायता न देना। इसका उपाय यह है कि प्राणी यह समझे कि अन्न जल वस्त्र ये तीन वस्तु अशुचि पुरुष को भी आपदा में देना श्रेष्ठ पुरुषों का काम है।

(२) विद्रोह-परमत के पुरुषों को देखकर तपत रखना फिर प्राण घात का इरादा करना। उपाय इसका यह है कि प्राणी यह सोचे कि तूने जो प्राणिवध को कटिबांध रक्खी है इसमें तेरी शुचि का क्या ठिकाना

है उलटा महानीच ठैराया जाता है।

(३) पक्षपात-अपने मत की प्रशंसा और परमत की निंदा करना उपाय इस का यह है कि प्राणी समस्त जीवों के सुख दुःख को अपने समान समझके पक्षपात नहीं रक्खे और ऐसी कथायें सुनता रहे कि जिस से संपूर्ण धर्मों में सामान्य वृत्ति हो जावे।

कार्पण्य २ तरह के

(दोहा)

स्वार्थ परार्थ द्वि कृपणता ए जग में पहिचान ॥
कायिक वाचिक मानसी तिहुं परार्थ ही जान॥३३॥

(टीका)

रजोगुण की न्यूनता से कार्पण्य नाम रोग प्रगट होता है अर्थात् स्वाभाविक ही भोगादिक से रुके रहना यथायोग प्रवृत्त न होना जहां लों हो सके संकोच और संक्षेप में दृष्टि रखना सो यह कार्पण्य दो प्रकार का होता है।

एक स्वार्थ कार्पण्य अर्थात् आप सर्व प्रकार सपन्न है तो भी अपने खान पान यान स्थानादि आवश्यक भोगों में ऊनता रखना अर्थात् कभी अच्छा खाना न खाना न अच्छा पहरना। उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी यह शोचे कि यदि आवश्यक कार्यों में भी संपदा काम में न लाऊं तो फिर यह किस काम की है और जो मैं आवश्यक भोगों में ऊनता रखता हूं फिर मनुष्य योनि का मुझे क्या फल हुआ।

दूसरा, परार्थ कार्पण्य-किसी दूसरे को कुछ देना या खवाना पहिराना या उत्सव करना तो फिर मनसे

यथाशक्ति और यथायोग्य खर्च न करना। उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी यह शोचे कि दान और सेवादि तब ही श्रुद्ध होते हैं कि जब दाता और भोक्ता दोनों की तृप्ति पूर्वक होय, नहीं तो निन्द्य हो जाते हैं

सो यह परार्थ कार्पण्य कायिक वाचिक मानसिक तीन तरह के होते हैं।

(१) कायिक कार्पण्य-अपने शरीर से किसी की सेवा और सहायता न करना। उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी यह सोचे कि मनुष्य देह से परोपकार न हुआ तो पशुवत् है। और जो मैं किसी की सेवा व सहायता करूंगा तो लोग मेरी भी करेंगे।

(२) वाचिककार्पण्य-किसी का वाणी से शिष्टाचार न करना। उपाय इस का यह कि प्राणी यह शोचे कि शिष्टाचार करने की योग्यता मनुष्य की जिव्हा को ही है,जो मैं न करूं तो जिव्हा मैंडकवत् किस काम की।

[३] मानसिक कार्पण्य-जगत् हितैषी बातों को न बिचारना। और किसी से शुभ परामर्श करने में वो कृतज्ञता वो शुभ फल प्रदानादि में प्रवृत्ति न करना। उपाय इसका यह है कि प्राणी यह बिचारे कि जिस बुद्धि से परोपकार न हो वो मनुष्य नहीं किंतु शींग पूंछ रहित पशु है।

तमोगुण के तीन रोग।

[दोहा]

मंद अधिकता न्यूनता तबहि तमोगुण होय॥
क्रोध उद्योग रु क्लैव्य ए तीन रोग तहां ये ॥३४॥

(टीका]

तमोगुण की मलिनता से क्रोध, अधिकता से उ-

योग, न्यूनता से क्लैव्य ये रोग प्रकट होते हैं।

क्रोध २ तरह के होते हैं।

(दोहा)

क्रोध हु उभय प्रकार का एक सामान्य विशेष ॥
या विशेष के हेतु तू एकादश ही पेष ॥ ३५ ॥

(टीका)

मन में तपन ज्वलन हो जाने का नाम क्रोध है सो यह क्रोध दो प्रकार का होता है एक सामान्य दूसरा विशेष और विशेष क्रोध के ११ कारण होते हैं।

शम क्रोध वो है कि अपने निन्दकों और विघातकों की बुराई चित्त में रखकर पीछा पलटा देने की घात में लगारहना। उपाय इस रोग का यह हैकि प्राणी यह सोचे कि न जाने मैं पलटा देने से पहले से ही मरजाऊं अथवा मेरा शत्रु मेरे कपट को जानजावेगा तो ऐसा न हो कि वो पहले ही मेरा काम बनादेवे यह समझ कर मन के क्रोध को रोके.

दूसरा विशेष क्रोध-वृथा ही आठों पहर जलते रहना। और अयोग्य स्थानों में अपनी क्रोधाग्नि को प्रकाशित करना। जैसा कि मूर्ख लोग क्रोध के समय भींत, पाषाण, वर्तन, वस्त्रादि पर दांत पीस २ कर क्रोध करते हैं.सो क्रोध के समय एक तो उसको शिक्षा नहीं करना चाहिये दूसरे जिस पर उसने क्रोध किया उसकी सहायता न करनी चाहिये क्रोधाग्नि में ये दोनों ईंधनरूप हैं यातें ऐसा उस समय न करना चाहिये। इससे क्रोधाग्नि दूनी होजाती है। उपाय इसकी शांति का यह है कि क्रोधी खड़ा हो तो बैठ जावै, बैठा हो तो सोजावे, तथा स्थान छोड़ देवे अथवा शीतल जल पीवे

भूखा हो तो कुछ खावे चलता होतो किसी वृक्ष की छाया बैठे और इन एकादश बातों को नजीक न आने देवे कि जो क्रोध के कारण हैं.

[दोहा]

गर्व, दर्प्प, संघर्षता, ठट्ठा, बहुरि विवाद ॥
परिवर्तन, रु प्रभुत्व, पुनि निर्दयता करि याद॥६॥
दुर्जनता, रु प्रमत्तता, मगरूरी पहिचान ॥
मेघराज ऐसे भने, एकादश ए जान ॥ ३७ ॥

[टीका]

[१] गर्व-अपनी शक्ति और सामर्थ्य वा संपदा पर लाड करना.

[२] दर्प्प-अपने हाथ से किये बिना किसी अन्य के किये हुए अच्छे काम को भी अच्छा न कहना.

[३] संघर्ष- एक ही बात को बार २ कहना यानी बहुत घसना.

[४] ठट्ठा-हासी, मशकरी.

[५] विवाद-बात चीत में जिद करना.

[६] परिवर्तन-चित्तकोस दैवी और यथार्थ स्वभाव से उलटके रोगी होजाना.

[७] प्रभुत्व-अपने स्त्री पुत्र नौकर इत्यादि पर क्रुद्ध होना सो यह दो तरह का होता है.

एकसकारण-अपने आधीन पुरुषों का अपराध देखके क्रोध करना.

दूसराअकारण-वृथा ही अपराध लगाकर क्रोध करना.

[८] निर्दयता-किसी को सताना

[९] दुर्जनता दुष्ट स्वभाव से किसी की हानि में प्रवृत्त होना .

[१०] प्रमत्तता-जो क्रिया वा व्यवहार श्रेष्ठ पुरुषों के करिवे योग्य नहीं उन के करने में इस ख्याल से प्रवृत्त होना कि हमारा कोई क्या कर सकता है .

[११] मगरूरी-घमंड यानी अपने धन कुल रूप विद्या जाति पर घमंड करना.

सो मनुष्य को इन पूर्वोक्त एकादश बातों से पचता रहना चाहिये नहीं तो अवश्य क्रोध होगा .

विवाद के ९ फल ।

दोहा

वैर[1] ,वैमनस्य[2] ,छल[3] ,कपट[4], झूठ[5] , हट्ट[6], अरु मान[7] ॥
दंभ[8] , क्रोध, ए नव हि जु फल विवाद के हु जान ३८

टीका

जहां विवाद होता है वहां वैर, वैमनस्य, छल, कपट झूठ, हठ, मान, दंभ, क्रोध, ये फल प्राप्त होते हैं .

प्रमत्तता के २ रोग

दोहा

मिथ्या[1] , हिंसा[2], उभय ए प्रमत्ततातें होय ॥
इनतें मनोमुख होत है समुझ लेहु सब कोय ३९

टीका

जहां प्रमत्तता होती है तहां मिथ्या और हिंसा ये दो रोग होजाते हैं और जहां इन दोनों का निवास होता है वो आत्मा मनोमुख होजाता है .

॥ मनोमुख के १०दश लक्षण ॥

दोहा

द्रोह[१], क्रोध[२], मद[३], मान[४], छल[५], तस्कर[६] विषयासक्त[७] ॥
परनिंदा[८], अरु ईरषा[९], वैर[१०], मनोमुख रक्त ॥ ४० ॥

टीका

जो पुरुष मनोमुख होता है तो उसमें द्रोह, क्रोध, मद, मान, छल, तस्कर, विषयासक्तपन व परनिंदा,ईर्षा, वैर, ये धर्म प्रकट होजाते हैं,

॥उद्योग के ३ रोग ॥

(वार्ता)

तमोगुण की अधिकता से उद्योग नाम रोग प्रगट होता है, अर्थ इस का यह है कि अपनी शूरबीरता के अभिमान से किसी काम को भारी न समझना अपने प्राण को हतेली में लिये फिरना कि हम संसार में किसी से नहीं डरते। उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी इस बात को सदा विचारता रहै कि दुःख सुख हानि लाभ में व्याकुल न होवे अथवा काम क्रोध लोभ मोह इन शत्रुओं को जीते वो शूरबीर है न कि वृथा प्राण नष्ट करदेना अथवा तुच्छ जीवों के भय का कारण बने। आश्चर्य है कि लोक बाहर के शत्रुओं के जीतने का तो उद्यम करते हैं और अंतर के शत्रु काम क्रोध लोभ मोह इन की तरफ देखते भी नहीं ;

दोहा

अभिमति हठ अरु निठुरता तिहुं उद्योगतें होय ॥
हिंसा कपट रु वैमनस्य , निठुरताहितें जोय॥४१॥

(टीका)

इस उद्योग से अभिमति हठ निठुरता ये तीन रोग प्रगट होते हैं। और निठुरता से हिंसा कपट अरु वैमनस्य प्रकट होते हैं

[१] अभिमति--सर्प बिच्छु शस्त्र आदि मृत्यु का भय होने के स्थानों में जाने को सब से अगवाणी होजाना उपाय इस रोग का यह है कि हानि लाभ विचार कर शक्ति के माफिक काम न करे वो अंतको पिछताता है

[२] हठ जिन कार्यों और व्यवहारों में वारंवार कष्ट उठाया तो भी न छोडना इस ख्याल से कि लोक मुझे अशक्त और तुच्छ कहेंगे अथवा तुच्छ से लाभ और सुख के कारण अपने धन मान प्रतिष्ठा को नष्ट करना जैसा कि मूर्ख लोग बहुतसा खाना और बोझ उठाने का हठ बांधते हैं और राजदरबार में अपने झगड़े में हारकर बारबार आगे को झगड़ा बधाते जाते हैं। उपाय इस हठ नाम रोग का यह है कि संपूर्ण कार्यों को बुद्धि से तोल कर उसके अंत फल को समझ कर हानि लाभ देख कर प्राणी आरंभ करे.

(३) निठुरता-मन से वाणी से काया से तुच्छ जीवों को सताना.

काया से अकड़ कर चलने में निर्बलों को धक्का लगना ऊंचे देखकर चलने में सूक्ष्म जीवों का पग नीचे दब कर मरना.

मन से—फलाने का धन मुझसे जियादा है नष्ट होजावे ,अथवा फलाने को विवाद कर विद्या में जीत लेऊं,अथवा फलाना जो श्लाघ्य है उस को कलंक लगादेऊं ऐसा संकल्प रहना.

वाणी से—जब ऐसे संकल्प मन में रहते हैं तो वे पुष्ट होकर वाणी द्वारा प्रकट होने लगजाते हैं और फिर इस निठुरता से हिंसा वैर कपट ये तीन रोग उत्पन्न होजाते हैं.

क्लैब्य के ३ रोग ॥

वार्ता

तमोगुण की न्यूनता से क्लैब्य नाम रोग होता है अर्थ इसका यह है कि यद्यपि शरीर समस्त अंगों से संपन्न है और बल धन गुण मान परिवार आदिकों में ऊनता नहीं तो भी किसी बलवान् के आधीन रहना और मनकी निर्बलता के कारण अपने को किसी कार्य के लायक न समझना। ऐसे पुरुष जीवन पर्यंत न कुछ करसके और न किसी दूसरे के काम आते गोबर के कीट वत् हैं। उपाय इसका यह है कि ऐसे पुरुषों को मानी अहंकारी महान् पुरुषों का संग करावे उनके संग से यह भी अपने सामर्थ्य और पुरुषार्थ को समझने लगजावेगा तो शौर्य्य धर्म की प्राप्ति भी होजावेगी और इस क्लैब्य अर्थात् डरपोकपन से अशक्ति, विस्मय, भय, ये तीन रोग प्रकट होते हैं.

दोहा

क्लैब्य जनत यह तीन रुज, विस्मय भय रु अशक्त ॥
इन तीननतें नाश व्है, आत्मा नांहि विरक्त ॥४२॥

[टीका]

क्लैब्य अर्थात् डरपोकपन से विस्मय, भय, अशक्ति, ये तीन रोग होकर प्राणी नाश को प्राप्त होजाता है.

[१] विस्मय-जो बात सामने आवे उसके ग्रहण

त्याग की सुध भूल के देखने से ही चकित होजाना और उस की यथार्थता समझने की बुद्धि की शक्ति नहीं रहना और यह विस्मय दो तरह का होता है.

दोहा

विस्मय उभय प्रकार को सांसारिक परमार्थ ॥
परमार्थक जन रोग है अध्रुवता असमर्थ ॥४३॥

[टीका]

(१) विस्मय दो तरह का होता है.

एक सांसारिक-अर्थात् जंत्र मंत्र तंत्र टोटका और उनके फल को देखकर अचरज करना वो हात मसलना। उपाय इसका यह है कि मनुष्य को योग्य है कि उसके सिखने का यत्न करे और यह समझे कि यह सब बुद्धि और चातुर्य है मैं भी सीख सक्ता हूं

दूसरा पारमार्थिक विस्मय- अर्थात् ईश्वर है वा नहीं जगत् कैसे बना कब से बना क्यों बना किसने बनाया क्यों बनाया और पांच तत्त्वों के भिन्न भिन्न स्वभाव और गुण कैसे और क्यों हैं उपाय इसका यह है कि महात्माओं का संग करे विद्या पढे और इस पारमार्थिक विस्मय से अध्रुवता नाम रोग फिर होजाता है अर्थात् कभी किसी मत पर और कभी किसी मत पर श्रद्धा रख कर किसी एक मत पर दृढ न रहना.

[२] भय- सो यह भय तीन प्रकार का होता है.

(दोहा)

एक भय कुत्सित कर्म को दूजो मृत्यु जोय ॥
तीजो भूत रु पित्र ग्रह जादू टूना होय ॥ ४४ ॥

(टीका)

प्रथम कुकर्मों का भय। उपाय इसका यह है कि प्रा णी कुकर्मों से बचता रहै.

द्वितीय भूतछाया पित्र ग्रह जादूटूना आदि का। उपाय इस रोग का यह है कि प्राणी इन पदार्थों के हो ने न होने के ग्रंथ देखे.

तीसरा--मृत्यु का भय सो यह भय भी तीन प्र- कार का होता है

प्रथम--परिवार व स्थावर जंगम पदार्थ जो मेरे हैं वो फिर कहां पाऊंगा। उपाय इसका यह है कि पहिले ही से वैराग्य रक्खे

दूसरे--मैं मर जाऊंगा जगत् में मेरा नाम न रहेगा। उ पाय इसका यह है कि परा विद्या पढे जिससे यह ज्ञान हो कि एक दिन शरीर मिटना ही है तो फिर भय करने में क्या लाभ है और सदा नाम किसीका नहीं रहता औ र जो रहे भी तो मरे पीछे उससे मुझे क्या लाभ और इ स एक देह के नष्ट होने से मैं नष्ट नहीं होता क्योंकि मैं केवल एक देह नहीं हूं किन्तु समष्टि रूप से ब्रह्म हूं

(३) मेरे मरे पीछे मेरी न जाने क्या गति होगी दुःख सुख मुझे भोगने पड़ेंगे। उपाय इस का यह है कि प्राणी परा विद्या पढे अथवा जिन कुकर्मों के फल का दुःख होने का भय है वह कुकर्म न करे.

(२) अशक्ति--अर्थात् तुच्छ कामों को भी देख कर यह कहना कि न जानें यह काम मुझ से होगा वा नहीं इस विचार में कुछ नहीं करता और समय बीत जाता। सो इस अशक्ति के प्रताप से दलिद्र आलस्य चिंता आदि फलों की प्राप्ति होती है। उपाय इस का यह है कि प्राणी

भरोसा न हारे। यथाशक्ति उद्यम करे। और यह अ-शक्ति दो प्रकार की होती है.

एक न्यून अशक्ति-- किसी कार्य में कोई कठिनता आपड़े तो दब जाना.

दूसरी अधिक अशक्ति-- अर्थात् कठिनता पड़ने की सुनकर प्रथम से ही चिंतातुर होना.

न्याय के २ रोग ॥

(वार्ता)

सत रज तम की साम्यावस्था से संवित् संतोष शौर्य ये तीन धर्म प्रकट होते हैं और इन तीनों की सुधि से न्याय नाम धर्म प्रकट होता है सो इस न्याय के दो रोग होते हैं.

दोहा

न्याय धर्म की न्यूनता और अधिकता होय ॥
अपरापर अन्याय ए उभय रोग तहां जोय ॥४५॥

(टीका)

न्याय की न्यूनता से अपर अन्याय होता है और अधिकता से पर अन्याय होता है।

(१) न्याय की न्यूनता से अपर अन्याय रोग हो जाता है अर्थात् अपने ऊपर अन्याय करना। सो यह अपर अन्याय दो तरह का होता है।

(दोहा)

होत अपर अन्यायतें निश्चय आतमघात ॥
स्वकृत रु परकृत भेद तें उभय हि रूप दिखात ॥४६॥

(टीका)

अपर अन्याय दो प्रकार का होता है एक स्वकृत

आत्मघात दूसरा परकृत आत्मघात ।
(१) स्वकृत आत्मघात-इस को कहते हैं कि अपने
आप को दुखी रखना अथवा अपने आत्मा का आपही
घात करना सो इस आत्मघात के छः कारण होते हैं।

आत्मघात के ६ कारण

(चौपाई)

विद्याहीन पुरुष अहंकारी
क्रोध कुसंग कृपणताधारी ॥
व्याधि ग्रस्त देह जब होई
आत्मघात षटकारण यह ही ॥ ४७ ॥

(टीका)

विद्या करके हीन होवे अहंकारी वो क्रोधी, वो कु
संगी, और कृपण अर्थात् औषधी में और खान पाना
दि में यथाशक्ति द्रव्य न खर्चे करे और रोगों से भारि
व्याकुल होना ये कारण आत्मघात के हैं.
(२) पर कृत आत्मघात अर्थात् किसी दूसरे के
अन्याय और उपद्रव को अपने ऊपर सहारते रहना। उ
पाय इसका यह है कि अपने आत्मा के बचाव का प्राणी
यत्न करे जैसा कि राजा अन्याई हो अथवा उसके राज
में सर्वदा उपद्रव उठते रहते हों तो उसका राज छोड़दे-
वे अथवा किसी दूसरे मनुष्य से दुःख और उपद्रव हो
तो जैसे बने वैसे उसका दमनकरना योग्य है परंतु शु-
भ रीति से दमन होते अशुभ रीति बरताव में न लावे
क्षमा करो या भाग जावो तथा अन्यायी के मन को शां
त करो अथवा राज में पुकारो इत्यादि ।

न्याय की अधिकता के १०रोग

वार्ता

न्याय की अधिकता से परे अन्याय नाम रोग प्रगट होता है और किसी दूसरे पर किया जाता है। उपाय इसका यह है कि प्राणी संवित् संतोप शौर्य इन तीनों धर्मों को बराबर रक्खे न्यून अधिक न होने देवे और अन्य जीवों का अन्याय भी अपने समान दुःख सुख समझे और फिर इस पर अन्याय से १० रोगखड़े होजाते हैं

पर अन्याय के १० रोग ॥

कवित

नेक हू विचार नांहीं तृष्णा हू को पार नांहीं,
आर्यता को लेस नांहीं वक्रता अनीति हैं।
व्यग्रता रु दुराचार अनधिकारता की मार,
विनासी अपार और असंतुष्टि प्रीति हैं॥
वेर बेर टेर टेर संतन समाज कहे,
एते दश रोग परा न्याय के सभीति हैं।
बुध जन समाज मांझ भाखे मेघराज आज,
अते दश दोष जीते सो ही शुभ रीति हैं॥४८॥

टीका

[१) अविचार अर्थात् संवित् संतोप शौर्य न्याय इन ४ चार धर्मों से विरुद्ध वर्तना। उपाय इसका यह है कि प्राणी सर्वदा काल आत्मशुद्धि के ग्रंथों को पढ़े.

[२] तृष्णा अर्थात् अत्यंत अधिक पदार्थों की इच्छा करना। उपाय इसका यह है कि प्राणी नाना क्लेशों का मूल समझ कर इस को त्यागे.

(३] अनार्यता अर्थात् कार्य और व्यवहारों में पूरा

न उतरना किन्तु जैसे बने तैसे अपने लाभ के निमित्त अन्य पुरुषों के साथ कपट करना। उपाय इसका यह है कि प्राणी यह सोचे कि कपट कभी न कभी प्रकट होगा तो मुझे मृत्युतुल्य दुःख सहना पड़ेगा यातें कपट न करूं

(४] वक्रता अर्थात् राजा की आज्ञा और प्रबंध को न मान कर स्वइच्छाचार कोशुभ मानना सो जो विरक्त होकर जगत् को तजे उस के बिना किसी को ऐसा योग्य नहीं क्योंकि राज भय विना मन नीति में नहीं रहता.

(५) अनीति अर्थात् शक्त होकर कुमार्गी और अपराधियों को दंड देने में विलंब करना। उपाय इस का यह है कि प्राणी सोचे कि यदि मैं दुष्टों को दंड न देऊं तौ मेरा सामर्थ्य होने का फल क्या है.

(६) व्यग्रता अर्थात् काम क्रोधादि अज्ञान की अधिकता से मन का व्याकुल रहना इस को इस हेतु से अन्याय में लिखा है कि जब काम हृदय में उत्पन्न होता है तो निर्लज्जता, अनृत, अभीति, चौर्य, व्यभिचार, छल आदि अत्यंत अन्याय रूप जो हैं उदय होजाते हैं और जब क्रोध का धुआं मन में भर जाता है तो वैर, वैमनस्य, विघात, अहंकार, आदि कुकर्म जो परम अन्याय रूप हैं प्रकट होने लगजाते हैं और जब अज्ञान मन में भर जाता है तो प्राणी मानों संपूर्ण अन्यायों की मूर्ति ब[न] जाता है। उपाय इस रोग की निवृत्ति का यह है कि स[दा] महात्माओं का संग और आतम शुद्धि यथा क्रम [क]रता रहे .

[(]७) दुराचार- अर्थात् किसी ऐसे व्यवहार वा आचार [व]। क्रियादि का करना कि जिससे अन्य पुरुषों को

स्वभाव से ही दुःख प्राप्त हुआ करे । उपाय इस का य
ह है कि प्राणी इस बात को विचारे कि जगत् में सब
लोग परस्पर एक दूसरे का सहायक है. यदि मैं इसके
विरुद्ध जीवों को वृथा ही सताऊंगा तो कितना बुरा
गिना जाऊंगा.

(८) अनधिकारिता- अर्थ इसका यह है कि मृतक के धन
को अधिकारियों वा ऋणियों से छुडाकर अनधिका
रियों को बिभाग करना अथवा अधिकार से न्यून व
अधिक ओहदा देना अथवा हकदार व हिस्सेदार को
हिस्सा नहीं देना। उपाय इस का यह है कि प्राणी यह
मन में विचारे कि यदि कोई मेरा भाग किसी अन्य
को देवे तो कितना दुःख होता है उतना ही उसको हो
वेगा यह समझकर ऐसा न करे ।

[९] विनाश अर्थात् किसी का विघात करना सो
यह दो प्रकार का है

एक शारीरिक विघात किसी मनुष्य को मारना.

दूसरा मानसिक विघात अर्थात् किसी को वृथा
कलंक लगाना प्रतिष्ठा भंग करना विश्वासघात करना
विध्वंस करना मित्रविरोध कराना पदार्थ हरना निंदा
करना किसी का सुख बिगाड़ना धमकी देना किसी
के पतित्व को तोड़ना इत्यादि। उपाय इस रोग का यह
है कि प्राणी अन्य जीवों के दुःख को अपने समान जा
नकर ऐसा न करे और विघात के तीन कारण हैं. वैर,
क्रोध, अहंकार, सो इन को मन में न आने दे.

(१०) असंतुष्टि-अर्थात् वंट के वक्त अधिक वा
स्वच्छ वंट आप लेने की इच्छा करना सो ऐसा भी न

करे क्योंकि ऐसे पुरुष ठगों में गिने जाते हैं.
सो ये पूर्वोक्त दश दोष परान्याय में भयदायक
हैं और इन दश दोषों को जीते वही न्यायी है।

(कुपथ्य)

और जब कि आत्मा निरोग हो जावे तो इन बारह
कुपथ्यों से प्राणी बचता रहे ताकि फिर आत्मा विका
युक्त न होने पावे.

(छंद पद्धरि)

द्वादश कुपथ्य आतम सरोग,
तजत्ति नहिं सुजन करि करि उद्योग
मतकर कुसंग बहुधोपहास,
अरु बुरी प्रकृति को करहु नास ॥४६॥
अपने दूवश्रा मत भूल बात,
हठ हु न करो यह नेक बात॥
हानी रु लाभ बिनफल बिचार;
करिये न काज यह तत्व सार ॥५०॥
देखो सुनो न कहियो कुबात,
उत्तम निषिद्ध जिन हिय न आत ॥
जिहिं वृथा क्रोध की परी पास,
राखे जो निकट व्है मूर्ख दास ॥५१॥
मद्य मांस जुआ त्रिया बालकादि,
तज क्रोध कपट काम रु विवादि

सांसारिक जीवन संग प्रेम,
मत करो अधिकता रखो नेम ॥ ५२ ॥

[टीका]

इन बारह कुपथ्यों के सेवन से आत्मा रोगी होजाता है सो इन कुपथ्यों को तजने में यत्न करे वह कुपथ्य यह है

(१) कुसंग न करो.

(२) बहुत हंसी ठठा मत करो.

(३) खोटे स्वभाव का त्याग करो.

(४) अपने दूषण मत भूलो.

(५) हठ मत करो.

(६) हानि लाभ बिचारे विना किसी काम का आरंभ न करो.

[७] खोटी बात कहो न सुनो न देखो.

[८] उत्तम पुरुषों ने जिन क्रियाओं व काम को निषिद्ध किया उनको हृदय में न आने दो अर्थात् वर्जित प्रतिष्ठा दिल पर मत लाओ.

(९) वृथा क्रोध का स्वभाव होवे तो मूर्ख नौकर को पास रक्खो.

(१०) मद्य मांस जूआ और परस्त्री या बालकादि का संग त्याग करो.

(११) कामविवाद कपट को तजो.

(१२) सांसारिक जीवों के साथ अत्यंत प्रेम मत रक्खो

॥ स्वर्ग के लक्षण ॥

[सवैया]

राजविभूति सुसंग उदार
सुथान स्वरूप पतिव्रतनारी।
पुत्रसुपुत्र अरोग्य सुमित्र सु
बुद्धि नहीं रिण संपति सारी॥
राखत ज्ञान कवी अति चौतुर
बोलत सत्य सदा हितकारी।
मेघ भनें यह स्वर्ग निहारिये
दान विधान दया चित धारी॥ ५३॥

[टीका]

राज का ओहदा होना अच्छी संगति होना उदार होना अच्छे घर वो गांव का निवास होना आप स्वरूपवान् होवे स्त्री पतिव्रता होवे लड़का सपूत होवे और शरीर निरोग होवे दोस्त अच्छे विद्वान् होवें अच्छी बुद्धि होवे सिर पर कर्जा न होवे सर्व प्रकार की संपत्ति मौजूद होवे ज्ञानी होवे कविता करजानता होवे चतुर होवे सत्य और सब के हित करनेवाली वाणी बोले दान विधि से करे दया चित में राखे मेघराज कहता है कि ये पूर्वोक्त अठारह लक्षण जिस आत्मा में हों उसको स्वर्गनिवासी समझे अर्थात् सुख है वही स्वर्ग है सिवाय इसके स्वर्ग कोई आकाश पाताल में नहीं है

नरक के लक्षण

कवित्त

मूढ कुरूप कुबुद्धि कुसंग
कपुत्र अपुत्र रिणी मतिहीनो।

सज्जन मृत्युं अकाल में ह्वै
पुनि अंग[10] विहीन रु इंद्रि विहीनो[11] ॥
हीन सुंथान[12] रु रोगी[13] दारिद्री[14] रु
त्यूंहि विवाह[15] कुनारी सुं कीनो ।
पुत्रि अनेक[16] हुवे रु कुमित्र[17]
भने अस मेघ यह नर्क में भीनो ॥ ५१ ॥

मूर्ख कुरूप खोटी बुद्धि खोटी संगत कपूत पुत्र होवे अथवा पुत्र न होवे माथे कर्ज होवे बुद्धिहीन अर्थात् ज्ञानी न होवे सज्जन पुरुष की मृत्यु कम उमर में होवे अंग करके वा इंद्रिय करके हीन होवे और नौकरी वा घर वा अच्छे गांव का वास न होवे रोगी होवे दरिद्री होवे खोटी स्त्री होवे कन्या बहुत होवे मित्र खोटी बुद्धि के होवें मेघराज कहता है कि ऐसे लक्षण जिस आत्मा में देखो तो उसको नरक में भीगा हुआ समझो बाकी कोई नरक आस्मान वा पाताल में नहीं है इन दुःखों का नाम ही नरक है ।

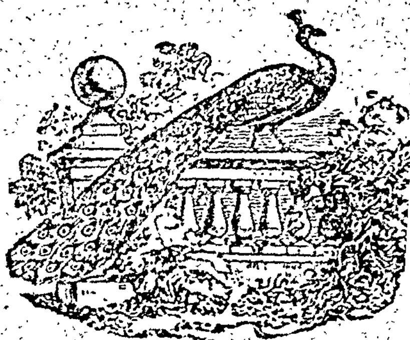
दोहा

माथुर कुल कायस्थ में, मुरलीधर सुत तास ।
मेघराज कृत ग्रंथ यह, वसहि जोधपुर वास॥५५॥
शर शर नंद सुधांशु शुभ, संवत श्रावण मास।
गुरु युत शुक्ला तीज किय,आतमशुद्धिप्रकास५६

श्री

विज्ञापन

विदित हो कि जो पुरुष आत्मशुद्धि द्वारा
में स्थिर बुद्धि रहकर संसार-यात्रा करता है उसको
पूर्ण उपासना का फल सुलभ होकर मोक्ष प्राप्त होसक
[illegible] सूक्ष्म और सुगम रीति से छंदोबद्ध देवना
री/भाषा टीका सहित मुमुक्षु पुरुषों के हितार्थ का
स्थ माथुर [illegible]हारिया मुरलीधरात्मज जोधपुर निवा
[illegible] मुलाजिम महकमे सदर अदालत फौजदारी
[illegible] पुस्तक प्रकाशित किया।



सटीकतर्कसंग्रहलक्ष्यपदानाम-
नुक्रमणिका

तर्कसंग्रहः

पण्डितवरश्रीमदन्नंभटविरचितः

गोवर्धनपण्डितकृता न्यायबोधिनी,

चन्द्रसिंहपण्डितकृतं पदकृत्यम्

इति व्याख्याद्वयेन संयुतः ।

जयपुरस्थपण्डितबदरीनाथात्मजदाधीचशि

संशोधितः

सच

खेमराज श्रीकृष्णदास

इत्यनेन

मुम्बय्याम्

स्वकीय "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रालयेऽङ्कित्वा

प्रकाशितः ।

शके १८१४ संवत् १९४९

सटीकतर्कसंग्रहलक्ष्यपदानामनुक्रमणिकेयम्.

अनुक्रमणिका.

इति अनुक्रमणिका समाप्ता ।

श्रीः ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



(तर्कसंग्रहः)

निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवन्दनम् ।
बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः ॥ १ ॥

(न्यायबोधिनी)

निखिलागमसंचारि श्रीकृष्णाख्यं परं महः ।
ध्यात्वा गोवर्धनसुधीस्तनुते न्यायबोधिनीम् ॥ १ ॥

चिकीर्षितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थमिष्टदेवतानमस्कारात्मकं मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं ग्रन्थतो निबध्नाति— निधायेति ॥

(पदकृत्यम्)

श्रीगणेशं नमस्कृत्य पार्वतीशंकरं परम् ।
मया चन्द्रजसिंहेन क्रियते पदकृत्यकम् ॥ १ ॥

विश्वेशं जगत्कर्तारं श्रीसाम्बमूर्तिं हृदि मनसि निधाय नितरां धारयित्वा गुरुवन्दनं च विधाय कृत्वा—इत्यर्थः ॥ बालेति ॥ अत्राधीतव्याकरणकाव्यकोशोऽनधीतन्यायशास्त्रो बालः । व्यासादावतिव्याप्तिवारणाय—'अनधीतन्याय—' इति ॥ स्तनंधयेऽतिप्रसक्तिर्वारणाय— 'अधीतव्याकरण—' इति ॥

"यस्मादिदमहं मन्ये बालानामुपकारकम् ।
तस्माद्धितकरं वाक्यं प्रवक्तव्यं सतां सदा" ॥

सुखेति ॥ सुखेनानायासेन बोधाय 'पदार्थतत्त्वज्ञानाय' इत्यर्थः ॥ तर्क्यन्ते प्रमितिविषयीक्रियन्ते' इति तर्का द्रव्यादिसप्तपदार्थाः, तेषां संग्रहः संक्षेपेणोद्देशलक्षणपरीक्षा यस्मिन् स ग्रन्थः॥नाममात्रेण वस्तुसंकी-

पाठान्तराणि १ अखिला. २ ये ३ कुत्रचिन्नास्ति. ४ कोशानधीत. ५ निवारणाय. ६ सद्भिः ७ सप्तपदं नास्ति.

तैनम् उद्देशः । यथा—'द्रव्यगुण—' इति ॥ असाधारणधर्मो लक्षणम् । यथा–गन्धवत्त्वं पृथिव्याः ।' लक्षितस्य लक्षणं संभवति न वा' इति विचारः परीक्षा ॥ 'अत्रोद्देशस्य पक्षज्ञानं फलम् लक्षणस्य इतरभेदज्ञानम्॥ परीक्षाया लक्षणदोषपरिहारः –' इति मन्तव्यम् ॥

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्तैव पदार्थाः ।

(न्याय०) अथ पदार्थान् विभजते—'द्रव्य—' इति ॥अत्र सप्तग्रहणं 'पदार्थत्वं द्रव्याद्यन्यतमत्वव्याप्यम् 'इति व्याप्तिलाभाय ॥ ननु "शक्तिपदार्थस्याष्टमस्य विद्यमानत्वात् कथं'सप्तैव' इति ॥ तथाहि–वह्निसंयुक्तेन्धनादौ सत्यपि मणिसंयोगे दाहो न जायते, तच्छून्ये जायते ॥ अतो 'मणिसमवधाने शक्तिर्नश्यति, मण्यभावदशायां दाहानुकूलाशक्तिरुत्पद्यते ' इति कल्प्यते ॥ तस्माच्छक्तिरतिरिक्तः पदार्थः" इति चेत् ॥ न ॥ मणेः प्रतिबन्धकत्वेन तदभावस्य कारणत्वेनैव निर्वाहे मणिसमवधानासमवधानाभ्यामनन्तशक्तिध्वंसकल्पनाया अन्याय्यत्वात् ॥ तस्मात् 'सप्तैव पदार्था'इति ॥

तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव ।

(न्याय०)द्रव्याणि विभजते— 'पृथिवी—'इति॥ननु"अन्धकारस्य दशमद्रव्यस्य सत्त्वात् कथं 'नवैव ' इति ॥ तथा हि—'नीलं तमश्चलति' इति प्रतीतेर्नीलरूपाश्रयत्वेन क्रियाश्रयत्वेन च द्रव्यत्वं सिद्धम् । न च ' सप्तद्रव्येष्वन्तर्भावात्कुतो दशमद्रव्यत्वम् ' इति वाच्यम् ॥ आकाशादिपञ्चकस्य नीरूपत्वात्तमसो नीलरूपत्वाद्वाय्योरपि नीरूपत्वान्न तेष्वन्तर्भावः, तमसो निर्गन्धत्वान्न पृथिव्यामन्तर्भावः संभवति, जलतेजसोः शीतोष्णस्पर्शवत्त्वान्न तयोरन्तर्भावः ॥ तस्मात्तमसो दशमद्रव्यत्वं सिद्धम्"इति चेत्॥ न ॥ तेजसोऽभावेनैवोपपत्तावतिरिक्तकल्पनायां मानाभावात् ॥ नच"विनिगमनाविरहात्तेज एवान्धकारा-

---

१ सत्त्वात्. २ मण्यादिसंयुक्तेन्धनादौ सत्यपि वह्निसंयोगे. ३ शून्ये तु. ४ धाने दाहानुकूलाश. ५ दाहं प्रति मणेः. प्र- ६ इति सिद्धम्. ७ विद्यमानत्वात्. ८ वायोश्चापि. ९ त्वात्पृथिव्या गन्धवत्त्वान्न.

भावस्वरूपम् " इति वाच्यम् ॥ तेजसोऽभावस्वरूपत्वे सर्वानुभूतोष्ण-स्पर्शस्याश्रयत्वबाधात् ॥ द्रव्यान्तरकल्पने गौरवात् ॥ तस्मादुष्णस्पर्श-गुणाश्रयतया तेजसो द्रव्यत्वं सिद्धम् । तमसि नीलरूपप्रतीतिस्तु भ्रा-न्तिरेव दीपापसरणक्रियाया एव तत्र भानात् ॥

(पदकृत्य०) तत्रेति ॥ तत्र ' सप्तपदार्थमध्ये ' इत्यर्थः ॥ द्रव्याणि नवैव इत्यन्वयः ॥ एवं ' तत्र ' इति पदं ' चतुर्विंशतिगुणाः ' इत्यादिष्वप्यन्वेति ॥ द्रव्यत्वजातिमत्त्वं गुणवत्त्वं समवायिकारणत्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम् ॥

रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपर-त्वापरत्वगुरुत्वस्नेहशब्दबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माध-र्मसंस्काराश्चतुर्विंशतिगुणाः ॥

उत्क्षेपणापक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनानि पञ्च कर्माणि ॥

परमपरं चेति द्विविधं सामान्यम् ॥

(पद०)परमपरं चेति ॥ परसामान्यम्, अपरसामान्यम् इत्यर्थः ॥ परत्वं चाधिकदेशवृत्तित्वम् ॥ अपरत्वं च न्यूनदेशवृत्तित्वम् ॥

नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव ॥ समवायस्त्वेक एव ॥

अभावश्चतुर्विधः । प्रागभावः प्रध्वंसाभावोऽत्यन्ताभावो-ऽन्योन्याभावश्चेति ॥

गन्धवती पृथिवी । सा द्विधा—नित्याऽनित्या च । नि-त्या परमाणुरुपा ।अनित्या कार्यरूपा । पुनस्त्रिविधा—श-रीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरमस्मदादीनाम् । इन्द्रियं ग-न्धग्राहकं घ्राणं नासाग्रवर्ति । विषयो मृत्पाषाणादिः ॥

(न्यायबो०) गन्धवतीति ॥ गन्धवत्त्वं पृथिव्या लक्षणम् ॥ लक्ष्या पृ-

---

१ आश्रयीभूतद्रव्यान्तर. २ नीलत्वादिप्र. ३ आधारस्थनीलरूपस्य दीपाप, आधारस्थदीपा ४ गन्धवत्त्वं गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं पृ.

थिवी ॥ पृथिवीत्वं लक्ष्यतावच्छेदकम् ॥ यद्धर्मावच्छिन्नं लक्ष्यं,स धर्मो लक्ष्यतावच्छेदकः ॥ यो धर्मो यस्यां अवच्छेदकः सो तद्धर्मावच्छिन्नो ॥ तथा च लक्ष्यतावच्छेदकं पृथिवीत्वं चेल्लक्ष्यता पृथिवीत्वावच्छिन्ना ॥ एवं शीतस्पर्शवत्त्वादिलक्षणेषु जलत्वादीनां लक्ष्यतावच्छेकत्वं बोध्यम्॥

(पद०) तदेव हि लक्षणम्, यदव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवरूपदोषत्रयशून्यम् ॥ यथा गोः सास्नादिमत्त्वम् ॥ अव्याप्तिश्च लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम् ॥ अत एव गोर्न कपिलत्वं लक्षणम्, तस्याव्याप्तिग्रस्तत्वात् ॥ अतिव्याप्तिश्च लक्ष्यवृत्तित्वे सत्यलक्ष्यवृत्तित्वम् ॥ अत एव गोर्न शृङ्गित्वं लक्षणम्, तस्यातिव्याप्तिग्रस्तत्वात् ॥ असंभवश्च लक्ष्यमात्रावृत्तित्वम् ॥ अत एव गोरेकशफवत्त्वं न लक्षणम्, तस्यासंभवग्रस्तत्वात् ॥ नित्येति ॥ ध्वंसाभिन्नत्वे सति ध्वंसाप्रतियोगित्वं नित्यत्वम्॥ ध्वंसे ऽतिव्याप्तिवारणाय ' ध्वंसभिन्नं- ' इत्यादि ॥ घटादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम्॥ ध्वंसप्रतियोगित्वं प्रागभावप्रतियोगित्वं वा ऽनित्यत्वम् ॥ यद्भोगायतनं तदेव शरीरम्, चेष्टाश्रयो वा ॥ इन्द्रियमिति ॥ चक्षुरादावतिव्याप्तिवारणाय ' गन्धग्राहकम् ' इति ॥ कालादावतिप्रसक्तिवारणाय ' इन्द्रियम् ' इति ॥ विषय इति॥ शरीरेन्द्रियभिन्नत्वे सत्युपभोगसाधनं विषयः॥ शरीरादावतिव्याप्तिनिरासाय भिन्नान्तम् ॥ परमाण्वादावतिप्रसक्तिवारणाय विशेष्यदलम् ॥ कालादिवारणाय ' जन्यत्वे सति ' इत्येतदपि बोध्यम् ॥

शीतस्पर्शवत्य आपः । ता द्विविधाः—नित्या अनित्याश्च । नित्याः परमाणुरूपाः अनित्याः कार्यरूपाः । पुनस्त्रिविधाः— शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरं वरुणलोके। इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति । विषयः सरित्समुद्रादिः ॥

(पद०)शीतेति तेजआदावतिव्याप्तिवारणाय 'शीत' इति ॥ आकांक्षावारणाय ' स्पर्श ' इति ॥ कालादावतिप्रसक्तिवारणाय ' समवायसंबन्धेन ' इति पदं देयम् ॥ इन्द्रियमिति ॥ त्वगादावतिव्याप्तिवारणाय 'रसग्राहकम् ' इति॥

---

१ यस्य २ स ३ न्नः ४ णेषु जलादीनां लक्ष्यता जलत्वादीनां लक्ष्यतोवच्छेदकत्वंच ५ तत एव ६ यथा. ७ ध्वंसभिन्नेति विशेषणम् ८ सत्यन्तम

रसनेन्द्रियरससंनिकर्षादावतिव्याप्तिनिरासाय ' इन्द्रियम् ' इति ॥ सरिदिति॥ आदिनातडागहिमकरकादीनां संग्रहः ॥

उष्णस्पर्शवत्तेजः । तद्विविधम्—नित्यमनित्यं च । नित्यं परमाणुरूपम् । अनित्यं कार्यरूपम् । पुनस्त्रिविधम्—शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरमादित्यलोके । इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णताराग्रवर्ति । विषयश्च चतुर्विधः—भौमदिव्योदर्याकरजभेदात् । भौमं वह्न्यादिकम् । अविन्धनं दिव्यं विद्युदादि । भुक्तस्य परिणामहेतुरुदर्यम् । आकरजं सुवर्णादि ॥

(पदकृ०) उष्णेति ॥ जलादावतिव्याप्तिवारणाय ' उष्ण' इति ॥ का-दावतिव्याप्तिवारणाय ' समवायसंबन्धेन' इति पदं देयम् ॥ इन्द्रियमिति ॥ णादावतिव्याप्तिवारणाय ' रूपग्राहकम् ' इति ॥ कालादावतिव्याप्तिनिरा-य ' इन्द्रियम् ' इति ॥ 'भेदात्' इतिपदं प्रत्येकमभिसंबध्यते ॥ भौममिति॥ ादिपदेन खद्योतगततेजःप्रभृतिपरिग्रहः ॥ विद्युदिति ॥ आदिना रविचन्द्रादि-रिग्रहः ॥ भुक्तेति॥ भुक्तस्यान्नादेः परिणामो जीर्णता तस्य हेतुरुदर्यम्, इत्यर्थः सुवर्णेति ॥ आदिना रजतादेः परिग्रहः ॥

रूपरहितस्पर्शवान् वायुः । स द्विविधः—नित्योऽनित्यश्च । नित्यः परमाणुरूपः । अनित्यः कार्यरूपः । पुनस्त्रिविधः—शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरं वायुलोके । इन्द्रियं स्पर्शग्राहकं त्वक् सर्वशरीरवृत्ति । विषयो वृक्षादिकम्पनहेतुः शरीरान्तः संचारी वायुः प्राणः । स चैकोऽप्युपाधिभेदात्प्राणापानादिसंज्ञां लभते

(न्यायबो०) एवं पृथिव्यादित्रिकं[3] निरूप्य वायुं निरूपयति—रूपरहितेति ॥ रूपरहितत्वे सति स्पर्शवत्त्वं वायोर्लक्षणम् ॥ सतिसप्तम्या

१ निरासाय. २ तेः ३ दिकं.

विशिष्टार्थतया रूपरहितत्वविशिष्टस्पर्शवत्त्वं वायोर्लक्षणम् ॥ विशेषणानुपादाने स्पर्शवत्त्वमात्रस्य लक्षणत्वे पृथिव्यादित्रिके ऽतिव्याप्तिः, तद्वारणाय विशेषणोपादानम् ॥ तावन्मात्रे कृते आकाशादावतिव्याप्तिः, तत्रापि रूपरहितत्वस्य सत्त्वात् अतउक्तं 'स्पर्श—' इति ॥ अतिव्याप्तिर्नाम अलक्ष्ये लक्षणसत्त्वम्। यथा गोः शृङ्गित्वं लक्षणं कृतं चेत् लक्ष्यभूतगोभिन्नमहिष्यादावतिव्याप्तिः, तत्रापि शृङ्गित्वस्य विद्यमानत्वात् ॥ अव्याप्तिर्नाम लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम् ॥ यथागोर्नीलरूपवत्त्वं लक्षणं कृतं चेत् ॥ (लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वं नाम 'लक्ष्यतावच्छेदकाश्रयभूते क्वचिल्लक्ष्ये लक्षणस्याभावोऽसत्त्वमेवाव्याप्तिः' इत्यर्थः) श्वेतगवि(वे) नीलरूपत्वस्याभावात् (अव्याप्तिः) ॥ असंभवो नाम लक्ष्यमात्रे कुत्रापि लक्षणासत्वम्॥ यथा—गोरेकशफवत्त्वम् गोसामान्ये द्विशफवत्त्वेन एकशफवत्त्वाभात्॥ अतिव्याप्त्यव्याप्त्यसंभवानां (प्रत्येकम्) निष्कृष्टलक्षणं च 'लक्ष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्ये सति लक्षतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदसामानाधिकरण्यम्' अतिव्यप्तिः॥अव्याप्तिस्तु 'लक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वम्' ॥ असंभवस्तु 'लक्ष्यतावच्छेदकव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वम्' (इति) ॥

(पदकृ०) रूपेति ॥ घटादिवारणाय विशेषणम् । आकाशादिवारणाय विशेष्यम् ॥ इन्द्रियमिति ॥ चक्षुरादिवारणाय 'स्पर्शग्राहकम्' इति॥ कालादिवारणाय 'इन्द्रियम्' इति॥वृक्षेति । आदिपदेन जलादीनां परिग्रहः॥ शरीरेति॥ महावायुवारणाय विशेषणं मनआदिवारणाय विशेष्यम् । धनंजयवारणाय संचारी इति ॥ उपाधीति ॥ 'मुखनासिकाभ्यां निर्गमनप्रवेशनात् प्राणः ॥ जलादेरधोनयनाद् अपानः॥भुक्तपरिणामाय जाठरानलस्य समुन्नयनात् समानः अन्नादेरूर्ध्वनयनाद् उदानः नाडीमुखेषु वितननाद् व्यानः इति क्रियारूपोपाधिभेदात्तथा व्यवह्रियते इत्यर्थः ॥

---

१ ष्टार्थकतया. २ इतःप्रभृति पाठान्तरभिदम् 'गोर्नीलरूपवत्त्वं लक्षणं कृत चेल्लक्ष्यैकदेशे लक्ष्यतावच्छेदकाश्रयीभूतक्वचिल्लक्ष्ये लक्षणासत्त्वमव्याप्तिरित्यर्थः श्वेतगवि. ३ इयंपङ्क्तिष्टिप्पणभूता केनचिट्टीकामध्ये प्रक्षिप्तेति भाति. ४ वत्त्वस्य कुत्राप्यसत्त्वात् ५ तु ६ समानाधिकरणत्वे ७. संचारीति.

शब्दगुणकमाकाशम् । तच्चैकं विभु नित्यं च ॥

(न्यायबो०) आकाशं लक्षयति—'शब्दगुणकम्' इति ॥ अत्र गुणपदम् 'आकाशे शब्द एव विशेषगुणः' इति द्योतनाय ॥ न त्वतिव्याप्तिवारणाय, समवायेन शब्दवत्त्वमात्रस्य लक्षणत्वात् ॥ तदुक्तम्—

"रूपं गन्धो रसः स्पर्शः स्नेहः सांसिद्धिको द्रवः ।

बुद्ध्यादि भावनान्ताश्च शब्दो वैशेषिका गुणाः ॥" इति ॥

तच्चैकमिति ॥ अनेकत्वे मानाभावादिति । विभ्विति ॥ सर्वमूर्तसंयोगित्वं विभुत्वम् ॥ मूर्तत्वं च क्रियाश्रयत्वम् ॥ पृथ्व्यप्तेजोवायुमनांसि मूर्तानि । पृथ्व्यप्तेजोवाय्वाकाशपञ्चकं भूतपदवाच्यम् । भूतत्वं नाम बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वम् ॥

(पदकृ०) शब्देति ॥ शब्दो गुणो यस्य तत्तथा ॥ असंभववारणाय शब्दपदमुन्नेयम् ॥ विभ्विति ॥ सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वम् ॥

अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः । स चैको विभुर्नित्यश्च ॥

(न्यायबो०)कालं लक्षयति—अतीतेति ॥ व्यवहारहेतुत्वस्य लक्षणत्वे 'घटः' इति व्यवहारहेतुभूतघटादावतिव्याप्तिवारणाय 'अतीतादि' इति विशेषणोपादानम् ॥

(पदकृ०) अतीतेति ॥ अतीत आदिर्यो व्यवहारः 'अतीतःभविष्यन्वर्तमान' इत्यात्मकः, तस्यासाधारणहेतुः काल इत्यर्थः ॥ 'नन्विदं लक्षणम् आकाशेऽतिव्याप्तं व्यवहारस्य शब्दात्मकत्वात् 'इति चेत् न अत्र हेतुपदेन निमित्तहेतोर्विवक्षितत्वात्' नचैवमपि कण्ठताल्वाद्यभिघातेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यम् ॥ विभुत्वस्यापि निवेशात् ॥

'प्राच्यादिव्यवहारहेतु'र्दिक्'। सा चैका नित्या विभ्वी च ॥

(न्यायबो०) दिशो लक्षणमाह—प्राचीति ॥ उदयाचलसंयुक्ता दिक् प्राची ॥ अस्ताचलसंयुक्ता दिक् प्रतीची ॥ मेरोः संनिहिता दिग् उदीची—मेरोर्व्यवहिता दिग् दक्षिणा ॥

---

१ सम्यक्त्वात् २ पृथिव्य ३ शब्दगुणोभयम् ४ व्याप्तिस्तद.

(पदकृ०) प्राच्येति ॥ 'इयं प्राची' इयं प्रतीची, 'इयमुदीची' इत्यादिव्यवहारासाधारणं (कारणं) दिगित्यर्थः ॥ 'हेतुर्दिक्'इत्युच्यमाने परमाण्वादावतिव्याप्तिः स्यात् 'तद्वारणाय, व्यवहारहेतुः' इति ॥ आकाशादिवारणाय 'असाधारण,इत्यपि बोध्यम् ॥

ज्ञानाधिकरणमात्मा । स द्विविधः——परमात्मा जीवात्मा चेति तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव। जीवः प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च॥

(न्यायबो०) आत्मानं निरूपयति–ज्ञानाधिकरणमिति॥ अत्राधिकरणपदं समवायेन ज्ञानलाभार्थम् ॥

(पदकृ०) ज्ञानाधिकरणेति ॥ भूतलादिवारणाय 'ज्ञान' इति ॥ कालादिवारणाय 'समवायेन' इत्यपि देयम् ॥ ईश्वर इति ॥ समवायसंबन्धेन नित्यज्ञानवान् ईश्वरः ॥ जीवेति ॥ सुखादिसमवायिकारणं जीवः ॥

सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः । तच्च प्रत्यात्मनियतत्वादनन्तं परमाणुरूपं नित्यं च ॥

(न्यायबो०) मनो निरूपयति-सुखादीति ॥ उपलब्धिर्नाम साक्षात्कारः ॥ तथा च 'सुखादिसाक्षात्कारकारणत्वे सतीन्द्रियत्वं मनसो लक्षणम् ॥ इन्द्रियत्वमात्रोक्तौ चक्षुरादावतिव्याप्तिः, अतः पूर्वदलम् ॥ विशेष्यानुपादाने आत्मन्यतिव्याप्तिः ,आत्मनो ज्ञानादिकंप्रति समवायिकारणत्वात् अत इन्द्रियत्वरूपविशेष्योपादानम् ॥

(पदकृ०) सुखेति ॥ आत्ममनःसंयोगादिवारणाय 'इन्द्रियम्' इति ॥ चक्षुरादिवारणाय 'सुख' इति ॥

चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम् । तच्च शुक्लनीलपीतहरितरक्तकपिशचित्रभेदात्सप्तविधम् । पृथ्वीजलतेजोवृत्ति । तत्र पृथ्व्यां सप्तविधम् । अभास्वरशुक्लं जले भास्वरशुक्लं तेजसि ।

---

१ अत्रेति नास्ति २ लक्षणं लब्धम् ३ नः सुखादिकं प्रति ४ अत आत्मन्यतिव्याप्तिवारणाय इन्द्रियत्वविशेष्यो. ५ पृथिवीजलतेजो

(न्यायबो०) रूपं लक्षयति चक्षुर्मात्रेति चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वविशिष्टगुणत्ववत्त्वं रूपस्य लक्षणम्॥ विशेष्यमात्रोपादाने रसादावतिव्याप्तिः, अतः 'चक्षुर्मात्रग्राह्यः' इति विशेषणम्॥ तावन्मात्रोपादाने रूपत्वे ऽतिव्याप्तिः 'यो गुणो यदिन्द्रियेण गृह्यते-तन्निष्ठा जातिरपि तदिन्द्रियेण गृह्यते' अतस्तद्वारणाय विशेष्योपादानम् ॥ चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वं नाम चक्षुर्भिन्नेन्द्रियाग्राह्यत्वे सति चक्षुर्ग्राह्यत्वम्॥ मात्रपदानुपादाने संख्यादिसामान्यगुणे ऽतिव्याप्तिः , संख्यादावपि चक्षुर्ग्राह्य(त्व) विशिष्टगुण(त्व)स्य सत्त्वात् अतस्तत्रातिव्याप्तिवारणाय मात्रपदम्॥ संख्यादेश्चक्षुर्भिन्नत्वग्ग्राह्यत्वाच्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वं नास्ति ॥ अत्र लक्षणे ग्राह्यत्वं नाम लौकिकप्रत्यक्षविषयत्वम् ॥ अग्राह्यत्वं नाम तदविषयत्वम् ॥ तथा च 'चक्षुर्भिन्नेन्द्रियजन्य(लौकिक)साक्षात्काराविषयत्वे सति चक्षुर्जन्यचाक्षुषविषयत्वम्' इति फलितोऽर्थः ॥ ननु 'प्रभाघटसंयोगे रूपलक्षणस्यातिव्याप्तिः तस्य चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वात्' इति चेत् ॥ न गुणपदस्य विशेषगुणमात्रपरत्वात् नचैवं विशेषगुणघटितलक्षणे संख्यादावतिव्याप्त्यभावान्मात्रपदवैयर्थ्यम्' इति वाच्यम् ॥ जलमात्रवृत्तिसांसिद्धिकद्रवत्वादावतिव्याप्तिवारणाय तदुपादानात् ॥ अथवा चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमद्गुण (त्व) स्य लक्षणत्वान्न प्रभाघटसंयोगादावतिव्याप्तिः, संयोगत्वजातेश्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वाभावात् ॥ घटसंयोगस्य त्वगिन्द्रियग्राह्यत्वेवत्तद्गतजातेरपि त्वगिन्द्रियग्राह्यत्वात् यो गुणो यदिन्द्रियग्राह्यः, तन्निष्ठजातेरपि तदिन्द्रियग्राह्यत्वात् ॥ अत्र जातिघटितलक्षणे गुणत्वानुपादाने चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमति सुवर्णादावतिव्याप्तिः तद्वारणाय तदुपादानम् ॥ एवं रसादिलक्षणे विशेषणानुपादाने लक्ष्यभिन्नगुणे ऽतिव्याप्तिः विशेष्यानुपादाने लक्ष्यमात्रवृत्तिरसत्वगन्धत्वादावतिव्याप्तिः, अतो विशेषणविशेष्ययोरुपादानम् ॥

(पदकृ०) चक्षुर्मात्रेति ॥ रूपत्वादिवारणाय गुणपदम् ॥ रसादिवारणाय

---

१ वत्त्वमिति कुत्रचिन्न, २ग्राह्यत्वविशे ३ननु तथापि ४ ग्राह्यगुणत्वात्, ग्राह्यत्वविशिष्टगुणत्वात् ५ मात्रपदं नास्ति ६ ग्राह्यत्वात्तद्र ७ गुणादान ८ गन्धत्वप दंनास्ति ९ प्योभयोपादानम्

'चक्षुर्ग्राह्य' इति । संख्यादिवारणाय मात्रपदम् ॥ यद्यपि प्रभाभित्तिसंयोगवारणाय गुणपदेन विशेषगुणत्वस्य विवक्षणीयतया तत एव संख्यादिवारणे संभवति मात्रपदं व्यर्थम्, तथापि सांसिद्धिकद्रवत्ववारणाय तदावश्यकम् ॥ वस्तुतस्तु परमाणुरूपेऽव्याप्तिवारणाय चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमत्त्वस्य विवक्षणीयतया विशेषपदं न देयम् । त्र्यणुकादिवारणाय गुणपदं तु देयम् ॥ सप्तेति ॥ 'रूपम्' इत्यनुषज्यते ॥

रसनाग्राह्यो गुणो रसः । स च मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्तभेदात्षड्विधः ।पृथिवीजलवृत्तिः । तत्र पृथिव्यां षड्विधः । जले मधुर एव ॥

(पदकृ०) रसनेति ॥ रसत्वादिवारणाय 'गुणः' इति ॥ रूपादिवारणाय 'रसन' इति ॥ तत्रेति ॥ पृथिवीजलयोः इत्यर्थः ॥ षड्विधइति ॥ अत्र 'रस'इत्यनुवर्तते ॥

घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः । स द्विविधः— सुरभिरसुरभिश्च पृथिवीमात्रवृत्तिः ॥

(पदकृ०) घ्राणेति॥गन्धत्वादावतिव्याप्तिवारणाय'गुणः' इति॥रूपादावतिव्याप्तिवारणाय 'घ्राणग्राह्यः' इति ॥ पृथिवीति ॥ 'गन्धप्रतीतिसत्त्वे पृथिवीसमवेतसत्त्वम् पृथिवीसंबन्धाभावे गन्धप्रतीत्यभावः' इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां पृथिवीगन्धस्यैव प्रतीतिर्जले बोध्या ननु "देशान्तरस्थकस्तूरीकुसुमसंबन्धिपवनस्यैतद्देशे संबन्धाभावाद्गन्धप्रतीत्यनुपपत्तिः ॥नच 'वाय्वानीतत्र्यणुकादिसंबन्धोऽस्त्येव' इति वाच्यम् ॥ कस्तूर्या न्यूनतापत्तेः कुसुमस्य सच्छिद्रत्वापत्तेः" । इति चेत् ॥ न ॥ भोक्त्रदृष्टविशेषेण पूर्ववत्त्र्यणुकान्तराद्युत्पत्तिः ॥ कर्पूरादौ तु तदभावान्न तथा ॥

---

१ त्वेति नास्ति २ रूपादावतिव्याप्तिवारणाय ३ संबद्धासंयोगस्याव्याप्यवृत्तित्वादिति बोध्यम्,

त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः । स त्रिविधः—शीतोष्णानुष्णाशीतभेदात् । पृथिव्यप्तेजोवायुवृत्तिः । तत्र शीतो जले । उष्णस्तेजसि । अनुष्णाशीतः पृथिवीवाय्वोः ॥

(न्यायबो०) स्पर्शं लक्षयति—त्वगिन्द्रियेति ॥ अत्रापि मात्रपदं संख्यादिसामान्यगुणादावतिव्याप्तिवारणाय ॥अन्याविशेषणकृत्यं पूर्ववद्बोध्यम्। ग्राह्यत्वपदार्थो ऽपि पूर्ववदेव॥प्रत्यक्षविषयत्वरूप एव बोध्यः॥

(पदकृ०) त्वगिति ॥ स्पर्शत्वादावतिव्याप्तिवारणाय 'गुणः' इति ॥ रूपादावतिव्याप्तिवारणाय 'त्वगिन्द्रिय—' इति ॥ संख्यादिवारणाय मात्रपदम् ॥ तत्रेति ॥ पृथिव्यादिचतुष्टये ॥ शीत इति ॥ शीतस्पर्शः ॥ उष्ण इति ॥ उष्णस्पर्शः ॥

रूपादिचतुष्टयं पृथिव्यां पाकजमनित्यं च । अन्यत्रापाकजं नित्यमनित्यं च । नित्यगतं नित्यम् । अनित्यगतमनित्यम्॥

(न्यायबो०) रूपादीति ॥एतत्तत्त्वनिर्णयश्चेत्थम् पाको नाम विजातीयतेजःसंयोगः॥ स च नानाजातीयरूपजनको विजातीयतेजःसंयोगः ॥ तदपेक्षया रसजनको विजातीयः॥ एवं गन्धजनकोऽपि विजातीयः ॥ एवं स्पर्शेऽपि तथैव एवंप्रकारेण भिन्नभिन्नजातीयाः पाकाः कार्यवैलक्षण्येन कल्पनीयाः॥यथा तृणपुञ्जनिक्षिप्त आम्रादावूष्मलक्षणविजातीयतेजःसंयोगात्तु पूर्वहरिरूपनाशेन रूपान्तरस्य पीतत्वादेरुत्पत्तिः, न तु रसादेरुत्पत्तिः॥पूर्वरसस्यैवाम्लस्यानुभवात् ॥ क्वचित्पूर्वहरितरूपस्य सत्त्वेऽपि रसपरावृत्तिर्दृश्यते, रसविजातीयतेजःसंयोगरूपपाकवशात्पूर्वतनाम्लरसनाशेन मधुररसस्यानुभवात् ॥ तस्मात्तद्रूपजनकापेक्षया रसजनको विलक्षण एव ॥ एवं गन्धजनकोऽपि विलक्षण एवाङ्गीकार्यः,रूपरसयोरपरावृत्तावपि पूर्वगन्धनाशेऽपि विजातीयपाकवशात्सुरभिगन्धोपलब्धेः ॥ एवं स्पर्शेऽपि पाकवशात्काठिनस्पर्शनाशेन मृदुस्पर्शानुभवात् ॥ तस्माद्रूपादिजनकविजातीयपाकाः ॥ अत एव पार्थिवपर-

माणूनामेकजातीयत्वेऽपि पाकमहिम्नाविजातीयद्रव्यान्तरानुभवः ॥ यथा गोभुक्ततृणादीनामापरमाण्वन्तभङ्गे तृणारम्भकपरमाणुषु विजातीयतेजःसंयोगात् पूर्वरूपादिचतुष्टयनाशे तदनन्तरं दुग्धे यादृशं रूपादिकं[1] वर्तते तादृशरूपरसगन्धस्पर्शजनकास्तेजःसंयोगा जायन्ते, तदुत्तरं तैरेव तादृशरूपरसादय उत्पद्यन्ते ॥ एतादृशरूपरसादिविशिष्टपरमाणुभिर्दुग्धद्व्यणुकमारभ्यते, ततस्त्र्यणुकादिक्रमेणदुग्धारम्भः[2] इति ॥ एवं दुग्धारम्भकैः परमाणुभिरेव दध्यारभ्यते पाकमहिम्ना ॥ एवं दध्यारम्भकैरेव परमाणुभिर्नवनीतारम्भः[3] इति दिक् ॥

एकत्वादिव्यवहारहेतुः संख्या । नवद्रव्यवृत्तिः । एकत्वादिपरार्धपर्यन्ता ।एकत्वं नित्यमनित्यं च । नित्यगतं नित्यम् । अनित्यगतमनित्यम् । द्वित्वादिकं तु सर्वत्रानित्यमेव ॥

(पदकृ०) एकादीति । 'एकत्वम्' इत्यादिर्यो व्यवहारः 'एकः द्वौ' इत्याद्यात्मकः । तस्य हेतुः संख्या, इत्यर्थः ॥ पटादिवारणाय 'एकादि' इति ॥ तथा च—

"एकं दश शतं चैव सहस्रमयुतं तथा ॥
लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥
वृन्दं खर्वो निखर्वश्च शङ्खं पद्मश्च सागरः ।
अन्त्यं मध्यं परार्धं च दशवृद्ध्या यथाक्रमम् ॥

इति महदुक्तेः परार्धपर्यन्तैव संख्या, इति भावः ॥

मानव्यवहारासाधारणकारणं परिमाणम् । नवद्रव्यवृत्ति । तच्चतुर्विधम्—अणु महद्दीर्घं ह्रस्वं चेति॥

(पदकृ०) मानेति ॥ 'मानं परिमितिः' तस्य यो व्यवहारः 'इदमणु' 'इदं महत्' इत्याद्यात्मकः, तस्य कारणं परिमाणम्' इत्यर्थः ॥ दण्डादिवारणाय 'मान' इति ॥ कालादिवारणाय 'असाधारणं' इति ॥ शब्दत्ववारणाय 'कारणम्' इति ॥ नवद्रव्येति ॥ चतुर्विधमपि परममध्यमभेदेन द्वि-

---

१ रूपरसादिकम्; २ महाद्रुग्धारम्भः ३ तादिकमिति

विधम् ॥ तत्र परमाणुत्वह्रस्वत्वे च परमाणुमनसोः ॥ मध्यमाणुत्वह्रस्वत्वे द्व्यणुके ॥ परममहत्त्वदीर्घत्वे गगनादौ ॥ मध्यममहत्त्वदीर्घत्वे घटादौ ॥ 'एतन्मौक्तिकादेतन्मौक्तिकमणु' इति व्यवहारस्य निकृष्टमहत्त्वाद्गौणत्वं बोध्यम् ॥ एवमेव 'केतनाद्व्यजनं ह्रस्वम्' इत्यत्रापि निकृष्टदीर्घत्वाद्गौणत्वम् ॥

पृथग्व्यवहारासाधारणकारणं पृथक्त्वम् । सर्वद्रव्यवृत्ति ॥

(पदकृ०) पृथगिति ॥ 'अयमस्मात्पृथक्' इति यो व्यवहारः तस्य कारणं पृथक्त्वम्, इत्यर्थः ॥ दण्डादिवारणाय 'पृथक्–' इत्यादि ॥ कालादिवारणाय 'असाधारणं–' इति ॥ पृथग्व्यवहारत्ववारणाय 'कारणम्' इति ॥

संयुक्तव्यवहारहेतुः संयोगः । नवद्रव्यवृत्तिः ।

(पदकृ०) संयुक्तेति ॥ 'इमौ संयुक्तौ' इति यो व्यवहारस्तस्य हेतुः संयोगः, इत्यर्थः ॥ दण्डादिवारणाय 'संयुक्तव्यवहार' इति ॥ कालादिवारणाय 'असाधारण' इत्यपि देयम् । संयुक्तव्यवहारत्वे ऽतिव्याप्तिवारणाय 'हेतुः' इति ॥ उपदर्शितलक्षणचतुष्टये 'असाधारण' पदं देयम् ॥ क्वचित्पुस्तके परिमाणपृथक्त्वलक्षणे 'असाधारण' पदं दृश्यते, 'तत्त्वाधुनिकैर्न्यस्तम्' इति बोध्यम् ॥

संयोगनाशको गुणो विभागः । नवद्रव्यवृत्तिः ।

(न्याय०) विभागं लक्षयति–संयोगेति ॥ संयोगनाशकत्वविशिष्टगुणत्वं विभागस्य लक्षणम् ॥ विशेषणमात्रोपादाने क्रियाया अपि संयोगनाशकत्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणाय गुणत्वविशेषणम् ॥

(पदकृ०) संयोगेति ॥ संयोगनाशजनक इत्यर्थः ॥ काले ऽतिप्रसक्तिनिवारणाय गुणपदम् ॥ ईश्वरेच्छादिवारणाय 'असाधारण' इत्यपि बोध्यम् ॥ ननु 'असाधारणपदोपादाने गुणपदस्य वैयर्थ्यं स्यात्' इति चेत् ॥ न ॥ क्रियायामतिप्रसक्तिवारणाय तस्याप्यावश्यकत्वात् ॥

परापरव्यवहारासाधारणकारणे परापरत्वे । ते द्विविधे दिक्कृते कालकृते च । दूरस्थे दिक्कृतं परत्वम् । समीपस्थे दिक्कृतमपरत्वम् । जेष्ठे कालकृतं परत्वम् । कनिष्ठे कालकृतमपरत्वम् ॥

---

१ सर्व. २ सर्व.

(पदकृ०) परेति ॥ 'परव्यवहारासाधारणं कारणं परत्वम् ॥ अपरव्यवहारासाधारणकारणम् अपरत्वम्' इत्यर्थः ॥ दण्डादिवारणाय 'परव्यवहार' इति ॥ कालादिवारणाय 'असाधारण' इति । परव्यवहारत्ववारणाय 'कारण' इति ॥ एवमेव द्वितीये बोध्यम् ॥

आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम् । पृथिवीजलवृत्ति ।

(न्यायबो०) गुरुत्वं लक्षयति—आद्येति ॥ द्वितीयपतनक्रियायां वेगस्यैवासमवायिकारणत्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणाय 'आद्य' इति ॥ उत्तरलक्षणेऽप्याद्यविशेषणं पूर्ववद्योजनीयम् ॥

(पदकृ०) आद्येति ॥ दण्डादिवारणाय 'असमवायि' इति ॥ रूपादिवारणाय 'पतन' इति ॥ वेगेऽतिव्याप्तिवारणाय 'आद्य' इति

स्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम् । पृथिव्यप्तेजोवृत्ति । तद्द्विविधम् । सांसिद्धिकं नैमित्तिकंच। तत्र सांसिद्धिकं जले । नैमित्तिकं पृथिवीतेजसोः । पृथिव्यां घृतादावग्निसंयोगजं द्रवत्वम् । तेजसि सुवर्णादौ ॥

(पदकृ०) स्यन्दनेति ॥ दण्डादिवारणाय 'असमवायि' इति । रसादिवारणाय 'स्यन्दन' इति॥

चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः । जलमात्रवृत्तिः ॥

(न्यायबो०) स्नेहं लक्षयति—चूर्णादीति ॥ चूर्णादिपिण्डीभावहेतुत्वे सति गुणत्वं स्नेहस्य लक्षणम् ॥ पिण्डीभावो नाम चूर्णादिधारणाकर्षणहेतुभूतो विलक्षणसंयोगः ॥ तादृशसंयोगे स्नेहस्यैवासाधारणकारणत्वम् ॥ न तु जलादिगतद्रवत्वस्य[1], तथा सति द्रुतसुवर्णादिसंयोगेन चूर्णादिपिण्डीभावापत्तेः ॥ अतः स्नेह एवासाधारणकारणम् ॥ विशेषणमात्रोपादाने कालादावतिव्याप्तिः, तद्वारणाय विशेष्योपादानम् ॥

---

१ द्रवत्वस्येत्यनन्तरम् 'असाधारण[illegible]रणत्वमस्तु इति नच वाच्यम्' इति क्वचित्पाठोस्ति.

स्तुतस्तु द्रुतजलसंयोगस्यैव पिण्डीभावहेतुत्वम्, स्नेहस्य पिण्डीभावहेतु-
मानाभावात् ॥ जले द्रुतत्वविशेषणात्करकादिव्यावृत्तिः ॥

(पदकृ०) चूर्णादीति ॥ 'चूर्णं पिष्टं तदेवादिर्यस्य मृत्तिकादेः स चूर्णादिः
स्य पिण्डीभावः संयोगविशेषः तस्य हेतुर्निमित्तकारणं स्नेहः' इत्यर्थः।काला-
वतिव्याप्तिवारणाय गुणपदम् ॥ रूपादावतिव्याप्तिवारणाय ' पिण्डीभाव'
ति ॥ चूर्णपदं स्पष्टार्थम् ॥

**श्रोत्रग्राह्यो गुणः ' शब्दः ' । आकाशमात्रवृत्तिः । स द्वि-
विधः ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्च । तत्र ध्वन्यात्मको भेर्या-
दौ, वर्णात्मकः संस्कृतभाषारूपः ।**

(न्यायबो०) शब्दं लक्षयति—श्रोत्रग्राह्य इति ॥ शब्दत्वेऽति-
ाप्तिवारणाय ' गुणः' इति ॥ स त्रिविधः—संयोगजो विभागजः श-
जश्चेति भेरीदण्डसंयोगजन्यो भांकारादिशब्दः, हस्तवातसंयोगादिज-
ो मृदङ्गादिशब्दः ॥ वंशे पाट्यमाने दलद्वयविभागजन्यः पटपटादिश-
ः ॥ शब्दोत्पत्तिदेशमारभ्य कर्णविवरपर्यन्तं वीचीतरङ्गन्यायेन कदम्ब
कुलन्यायेन वा निमित्तपवनसंबन्धाच्छब्दधारा जायते तत्रोत्तरोत्तरशब्दे
वेशब्दः कारणम् ॥

(पदकृ०) श्रोत्रेति ॥ शब्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय ' गुणः' इति ॥ रू-
ादिवारणाय ' श्रोत्रग्राह्यः ' इति ॥ वस्तुतस्तु श्रोत्रोत्पन्नशब्दस्यैवश्रोत्रग्रा-
त्वेन तद्भिन्ने ऽव्याप्तिवारणाय श्रोत्रग्राह्यजातिमत्त्वे तात्पर्याद्गुणपदमनुपादे-
मेव ॥

सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम्। सा द्विविधा-स्मृतिरनुभवश्च॥

(न्यायबो०) बुद्धेर्लक्षणमाह— सर्वव्यवहारेति ॥ व्यवहारः शब्दप्र-
ोगः, ज्ञानं विना शब्दप्रयोगासंभवाच्छब्दप्रयोगरूपव्यवहारहेतुत्वं ज्ञान-
स्य लक्षणम् ॥ बुद्धिं विभजते— स्मृतिरनुभवश्चेति ॥

---

१ भावः. २ पिण्डं, ३ रेतिकादेः ४ भेर्यादिशब्दः ५ चटपटायमानशब्दः
श्रोत्र ७ पवनेन निमित्तपवनेन शब्दसंबन्धधारा जा०

(पदकृ०) बुद्धिलक्षणमाह—सर्वेति ॥ सर्वे ये व्यवहारा आहारविहारादयः तेषां हेतुर्बुद्धिः, इत्यर्थः ॥ दण्डादिवारणाय 'सर्वव्यवहार ' इति कालादिवारणाय 'असाधारण ' इत्यपि देयम् ॥

संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिः ॥

(न्यायबो०) स्मृतिं लक्षयति– (संस्कारेति) ॥ संस्कारजन्यत्वविशिष्टज्ञानत्वं स्मृतेर्लक्षणम् ॥ विशेषणानुपादाने प्रत्यक्षानुभवेऽतिव्याप्तिः' तद्वारणाय विशेषणोपादानम् ॥ संस्कारध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्योपादानम् ॥ [1]ध्वंसे प्रतियोगिनः कारणत्वात् संस्कारध्वंसेऽपि संस्कारजन्यत्वस्य सत्त्वात् ॥

(पदकृ०) संस्कारेति ॥ संस्कारध्वंसे ऽतिव्याप्तिवारणाय' ज्ञानम्' इति । अनुभवेऽतिव्याप्तिवारणाय ' संस्कारजन्यम् ' इति । तथापि प्रत्यभिज्ञायामतिव्याप्तिवारणाय संस्कारमात्रजन्यत्वं विवक्षणीयम् ॥ क्वचित्तथैव पाठः नचैवं सत्यसंभवः ॥ तस्य संस्कारजन्यत्वे सतीन्द्रियार्थसंनिकर्षाजन्यार्थत्वात् ॥

तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः । स द्विविधः—यथार्थोऽयथार्थश्च ॥

(न्यायबो०) अनुभवं लक्षयति– (तद्भिन्नमिति) ॥ ताद्भिन्नत्वं नाम [2]स्मृतिभिन्नज्ञानत्वम् ॥ तत्र विशेषणानुपादाने स्मृतावतिव्याप्तिः, विशेष्यानुपादाने घटादावतिव्याप्तिः, अतस्तद्वारणाय [3]तयोरुपादानम् ॥ अनुभवं विभजते– स द्विविध इति ॥

(पदकृ०) तदिति ॥ स्मृतित्वावच्छिन्नभिन्नमित्यर्थः ॥ तेन यत्किंचित्स्मृतिभिन्नत्वस्य स्मृतौ सत्त्वेपि न क्षतिः । घटादावतिव्याप्तिवारणाय ' ज्ञानम्' इति ॥ स्मृतिवारणाय ' ताद्भिन्नम्' इति ॥

तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः—सव प्रमेत्युच्यते ॥

---

१ ध्वंसं प्रति स्वप्रतियो० २ स्मृतिभिन्नत्वम्. स्मृतिभिन्नत्वविशिष्टज्ञानत्वम्. ३ विशेषणविशेष्योभयोरु०

(न्यायबो०) यथार्थानुभवं लक्षयति—तद्वतीति ॥ 'तद्वति' इत्यत्र सप्तम्यर्थो विशेष्यत्वम्, तच्छब्देन प्रकारीभूतो धर्मो धर्तव्यः। तथा च तद्वद्विशेष्यकत्वे सति तत्प्रकारकत्वं यथार्थानुभवस्य लक्षणम् ॥ उदाहरणम्—रजते 'इदं रजतम्' इति ज्ञानं रजतत्ववद्विशेष्यकत्वे सति रजतत्वप्रकारकम् ॥ 'तद्वन्निष्ठविशेष्यतानिरूपिततन्निष्ठप्रकारताशालित्वम्, इति निष्कर्षः ॥ अन्यथा यथाश्रुते, रङ्गरजतयोः 'इमे रजतरङ्गे' इत्याकारकसमूहावलम्बनभ्रमे ऽतिव्याप्तिः ॥ तत्रापि रजतत्ववद्विशेष्यकत्व—रजतत्वप्रकारकत्वयो रङ्गत्ववद्विशेष्यकत्वरङ्गत्वप्रकारत्वयोः सत्त्वात्। उक्तनिष्कर्षे तु नातिव्याप्तिः रजतत्वप्रकारताया रजतत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वाभावात्, रङ्गत्वप्रकारताया रङ्गत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वाभावात्, किंतु समूहालम्बनभ्रमस्य रङ्गांशे रजतत्वावगाहित्वेन रजतत्वप्रकारताया रङ्गत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वात्॥ एवं रजतांशे रङ्गत्वावगाहित्वेन रङ्गत्वप्रकारताया रजतत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वाच्चेति ॥ (नानाधर्मप्रकारताशालि एकं ज्ञानं समूहालम्बनम् ॥)

(पदकृ०) तद्वतीति ॥ तदेव प्रकारो यस्य स तथेत्यर्थः। 'तद्वद्विशेष्यकतत्प्रकारकः' इति यावत् ॥ स्मृतिधारणा 'अनुभवः' इति । अयथार्थानुभवनिरसनाय 'तद्वति' इति ॥ निर्विकल्पकेऽतिव्याप्तिवारणाय 'तत्प्रकारकः' इति ॥

तदभाववति तत्प्रकारको ऽनुभवो ऽयथार्थः ॥

(न्यायबो०) अयथार्थानुभवं लक्षयति—तदभाववतीति ॥ अत्रापि पूर्ववत् तदभाववद्विशेष्यतानिरूपिततन्निष्ठप्रकारताशालिज्ञानत्वं विवक्षणीयम् ॥ अन्यथा रङ्गरजतयोः 'इमे रङ्गरजते' इत्याकारकसमूहालम्बनभ्रमायामतिव्याप्तिः । एतत्समूहालम्बनस्य रङ्गरजतोभयविशे-

१तत्प्रकारकानुभवत्वम्' २ कुत्रचिन्निष्ठपदं नास्ति. ३ रजतरंगयो. ४ 'नाव्याप्तिः.' इति नास्ति ५ रजतत्ववद्रजतविशे. ६ रंगत्ववद्रंगविशे. ७ नानागुणिशेष्यतानिरूपितनानाधर्म. इत्यधिकंकुत्रचिदेव दृश्यते. तट्टिप्पणीरूपमिवाभा ८ तद्वतीत्यर्थः. ९ वारणाय. १० ज्ञानपदं कुत्रचिन्नास्ति. ११ कारकस्थले. लम्बने. १३ व्याप्तेः. १४ रजतरंगो०.

। ष्यकत्वेन रजतत्वरङ्गत्वोभयप्रकारकत्वेन च रजतत्वाभाववद्रङ्गविशे-
ः ष्यकत्वरजतत्वप्रकारकत्वयो रङ्गत्वाभाववद्रजतविशेष्यकत्वरङ्गत्वप्रका-
रकत्वयोश्च सत्त्वात् ॥ निष्कर्षे तु रजतांशे रजतत्वावगाहित्वेन रङ्गांशे
रङ्गत्वावगाहित्वेन च रजतत्वप्रकारताया रजतत्वाभाववद्रङ्गविशेष्यता-
निरूपितत्वाभावात्; एवं रङ्गत्वप्रकारताया रङ्गत्वाभाववद्रजतविशे-
ष्यतानिरूपितत्वाभावात्, नातिव्याप्तिः ॥ उदाहरणम्—यथा शुक्तौ
(इदं रजतम्) इति ॥

(पदकृ०) तदभाववतीति ॥ 'तदभाववद्विशेष्यकतत्प्रकारको ऽनुभवोऽ-
यथार्थानुभवः' इति ॥ यथा शुक्तौ 'इदं रजतम्' इति ज्ञानम् । स्मृतिवा-
रणाय 'अनुभवः' इति ॥ यथार्थानुभवनिरसनाय 'तदभाववति' इति ॥
निर्विकल्पकवारणाय 'तत्प्रकारकः' इति ॥

यथार्थानुभवश्चतुर्विधः-प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात्॥

(न्यायबो०) यथार्थानुभवं विभजते—'चतुर्विधः' इति ॥

(पदकृ०) यथार्थेति ॥ यथार्थानुभवः 'प्रत्यक्षमेव' इति चार्वाकाः, 'अनु-
मितिरपि' इति काणादबौद्धाः, 'उपमितिरपि' इति नैयायिकैकदेशिनः,
'शाब्दमपि' इति नैयायिकाः, 'अर्थापत्तिरपि' इति प्राभाकराः 'अनुप-
लब्धिको ऽपि' इति भाट्टवेदान्तिनौ, 'सांभविकैतिह्यकावपि' इति पौराणिकाः, चै-
ष्टिको ऽपि' इति तान्त्रिकाः ॥ एतेषां मतेऽस्वरसं संभाव्य तस्य चातुर्विध्यं स्प-
ष्टं दर्शितम् ॥

तत्करणमपि चतुर्विधम् प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात् ॥

(न्यायबो०) तत्करणमिति ॥ फलीभूतप्रत्यक्षादिकरणं चतुर्विधम् इ-
त्यर्थः ॥ प्रत्यक्षादिचतुर्विधप्रमाणानां प्रमाकरणत्वं सामान्यलक्षणम् ॥ ए-
कैकप्रमाणलक्षणं तु वक्ष्यते, प्रत्यक्षज्ञान—, इत्यादिना ॥

(पदकृ०) तदिति ॥ यथार्थानुभवात्मकप्रमायाः करणम्, इत्यर्थः ॥

१कत्वं. २ उक्तनिष्कः ३ रजतांशे रजत ४ रंगत्वांशेरंग ५ च ६ खण्डनाय. इदमवतरणं कुत्रचिन्नास्ति. ८ अस्वरसात्तस्य. ९ प्रमाणस्य.

असाधारणं कारणं करणम् ॥

(न्यायबो०) करणलक्षणमाह—असाधारणमिति ॥ 'व्यापारवद-साधारणं कारणं करणम्, इत्यर्थः । असाधारणत्वं च' कार्यत्वव्याप्यध-र्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताशालित्वम्, इत्यर्थः । यथा दण्डादौ घ-टं प्रत्यसाधारणकारणत्वम् ॥ कार्यत्वव्याप्यो घटत्वादिरूपधर्मः, तदवच्छि-न्नकार्यता घटे, तन्निरूपितकारणता दण्डे, अतो घटं प्रति दण्डो ऽसाधार-णकारणम् । भ्रम्यादिरूपव्यापारवत्त्वाच्च करणम् ॥ साधारणत्वं च का-र्यत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताशालित्वम् ॥ ईश्वरेच्छादृष्टादेः का-र्यत्वावच्छिन्नंप्रत्येव कारणत्वात्साधारणकारणत्वम् ॥

(पदकृ०) असाधारणमिति ॥ कालादिवारणाय 'असाधारण' इति ॥ व्यापारे ऽतिव्याप्तिवारणाय 'व्यापारवद्' इत्यपि देयम् ॥ व्यापारश्च द्रव्या-न्यत्वे सति तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः । ईश्वरेच्छादिवारणाय 'तज्जन्यत्वे सति' इति ॥ कुलालजन्यत्वे सति कुलालजन्यघटजनकत्वं कुलालपुत्रस्याप्य-स्ति, अतस्तत्रातिव्याप्तिवारणाय प्रथमं सत्यन्तम् ॥ दण्डरूपादिवारणाय तज्जन्य-जनकः' इति ॥

कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम् ॥

(न्यायबो०) कारणं लक्षयति—कार्यनियतेति ॥ कार्यं प्रति नियतत्वे सति पूर्ववृत्तित्वम् ॥ नियतत्वविशेषणानुपादाने पूर्ववर्तिनो रासभादेरपि घटादिकारणत्वं स्यात, अतो 'नियतत्वे सति, इति विशेषणम् ॥ नियत-पूर्ववर्तिनो दण्डरूपादेरपि घटकारणत्वं स्यात, अतः 'अनन्यथासिद्धत्वम्' अपि कारणलक्षणे निवेशनीयम्, दण्डरूपादेरन्यथासिद्धत्वात् ॥

(पदकृ०) कार्येति ॥ 'कार्यान्नियताऽवश्यंभाविनी पूर्ववृत्तिः पूर्वक्षणवृत्तिर्ये-

---

१ असाधारणं च. २ कार्यत्वातिरिक्तधर्मा ३ कुत्रचिन्नास्ति. ४ त्वं च. ५ कार्यत्वातिरिक्तो. ६ णत्वम्. ७ कारणत्वं च८ ईश्वरादृष्टादेः. ९ अनन्यथासि-द्धका.१० कारणत्वम्. ११ विशेषणाभावे. १२ विनियतपूर्वव. १३ घटादीति कुत्रचिन्न १४ नियतविशेपणम् १५ घटादिकारणता. १६ सिद्धपदमपि;१७कार णत्वल: १८ दीनांतुअ. १९ अनन्यथेति

स्य तत्तथा ' इत्यर्थः ॥ अनियतरासभादिवारणाय 'नियत' इति । कार्यकारणा- य 'पूर्वे' इति । दण्डत्वादिवारणाय 'अनन्यथासिद्धत्व' विशेषणस्यावश्य- कत्वेन तत एव रासभादिवारणसंभवे नियतपदमनर्थकम् ॥ एवं च 'अनन्यथा- सिद्धकार्यपूर्ववृत्ति कारणम्' इति फलितम् ॥ अनन्यथासिद्धत्वमन्यथा- सिद्धिशून्यत्वम् । अन्यथासिद्धिश्च ' अवश्यक्लृप्तपूर्ववर्तिन एव कार्यसंभवे तत्सह- भूतत्वम् ' । यथा—अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिभिर्दण्डादिभिरेव घटरूपकार्य- संभवे तत्सहभूतत्वं दण्डत्वादौ, इति तदन्यथासिद्धम् ॥

कार्यं प्रागभावप्रतियोगि ॥

(न्यायबो०) कार्यं लक्षयति—प्रागिति ॥ प्रागभावप्रतियोगित्वं कार्यस्य लक्षणम् ॥ कार्योत्पत्तेः पूर्वम् 'इह घटो भविष्यति, इति प्रतीतिर्जायते ॥ 'एतत्प्रतीतिविषयो'[5] ऽभावः 'प्रागभावः' तत्प्रतियोगि घटादिरूपं कार्यम् ॥

(पदकृ०) प्रागिति ॥ कालादिवारणाय ' प्राग् ' इति ॥ असंभववा णाय ' प्रतियोगि ' इति ॥

कारणं त्रिविधम्—समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात् ॥

(न्यायबो०) कारणं त्रिविधमिति ॥ समवायिकारणम्, असमवायि- कारणम्, निमित्तकारणं चेति ॥

यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम् । यथा तन्तवः पटस्य । पटश्च स्वगतरूपादेः ॥

(न्यायबो०) समवायिकारणं लक्षयति—यत्समवेतमिति ॥ 'यस्मिन् समवेतं सत् समवायेन संबद्धं सत् कार्यम् उत्पद्यते तत्समवायिकारणम्' इत्यर्थः ॥ उदाहरणम्— 'यथा तन्तवः' इति । 'तन्तुषु समवायेन संबद्धं सत् पटात्मकं कार्यमुत्पद्यते इति तन्तवः समवायिकारणम्, इत्यर्थः ॥ सामान्यलक्षणं तु— ' समवायसंबन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपिततादात्म्यसं-

१ सिद्धिविशे. २ कार्यपदं नास्ति. ३ क्लृप्तनियतपू-. ४ भूतदण्ड-. ५ विषयी- भूतोऽभा.

न्धावच्छिन्नकारणत्वं समवायिकारणत्वम्' इति। समवायसंबन्धेन घटादिकरणे कपालादौ कपालादेस्तादात्म्यसंबन्धेनैव सत्त्वात् समवायसंबन्धावच्छिन्नघटत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपिततादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नकारणतायाः कपालादौ सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः ॥ 'जन्यभावत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्यसंबन्धेन द्रव्यस्यैव कारणत्वात्। जन्यभावेषु द्रव्यगुणकर्मसु त्रिषु द्रव्यमेव समवायिकारणम्' अतो गुणादावपि द्रव्यमेव समवायिकारणम् इत्याशयेनाह 'पटश्च स्वगतरूपादेः' इति ॥ 'समवायिकारणम्' इत्यनुपज्यते ॥

(पदकृ०) यदिति ॥ 'यस्मिन् समवायसंबन्धेन वर्तमानम्' तत् इति भावः। चक्रादिवारणाय 'समवेतम्' इति ॥

कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति कारणमसमवायिकारणम्। यथा तन्तुसंयोगः पटस्य। तन्तुरूपं पटगतरूपस्य ॥

(न्यायबो०) असमवायिकारणं लक्षयति—कार्येणेति ॥ 'कार्येण सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सद्यत् कारणं तदसमवायिकारणम्' इत्यन्वयः, 'कारणेन सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सद्यत् कारणं तदसमवायिकारणम्' इत्यन्वयः। जन्यद्रव्यमात्रे ऽवयवसंयोगस्यैवासमवायिकारणत्वात्, 'पटात्मककार्ये तदवयवतन्तुसंयोगस्यैवासमवायिकारणत्वम्' इति दर्शयति—'यथा तन्तुसंयोगः पटस्य' इति ॥ पटात्मककार्येण सहैकस्मिन्नर्थे तन्तौ समवेतं सत् समवायसंबन्धेन वर्तमानं सत् पटात्मककार्यं प्रति तन्तुसंयोगात्मकं कारणमसमवायिकारणमित्यर्थः ॥ द्वितीयसमवायिकारणम् 'कारणेन सह' इत्यादिना पूर्वोक्तमुदाहरति—'तन्तुरूपम्' इति ॥ कारणेन सह पटरूपसमवायिकारणीभूतपटेन सह एकस्मिन्नर्थे तन्तुरूपे ऽर्थे समवेतं सत् समवायसंबन्धेन वर्तमानं सत् तन्तुरूपं पटरूपं प्रति कारणं भवति, अतो ऽसमवायिकारणं तन्तुरूपं पटरूपस्य ॥ सामान्यलक्षणं तु 'समवायसंबन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपिता या समवाय-स्वसमवायिसमवेतत्वान्यतरसंबन्धावच्छि

१ वच्छिन्नकपालत्वावच्छिन्नकार. २ 'द्रव्ये तु द्रव्यावयवाः समवायिकारणं' अतो ३ त्वगादि ४ इत्यर्थः ५ द्रव्ये ६ दर्शयति

न्ना कारणता तादृशकारणताश्रयत्वम् असमवायिकारणत्वम् ' इति॥ द्र-
व्यासमवायिकारणीभूतावयवसंयोगादौ तु समवायसंबन्धावच्छिन्नघटत्वा-
वच्छिन्नकार्यतानिरूपिता समवायसंबन्धावच्छिन्ना कपालद्वयसंयोगनिष्ठा
कारणता कपालद्वयसंयोगे वर्तते ॥ एवम् आद्यपतनक्रियायां आद्यस्य-
दनक्रियायां च गुरुत्वद्रवत्वे असमवायिकारणे भवतः । आद्यपतनक्रियां
ाति आद्यस्यन्दनाक्रियां प्रति च समवायसंबन्धेनैव तयोः कारणत्वात् ॥
अवयविगुणादौ त्ववयवगुणादेः स्वसमवायिसमवेतत्वसंबन्धेनैव कारणत्वा-
[तत्संबन्धावच्छिन्नकारणताश्रयत्वमवयवगुणादौ वर्तते ॥ अवयवगुणभूत
पालतन्तुरूपादेःस्वशब्दग्राह्यकपालरूपतन्तुरूपसमवायिकपालतन्तुसमवे-
त्वसंबन्धेन घटपटादौ कपालरूपतन्तुरूपयोः सत्त्वात् ॥

(पदकृ०) कार्येणेति ॥ कार्येण सह कारणेन सह वा एकस्मिन्नर्थे समवे-
त्वे सति, आत्मविशेषगुणभिन्नत्वे सति, यत्कारणं तदसमवायिकारणम् ॥
न्तुसंयोगादावव्याप्तिवारणाय 'कार्येण' इति ॥ तन्तुरूपादावव्याप्तिवारणाय
कारणेन' इति ॥ आत्मविशेषगुणेऽतिव्याप्तिवारणाय' आत्मविशेषगुणभिन्नत्वे
ति' इति ॥ विशेषवारणाय 'कारणम्' इति ॥

**तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम् । यथा—तुरीवेमा-
दिकं पटस्य ॥**

(न्यायबो०) तदुभयभिन्नमिति ॥ 'समवाय्यसमवायिकारणभिन्नम्'
यर्थः ॥

(पदकृ०) तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम् इति॥ समवाय्यसमवा-
कारणवारणाय 'तदुभयभिन्नम्' इति । विशेषादावतिव्याप्तिवारणाय
ारणम्' इति ॥

तदेतत्त्रिविधकारणमध्ये यदसाधारणं कारणं तदेव करणम् ॥

(न्यायबो०) तदेतदिति ॥ 'यदसाधारणम्' इति ॥ 'व्यापारवत्त्वे
ते, इत्यपि पूरणीयम् ॥ अन्यथा तन्तुकपालसंयोगयोरतिव्याप्तिः, त-

---

. तदाश्रयत्वम्. २कार्येण कारणेन वा सहैक- ३ वायिभिन्नकारणमित्य-४गादौ

न्तुकपालसंयोगयोरपि कार्यत्वंव्याप्यपटत्वघटत्वाद्यवच्छिन्नं प्रति कारणत्वादसाधारणत्वमस्त्येवेति, अतस्तत्र करणत्ववारणाय 'व्यापारत्त्वे सति' इति करणलक्षणे विशेषणं देयम् ॥ व्यापारत्वं च तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वम् ॥ भवति हि दण्डजन्यत्वे सति दण्डजन्यघटजनकत्वाद् भ्रम्यादेर्दण्डव्यापारत्वम् ॥ एवं कपालसंयोगतन्तुसंयोगादेरपि कपालतन्तुव्यापारत्वम् कपालसंयोगतन्तुसंयोगयोः कपालजन्यत्वे तंतुजन्यत्वे सति तज्जन्यघटपटजनकत्वात् ॥ करणलक्षणे ऽसाधारणत्वविशेषणानुपादाने ईश्वरादृष्टादेरपि व्यापारत्वे सति कारणत्वस्य सत्त्वात् तत्रातिव्याप्तिवारणाय 'असाधारण' इति पदोपादानम् ॥

(पदकृ०) तदेतादिति ॥ यस्मात्कारणात् करणत्वेघटकं कारणमुपदर्शितम् तस्मादेतत्त्रिविधसाधकमध्ये यत्साधकतमं तदेव करणम् इति भावः ॥ इति करणप्रपञ्चः ॥

तत्र प्रत्यक्षज्ञानकरणं प्रत्यक्षम् ॥

(न्यायबो०) षड्विधेन्द्रियभूतप्रत्यक्षप्रमाणस्य लक्षणमाह—तत्रेति ॥ प्रमाणभूतेषु, प्रत्यक्षात्मिकं यज्ज्ञानं चाक्षुषादिप्रत्यक्षं (तत्) प्रति कारणं व्यापारवदसाधारणम् इंद्रियं भवति, अतः प्रत्यक्षज्ञानकरणत्वं प्रत्यक्षस्य लक्षणम् ॥ आद्यसंनिकर्षातिरिक्तचतुर्विधसंनिकर्षाणां समवायघटितत्वेनेन्द्रियजन्यत्वाभावाँद्व्यापारत्वं न संभवति, इतीन्द्रियमनःसंयोगस्यैव षड्विधप्रत्यक्षे जननीये इन्द्रियव्यापारता बोध्या ॥

(पदकृ०) तत्रेति ॥ प्रमाणचतुष्टयमध्ये ॥ दण्डादिसंयोगवारणाय 'ज्ञान' इति ॥ अनुमानादिवारणाय 'प्रत्यक्ष' इति ॥

(ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्) ॥ इन्द्रियार्थसंनिकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्। तद्द्विविधम्—निर्विकल्पकं सविकल्पकं चेति॥

---

१ कार्यत्वातिरिक्त. २ व्यापारवत्त्वात्करणत्वं स्यात् व्यापारवत्कारणत्वस्य सत्त्वात्त- ३ करणघ. ४ स्यवर्णो नास्ति ५ षड्विधप्रत्य- ६ करणंव्यापारवदसाधारणं कारणमिन्द्रियं ७ संभवात् ८ संयोगपदं कुत्रचिन्नास्ति

(न्यायबो०) प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणमुक्त्वा प्रत्यक्षप्रमालक्षणमाह—ज्ञानाकरणकमिति । क्षेपकं लक्षणमिदम् ॥ ज्ञानं व्याप्तिज्ञानं सादृश्यज्ञानं पदज्ञानं च तदेव करणं येषां ते ज्ञानकरणका अनुमित्युपमितिशाब्दाः,ज्ञानकरणकं, न भवतीति ज्ञानाकरणकं [तत्त्वम्] प्रत्यक्षलक्षणम् । प्रत्यक्षे इन्द्रियाणामेव करणत्वात्, न तु ज्ञानस्य करणत्वम् ॥ इदं लक्षणमीश्वरप्रत्यक्षसाधारणम् ईश्वरप्रत्यक्षस्याजन्यत्वात् । अतो जन्यप्रत्यक्षस्यैव लक्ष्यत्वमादाय तल्लक्षणम्—इन्द्रियार्थसंनिकर्षेति । जन्यप्रत्यक्षस्यैव लक्ष्यत्वाभिप्रायेणेदम्॥ प्रत्यक्षं द्विधा विभजते—'निर्विकल्पकम्' इति ॥

(पदकृ०) इन्द्रियार्थेति ॥ 'इन्द्रियं चक्षुरादिकम् , अर्थो घटादिः, तयोः संनिकर्षः संयोगादिः, तज्जन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् ' इत्यर्थः । संनिकर्षध्वंसवारणाय 'ज्ञानम् ' इति । अनुमित्यादिवारणाय ' इन्द्रियार्थसंनिकर्ष ' इति ॥ ननु 'सोपनेत्रचक्षुषा कथं पदार्थग्रहणम्, चक्षुष उपनेत्रनिरुद्धत्वेन पदार्थेन संनिकर्षाभावात्' 'कथं वा स्वच्छजान्हवीसलिलावृतमत्स्यादेश्चक्षुषा ग्रहणम् ' इति चेत्॥ न । स्वच्छद्रव्यस्य तेजोनिरोधकत्वाभावेन तदन्तश्चक्षुःप्रवेशसंभवात् ॥ नच-ईश्वरप्रत्यक्षे ऽव्याप्तिः । इति वाच्यम् । अत्र जन्यप्रत्यक्षस्यैव लक्षितत्वात् ॥

तत्र निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम् ॥

(न्यायबो०) निष्प्रकारकमिति ॥ 'प्रकारताशून्यत्वमेव निर्विकल्पकत्वम्' इत्यर्थः ॥ निर्विकल्पके चतुर्थी विषयता स्वीक्रियते नतु त्रिविधविषयतामध्ये कांऽपि तत्रास्ति अतो' विशेष्यताशून्यज्ञानत्वम् ' इत्यपि लक्षणं संभवति ॥

(पदकृ०) तत्र निष्प्रकारकमिति ॥ सविकल्पके ऽतिव्याप्तिवारणाय 'निष्प्रकारक' इति।प्रकारवारणाय ' ज्ञानम् ' इति॥

सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम् ॥ यथा—'डित्थोऽयम्, ब्राह्मणो ऽयम्, श्यामो ऽयम्'इति ॥

---

१ उक्तम्. २ प्रत्यक्षप्रमालक्षणम्. ३तद्भिन्नत्वं प्रत्यक्षे. ४ ईश्वरीय. ५ ईश्वरीय. ६ इदं लक्षणम्.७ यथा. ८ सहेत्यधिकम्. ९ कुत्रचिन्नोपलभ्यते. १०एकापि.

(न्यायबो०) सप्रकारकमिति ॥ विषयताया ज्ञाननिरूपित
ज्ञानस्य विषयतानिरूपकत्वेन, प्रकारतानिरूपकज्ञानत्वं सविकल्प
लक्षणम् ॥ उदाहरणम्—यथेति । इदंत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपि
त्थत्वप्रकारताशालिज्ञानं ब्राह्मणत्वप्रकारताशालिज्ञानं च सविक
मित्यर्थः ॥

(पदकृ०) सप्रकारेति ॥ घटादिवारणाय ' ज्ञानम् ' इति निर्विकल्पव
णाय ' सप्रकारकम् ' इति ॥

प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसंनिकर्षः षड्विधः—संयोगः, संयु-क्तसमवायः, संयुक्तसमवेतसमवायः, समवायः, समवेतसम-वायः, विशेषणविशेष्यभावश्चेति ॥

(न्यायबो०) चाक्षुषादिषड्विधप्रत्यक्षकारणीभूतान्षड्विधसं
र्षान्विभजते 'संयोगः' इत्यादिना ॥ द्रव्यवृत्तिलौकिकविषयतासंब
चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयोगः कारणम्। द्रव्यसमवेतवृत्तिलौकिक
षयतासंबन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयुक्तसमवायस्य हेतुत्वम
व्यसमेतसमवेतवृत्तिलौकिकविषयतासंबन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नंप्रति
क्षुःसंयुक्तसमवेतसमवायस्य हेतुत्वम् । द्रव्यसमेतसमवेतवृत्तिलौकिक
षयतासंबन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयुक्तसमवेतसमवायस्य
त्वम् ॥ द्रव्यग्राहकाणीन्द्रियाणि चक्षुस्त्वङ्मनांसि त्रीण्येव। अन्यानि
णरसनश्रवणानि तु गुणग्राहकाणि ॥ अतस्त्वगिन्द्रियस्थले द्रव्य
लौकिकविषयतासंबन्धेन त्वाचत्वावच्छिन्नं प्रति त्वक्संयोगस्य हेतु
एवं द्रव्यसमवेतत्वाचत्वावच्छिन्नं प्रति त्वक्संयुक्तसमवायस्य हेतु
द्रव्यसमवेतसमवेतोष्णत्वशीतत्वादिजातिस्पार्शनप्रत्यक्षे त्वक्संयुक्त
वेतसमवायस्य हेतुता, एवम् आत्मरूपद्रव्यमानसप्रत्यक्षे मनःसंयो
हेतुता आत्मसमवेतसुखादिमानसप्रत्यक्षे मनःसंयुक्तसमवायस्य हे

---

१ विशेषणताशून्यत्वमिव विशेष्यताशून्यत्वं संसर्गताशून्यत्वमित्यपि ल. २ त
प्रत्यक्षत्वा. ३ द्रव्यसमवेतविषयकत्वाचप्रत्यक्षत्वा.

आत्मसमवेतसमवेतसुखत्वादिमानसप्रत्यक्षे मनःसंयुक्तसमवेतसमवायस्य हेतुता ॥ रसनघ्राणयोस्तु रसगन्ध–तद्गतजातिग्राहकत्वेन द्वितीयतृतीययोः संनिकर्षयोरेव तत्र हेतुता वाच्या ॥ श्रवणेन्द्रियस्याकाशरूपत्वेन शब्दस्याकाशगुणत्वेन श्रवणेन्द्रियेण[1] समं शब्दस्य समवायः संनिकर्षः । शब्दवृत्तिशब्दत्व[2]जातिविषयकश्रावणप्रत्यक्षे समवेतसमवायस्य हेतुता ॥ अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावो नाम विशेषणतासंनिकर्षः । पञ्चविधसंनिकर्षोपरि विशेषणता योजनीया तथाहि-द्रव्याधिकरणकाभावप्रत्यक्षे संयुक्तविशेषणता । द्रव्यसमवेताधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्तसमवेतविशेषणता । द्रव्यसमवेतसमवेताधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणता ॥ संयोग[3]स्थाने संयुक्तत्वं घटयित्वा समवायस्थाने समवेतत्वपदं घटयित्वा अभावप्रत्यक्षस्थले निर्वाह्यम् ॥ यथा घटद्रव्यसमवेतं घटत्वं पृथिवीत्वा[4]दि रूपादिकं च ॥ तत्र नीलादौ पीतत्वाभावः, घटत्वादिजातौ पटत्वाभावश्च वर्तते । स चाभावः संयुक्तसमवेतविशेषणतासंनिकर्षेण गृह्यते । (एवं नीलत्वादिजातौ पीतत्वाभावोऽपीन्द्रियसंयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणतासंनिकर्षेण गृह्यते) । पटसमवेतं नीलं, तत्समवेतं नीलत्वं, तद्विशेषणता पीतत्वाभावे वर्तत इति संक्षेपः ॥

(पदकृ०) प्रत्यक्षेति ॥ तच्च प्रत्यक्षं षड्विधम्–घ्राणज–रासन–चाक्षुष–श्रोत्र–त्वाच–मानसभेदात् ॥ ननु 'प्रत्यक्षकारणीभूतेन्द्रियसंनिकर्षप्रत्यक्षसामानाधिकरण्यघटकः संनिकर्षः कः' इत्यपेक्षायां विभज्य दर्शयति–प्रत्यक्षेति । 'लौकिकप्रत्यक्ष'- इत्यर्थः ॥

चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः संनिकर्षः ।

(पदकृ०) संयोगमुदाहरति-चक्षुषेति ॥ तथा च 'द्रव्यचाक्षुषत्वाचमानसेषु संयोग एव संनिकर्षः' इति भावः ॥

---

१ चेत्यधिकम्. २ शब्दत्वकत्वखत्वगत्वादि. ३ संयोगस्थाने समवायस्थाने च संयुक्तपदं समवेतपदं च. ४ दिकं. ५ निष्ठ.

घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्तसमवायः संनिकर्षः । चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपस्य समवायात्

(पदकृ०) घटरूपेति ॥ 'चक्षुषा ' इत्यनुषज्यते ॥ तथा च द्रव्यसम
चाक्षुषरासनघ्राणजस्पार्शनमानसेषु संयुक्तसमवाय एव संनिकर्ष इत्यर्थः ॥

रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः संनिकर्षः । चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपं समवेतम्, तत्र रूपत्वस्य समवायात्

(पदकृ०) रूपत्वेति ॥ रूपत्वात्मकं यत्सामान्यम्, तत्प्रत्यक्ष इत्
अत्रापि ' चक्षुषा ' इत्यनुषज्यते ॥ तथा च ' द्रव्यसमवेतसमवेतचाक्षुषरा
घ्राणजस्पार्शनमानसेषु संयुक्तसमवेतसमवाय एव संनिकर्षः ' इति भावः॥
' द्रव्य-तत्समवेतप्रत्यक्षेऽपि संयुक्तसमवाय एव संनिकर्षोऽस्तु ' इति चे
नैतत् । ईश्वरात्मादेरनध्यक्षत्वप्रसंगात् ॥

श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः संनिकर्षः कर्णविवरवर्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वात् । शब्दस्याकाशगुणत्वात् । गुणगुणिनोश्च समवायात् ॥

(पदकृ०) समवायसंनिकर्षमुदाहरति--श्रोत्रेणेति ॥ ' जननीये '
शेषः ननु ' श्रोत्रशब्दयोः कथं समवायः ' इत्यपेक्षमाणं प्रति तमुपपाद्य व
यति--कर्णेति ॥ अथ 'समवायस्य नित्यत्वेन शब्दप्रत्यक्षे को व्यापारः '
चेत् ॥ ' शब्दः श्रोत्रमनःसंयोगो वा ' इति गृहाण ॥

शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः संनिकर्षः । श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात् ॥

(पदकृ०) शब्दत्वेति ॥ श्रोत्रेण ' ' जननीये ' इत्यनुकर्षशेषो ॥

अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः संनिकर्षः।घटाभाववद्भूतलम्, इत्यत्र चक्षुःसंयुक्ते भूतले घटाभावस्य विशेषणत्वात् ॥

---

१ चक्षुषा जनन इति. २ चाक्षुषत्वाचमानसरासनघ्राणजेषु.

(पदकृ०) विशेषणेति ॥ विशेषणभावो विशेष्यभावः । इन्द्रियसंबद्धविशेषणत्वम्, इन्द्रियसंबद्धविशेष्यत्वम् , इति यावत् ॥ विशेषणभावसंनिकर्षमुपपाद्य दर्शयति—घटाभाववदिति ॥ ' इह भूतले घटो नास्ति ' इत्यादौ विशेष्यतासंनिकर्षोऽवसेयः । सप्तम्यन्तस्य विशेषणत्वात् ॥

एवं संनिकर्षषट्कजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् ॥

(पदकृ०) प्रत्यक्षप्रमामुपसंहरति—एवमिति। ' उपदर्शितक्रमेण' इत्यर्थः।

तत्करणमिन्द्रियम् । तस्मात् ' इंद्रियं प्रत्यक्षप्रमाणम् ' इति सिद्धम् ॥

(पदकृ०) ननु ' सिद्धान्ते प्रत्यक्षज्ञानकरणमिन्द्रियार्थसंनिकर्षः किं न स्यात्' इति चेत् ॥ ' न ' इत्याह[२]—तत्करणमिति ॥ प्रत्यक्षप्रमाणं निगदय[३]ति—तस्मादिति ॥ प्रत्यक्षप्रमाकरणत्वादित्यर्थः ॥ सिद्धमिति ॥ न्यायसिद्धान्ते सिद्धमित्यर्थः ॥

इति प्रत्यक्षपरिच्छेदः समाप्तः ।

अनुमितिकरणमनुमानम् ॥

[न्यायबो०] अनु[४]मानं लक्षयति—अनुमितीति ॥ अनुमितौ व्याप्तिज्ञानं करणम्, परामर्शो व्यापारः, अनुमितिः फलं कार्यमित्यर्थः ॥ परामर्शस्य व्याप्तिज्ञानजन्यत्वाद् व्याप्तिज्ञानजन्यानुमितिजनकत्वाच्च तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वरूपव्यापारलक्षणमुपपन्नम् ॥ अनुमितिकरणत्वमनुमानस्य लक्षणम् । अनुमानं च व्याप्तिज्ञानम् । एतस्य परामर्शरूपव्यापारद्वारा अनुमितिं प्रति असाधारणकारणतया ऽनुमितिकरणत्वमुपपन्नम् ॥

(पदकृ०) प्रत्यक्षानुमानयोः कार्यकारणभावसंगतिमभिप्रेत्यप्रत्यक्षानन्तरमनुमानं निरूपयति—अनुमितीति ॥ 'अनुमितेः करणम् अनुमानम् ' इत्यर्थः ॥त-

---

१ वक्ष्येति बोध्यम्. २ व्यापारत्त्वाभावादिति भावः. ' फलायोगव्यवच्छिन्नं कारणम्' इति मते तु संन्निकर्ष एव प्रत्यक्षप्रमाणम् इति बोध्यम्. ३ निगमयति. ४ अवतरणप्रतीके क्वचिन्न स्तः.

लिङ्गपरामर्श एव ' इति निवेदयिष्यते ॥ कुठारादावतिव्याप्तिवारणाय 'अ-ति ' इति । प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय ' अनु ' इति ॥

परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिः ॥

(न्यायबो०) परामर्शजन्यमिति ॥ 'परामर्शजन्यत्वे सति' इति सप्तम्या विशिष्टत्वमर्थः । परामर्शजन्यत्वविशिष्टज्ञानत्वमनुमितेर्लक्ष-॥ तत्र ज्ञानत्वमात्रोपादाने प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिः, अतस्तद्वारणा-परामर्शजन्यत्वे सति ' इति विशेषणोपादानम् । विशेषणमात्रोक्तौ ध्वंसे ऽतिव्याप्तिः, अतो ज्ञानत्वोपादानम् ॥

(पदकृ०) ननु ' अनुमितेरेव दुर्निरूप्यत्वात् तद्घटितमनुमानमपि दुर्नि-म् ' इत्यत आह—परामर्शेति ॥ प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय ' परामर्श-म् ' इति । परामर्शध्वंसवारणाय ' ज्ञानम् ' इति । परामर्शप्रत्यक्षवारणा-हेत्वविषयकम् ' इत्यपि बोध्यम् ॥

व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः । यथा—वह्निव्याप्य-धूमवानयं पर्वतः,इति ज्ञानं परामर्शः। तज्जन्यम् 'पर्वतो व-ह्निमान्' इति ज्ञानमनुमितिः ॥

(न्यायबो०) व्याप्तिविशिष्टेति ॥ 'व्याप्तिविशिष्टं च तत्पक्षधर्मताज्ञा-नं' इति कर्मधारये विशिष्टपदस्य प्रकारकपरत्वात् ' पक्षधर्मताज्ञा-' इत्यत्र षष्ठ्या विषयत्वबोधनात् धर्मतापदस्य संबन्धार्थकत्वाच्च र्मधारयसमासे समस्यमानपदार्थयोरभेदसंसर्गलाभेन च ' व्याप्तिप्र-कारकाभिन्नं यत् पक्षसंबन्धिविषयकं ज्ञानं तत् परामर्शः ' इति लभ्य-। एवं सति ' धूमो वह्निव्याप्यः, घटवान् पर्वतः ' इति समूहाल-म्बने परामर्शलक्षणं गतम्, तद्वारणाय ' पक्षविशेष्यतानिरूपिता या प्रकारता, तन्निरूपिता या व्याप्तिनिष्ठप्रकारता, तच्छालि ज्ञानं प-रामर्शः ' इति निष्कर्षः ॥ एतादृशपरामर्शजन्यत्वे सति ज्ञानत्वम् अ-

१ प्रत्यक्षे. २ अतस्तद्वारणाय 'ज्ञानः' ३ व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानमिति-रयः तद्विशिष्टस्य पदस्य प्रकारपरत्वात्प्रकारतापरत्वात्. ५ पक्षधर्मता. ६ स-मासेन. ७ लगति. ८ हेतुनिष्ठप्रका.

नुमितेर्लक्षणम् ॥ अनुमितिपरामर्शयोर्विशिष्यकार्यकारणभावश्चेत्थम्—
'पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितसंयोगसंबन्धावच्छिन्नवह्नित्वावच्छि-
न्नविधेयताकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति वन्हिव्याप्तिप्रकारतानिरूपिता
या धूमवत्त्वावच्छिन्ना प्रकारता, तन्निरूपिता पर्वतत्वावच्छिन्ना विशे
ष्यता, तच्छालिनिर्णयः कारणम्' इति ॥ स च निर्णयः 'वन्हिव्या-
प्यधूमवान् पर्वतः' इत्याकारकः ॥

(पदकृ०) व्याप्तिविशिष्टेति ॥'विषयितासंबन्धेन व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मता-
ज्ञानं परामर्शः' इत्यर्थः ॥ घटादिज्ञानवारणाय 'पक्षधर्मता' इति । 'धूमवान्
पर्वतः' इति ज्ञानवारणाय 'व्याप्तिविशिष्ट–' इति ॥ तदिति ॥ 'परामर्शज-
न्यम्' इत्यर्थः ॥

'यत्रयत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः' इति साहचर्यनियमो व्याप्तिः ॥

(न्यायबो०) यत्रयत्रेति । यत्र पदे वीप्सावशाद्धूमाधिकरणे
यावति वह्निमत्त्वलाभात् यावत्पदमहिम्ना धूमव्यापकत्वं वन्हौ लब्धम्
[3]देवं स्पष्टयति—साहचर्यनियम इति ॥ एतदर्थस्तु 'नियतसाहचर्यं
याप्तिः'इति । नियतत्वं व्यापकत्वम् । साहचर्यं नाम सामानाधि-
रण्यम् तथाच 'धूमव्यापकवन्हिसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः' इत्यर्थः ॥
त्रि धूमव्यापकत्वं नाम धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिता-
वच्छेदकधर्मवत्त्वम् । तादृशधर्मो वन्हौ वन्हित्वम् । तथाहि—धूमाधि-
करणे ॥ पर्वतमहानसचत्वरादौ वर्तमानोऽभावः घटत्वावच्छिन्नप्रति-
योगिताकाभावो, न तु वन्हित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽभावः । कुतः—
र्वतादौ वन्हेः सत्त्वात् । एवं सति धूमाधिकरणे पर्वतादौ वर्तमानस्य
घटाभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकं घटत्वम्, पटाभावस्य प्रतियोगि-

१धूमपदं कुत्रचिन्नास्ति. २ लब्धमित्यस्यानन्तरं 'तथाच धूमव्यापकवह्निमत्' इत्यधिकः पाठः. ३ तदेवेत्यादिर्नियतत्वं व्यापकत्वमित्यन्तःपाठः कुत्रचिन्नास्ति. ४ धूमनियतवन्हिसामानाधिकरण्यं धूमव्यापक.- ५ अत्रेत्यादिः, अयमन्वय-व्याप्तिः सिद्धान्तानुसारेणेत्यन्तः पाठः कुत्रचिन्नास्ति. अत्रवन्हौ व्यापक-

तावच्छेदकं पटत्वम्, अनवच्छेदकं वन्हित्वम्, तादृशं वन्हित्वं वन्हौ वर्तते । अतो धूमव्यापकत्वं वन्हौ वर्तते, (तस्याधिकरणे पर्वतादौ वृत्तित्वं धूमे वर्तते) इति । इयमन्वयव्याप्तिः सिद्धान्तानुसारेण ॥ पूर्वपक्षीयव्याप्तिस्तु 'साध्याभाववदवृत्तित्वम्'—साध्यतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववन्निरूपितं यद्धेतुतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नवृत्तित्वम्, तादृशवृत्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावो व्याप्तिः ॥ तच्च केवलान्वयिन्यव्याप्तम्' इति सिद्धान्तानुसारेण लक्षणसमन्वयः ॥

(पदकृ०) यत्रयत्रेति ॥– 'तत्र तत्राग्निः' इति व्याप्तेरभिनयः । 'साहचर्यनियमः' इति लक्षणम् । 'सहचरति' इति सहचरः, तस्य भावः साहचर्यं सामानाधिकरण्यम्' इति यावत् । तस्य नियमो व्याप्तिरित्यर्थः । स चाव्यभिचरितत्वम्) तच्च व्यभिचाराभावः । व्यभिचारश्च साध्याभाववद्वृत्तित्वम् । तथा च साध्याभाववदवृत्तित्वं व्याप्तिरिति पर्यवसन्नम् ' महानसो वन्हिमान् धूमात्, इत्यादौ ' साध्यो वन्हिः, तदभाववाञ्जलन्हदादिः, तद्वृत्तित्वं नौकादौ, अवृत्तित्वं प्रकृते हेतुभूते धूमे ' इति कृत्वा लक्षणसमन्वयः ॥ ' धूमवान् वन्हेः ' इत्यादौ ' साध्यो धूमः, तदभाववत् अयोगोलकम्, तद्वृत्तित्वमेव वन्ह्यादौ ' इति नातिव्याप्तिः ॥

व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता

(पदकृ०) ननु ज्ञातेयं व्याप्तिः, 'पक्षधर्मताज्ञानम्' इत्यत्र 'का नाम पक्षधर्मता' इत्यपेक्षमाणं प्रति तत्स्वरूपं निरूपयति—व्याप्यस्येति ॥'व्याप्यो नाम व्याप्त्याश्रयः स च धूमादिरेव, तस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता ' इत्यर्थः

अनुमानं द्विविधम्—स्वार्थं परार्थं च ।

(पदकृ०) अथ ' कथमनुमानमनुमितिकरणम्, कथं वा तस्मादनुमितिजनिः ' इति जिज्ञासमानं प्रति, लाघवादनुमानविभागमुखेनैव बुबोधयिषुरनुमानं विभजते—अनुमानमिति ॥ द्वैविध्यं दर्शयति स्वार्थं परार्थं चेति ॥

१प्रतियोगिव्यधिकरणसाध्याभा २ द्रष्टव्यम्. ३ यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति.४ इत्यादि पर्यवसन्नमित्यन्तः पाठः क्वचिन्नास्ति.५व्याप्त्याश्रयज्ञानमनुमितिः ।

स्वार्थं स्वानुमितिहेतुः। तथाहि—स्वयमेव भूयोदर्शनेन 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निः' इति महानसादौ व्याप्तिं गृहीत्वा पर्वतसमीपं गतः, तद्गते चाग्नौ संदिहानः पर्वते धूमं पश्यन् व्याप्तिं स्मरति 'यत्र धूमस्तत्राग्निः' इति। तदनन्तरं 'वन्हिव्याप्यधूमवानयं पर्वतः' इति ज्ञानमुत्पद्यते। अयमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते। तस्मात् 'पर्वतो वन्हिमान्' इति ज्ञानमनुमितिरुत्पद्यते। तदेतत्स्वार्थानुमानम्॥

(न्यायबो०) स्वार्थानुमानं नाम न्यायाप्रयोज्यानुमानम्॥

(पदकृ०) स्वार्थमिति॥ स्वस्यार्थः प्रयोजनं यस्मात्तत्स्वार्थमिति समासः। स्वप्रयोजनं च स्वस्यानुमेयप्रतिपत्तिः॥ एवं 'परार्थम्' इत्यस्यापि। अयमिति॥ व्याप्तिबलेन लीनमर्थं गमयति, इति लिंगम्। तच्च धूमादिः। तस्य परामर्शो ज्ञानविशेष इत्यर्थः॥ तस्मादिति॥ लिङ्गपरामर्शादित्यर्थः॥ स्वार्थमुपसंहरति—तदेतदिति॥ यस्मादिदं स्वप्रतिपत्तिहेतुः, तस्मादेतत्स्वार्थानुमानमित्यर्थः॥

यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय परप्रत्ययार्थं[2] पञ्चावयववाक्यं प्रयुज्यते तत्परार्थानुमानम्। यथा 'पर्वतो अग्निमान्, धूमवत्त्वात्, यो यो धूमवान् स सोऽग्निमान् यथा महानसम्, तथा चायम्, तस्मात्तथा, इति। अनेन प्रतिपादिताल्लिंगात्परोऽप्यग्निं प्रतिपद्यते॥

(न्यायबो०) न्यायप्रयोज्यानुमानं परार्थानुमानम् न्यायत्वं च प्रतिज्ञादिपञ्चकसमुदायत्वम्॥ अवयवत्वं प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वम्॥

(पदकृ०) क्रमप्राप्तं परार्थानुमानमाह—यदिति॥ 'यत् पञ्चावयववाक्यं प्रयुज्यते, तत् परार्थानुपानम्' इति संबन्धः॥ पञ्चावयवेति॥ अथ अवय-

१ तस्मात् २ परप्रतिपत्त्यर्थं।

वत्वं नाम द्रव्यसमवायिकारणत्वम्, ' प्रतिज्ञादिषु तदसंभवात्कथमेतेऽवयवाः स्युः ' इति चेत् ॥ ' अनुमानवाक्यैकदेशत्वात्तु, अवयवाः' इत्युपचर्यन्ते इति गृहाण ॥ नन्वेवमपि पञ्चावयववाक्यस्यानुमानत्वमेव न विचारसहम् । तस्य लिङ्गपरामर्शत्वाभावात् ॥ इति चेत् ॥ मैवम् । लिङ्गपरामर्शप्रयोजकलिङ्गप्रतिपादकत्वेन ' अनुमानम् ' इत्युपचारमात्रत्वात् ॥ तदुदाहरति—यथेति ॥ तथा चायमिति ॥ ' अयं च पर्वतः तथा वह्निव्याप्यधूमवान् ' इत्यर्थः ॥ तस्मात्तथेति ॥ ' वन्हिव्याप्यधूमवत्त्वात् वन्हिमान् ' इत्यर्थः ॥ अनेनेति । 'अनेन पञ्चावयववाक्येन ' इत्यर्थः ॥

प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि पञ्चावयवाः। 'पर्वतोऽग्निमान् ' इति प्रतिज्ञा, ' धूमवत्त्वात्' इति हेतुः, 'यो यो धूमवान् ससोऽग्निमान्'—इत्युदाहरणम्, 'तथा चायम् ' इत्युपनयः, 'तस्मात्तथा' इति निगमनम् ॥

(पद०) ननु ' पञ्चावयववाक्यम् ' इत्यत्र के ते पञ्चावयवाः, अतस्तान्दर्शयति—प्रतिज्ञेति ॥ प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वम् अवयवत्वम् ॥ साध्यविशिष्टपक्षबोधकवचनं प्रतिज्ञा । पञ्चम्यन्तं तृतीयान्तं वा लिङ्गवचनं हेतुः ॥ व्याप्तिप्रतिपादकदृष्टान्तवचनम् उदाहरणम् । उदाहृतव्याप्तिविशिष्टत्वेन हेतोः पक्षधर्मताप्रतिपादकं वचनम् उपनयः । पक्षे साध्यस्याबाधितत्वप्रतिपादकवचनं निगमनम् ॥ इदमेव लक्षणं हृदि निधाय प्रतिज्ञादीन् विशिष्य दर्शयति—पर्वतो वन्हिमानित्यादिना ॥

स्वार्थानुमितिपरार्थानुमित्योर्लिङ्गपरामर्श एव करणम् । तस्माल्लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम् ॥

(पदकृ०) लिङ्गेति ॥ 'ज्ञायमानं लिङ्गमनुमितिकरणम् ' इति वृद्धोक्तं न युक्तम् । ' इयं यज्ञशाला वन्हिमती अतीतधूमात् ' इत्यादौ लिङ्गाभावेप्यनुमितिदर्शनात्—इत्यभिप्रायवान् ' लिङ्गपरामर्श एव करणम् ' इत्याचष्टे—'लि-

ङ्गपरामर्श एव ' इति। अनुमानमुपसंहरति—तस्मादिति ॥ अनुमितिकरणत्वादित्यर्थः ॥ ' अयमेव तृतीयज्ञानम् ' इत्युच्यते। तथाहि—महानसादौ धूमाग्न्योर्व्याप्तौ गृह्यमाणायां यद्धूमज्ञानं तदादिमम्, पक्षे यद्धूमज्ञानं तद्द्वितीयम्, अत्रैव वन्हिव्याप्यत्वेन यद्धूमज्ञानं तत्तृतीयम्, अयमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते॥ अनुमानमिति ॥ ' व्यापारवत्कारणं करणम् ' इति मते ' व्याप्तिज्ञानमेवानुमानम्, लिङ्गपरामर्शो व्यापारः' इत्यवसेयम् ॥

लिङ्गं त्रिविधम्—अन्वयव्यतिरेकि केवलान्वयि केवलव्यतिरेकि चेति ॥ अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकि ॥ यथा वन्हौ साध्ये धूमवत्त्वम्। ' यत्र धूमस्तत्राग्निः, यथा महानसम्' इत्यन्वयव्याप्तिः। ' यत्र वन्हिर्नास्ति तत्र धूमोपि नास्ति, यथा ह्रदः' इति व्यतिरेकव्याप्तिः ॥

(न्यायबो०) अन्वयेनेति ॥ व्यापकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिमानित्यर्थः ॥ व्यतिरेकेणेति ॥ व्यतिरेको नामाभावः। तथा च साध्याभावहेत्वभावयोर्व्यतिरेकव्याप्तिः। इयं (त्थं) च 'यत्र यत्र वह्न्यभावस्तत्र तत्र धूमाभावः' इति यत्र पदवीप्सया वह्न्यभाववति यावति धूमाभावग्रहणे यावत्पदस्य व्यापकपरतया धूमाभावे वह्न्यभावव्यापकत्वं लब्धम् ॥ एवं च वन्ह्यभावनिष्ठव्याप्तेः स्वाश्रयीभूतवन्ह्यभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वसंबन्धेन धूमनिष्ठतया गृहीतव्यतिरेकव्याप्तिमत्त्वेन व्यतिरेकित्वेन, धूमव्यापकवह्निसामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिमत्त्वेनान्वयित्वेन च गृह्यते ॥ व्यतिरेकपरामर्शस्तु ' वन्ह्यभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिधूमवान् पर्वतः' इत्याकारकः ॥

(पद०) अन्वयव्यतिरेकिणो लक्षणमाह--अन्वयेनेति ॥ तृतीयायाः प्रयोज्यत्वमर्थः। साध्यसाधनयोः साहचर्यमन्वयः, तदभावयोः साहचर्यं व्यति-

---

१ महानसम्. २ "मूलग्रन्थस्तु 'फलायोगव्यवच्छिन्नं कारणं करणम्' इति मतमवलम्ब्य इति बोध्यम्।

रेकः ॥ तथा च ' अन्वयप्रयोज्यव्याप्तिमद् व्यतिरेकप्रयोज्यव्याप्तिमद् अन्वयव्यतिरेकि ' इत्यर्थः ॥ केवलव्यतिरेकिव्याप्त्यतिव्याप्तिवारणाय ' अन्वयेन' इति । केवलान्वयिनि व्यभिचारवारणाय ' व्यतिरेकेण ' इति ॥ तथा च अन्वयव्याप्तिरुपदर्शितैव । व्यतिरेकव्याप्तिश्च ' साध्याभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वम् ' इत्यर्थः ॥ तदुक्तम्—

" व्याप्यव्यापकभावो हि भावयोर्यादृगिष्यते । तयोरभावयोस्तस्माद्विपरीतः प्रतीयते ॥ अन्वये साधनं व्याप्यं साध्यं व्यापकमिष्यते । साध्याभावोन्यथा व्याप्यो व्यापकः साधनात्ययः " इति ॥

अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि ॥ यथा—'घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात् पटवत्' इति। अत्र प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिर्नास्ति सर्वस्यापि प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च ॥

(न्यायबो०) व्यतिरेकव्याप्तिशून्यत्वे सति अन्वयव्याप्तिमत्त्वं केवलान्वयित्वम् ॥ साध्ये केवलान्वयित्वम् अत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वम् । तथाच ' अभावाप्रतियोगिसाध्यव्यापकत्वं' केवलान्वयिहेतोर्लक्षणम् ॥ एतल्लक्षणं हेतोर्व्यतिरेकित्वे[1] न संगच्छते । साध्ये केवलान्वयित्वादेव व्यतिरेकव्याप्तेरभावात् 'अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि' इति मूलकारोक्तलक्षणमुपपन्नम् ॥ अत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं केवलान्वयित्वम् ॥ नच 'एवं संयोगाभावे कालाभावे चाव्याप्तिः'[2] इति वाच्यम् ॥ स्वविरोधिवृत्तिमदत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वस्य तदर्थत्वात् ॥ 'एकजातीयसंबन्धेन सर्वत्र विद्यमानत्वं केवलान्वयित्वम्' इति नव्याः

(पदकृ०) केवलान्वयिनो लक्षणमाह—अन्वयेति ॥ अन्वयेनैव व्याप्तिर्यस्मिन्स तथा ॥ प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिं निराकरोति—अत्रेति ॥ ' अभिधेयत्वसाधकानुमाने ' इत्यर्थः ॥ ननु कुतस्तन्निषेधः, अतस्तत्र हेतुमाह—सर्वस्येति ॥ पदार्थमात्रस्येत्यर्थः ॥ तथा च सकले पदाभिधेयत्वस्ये[illegible]

---

१ व्यतिरेकिशून्यत्वे सति संगच्छते. २ इति नाव्याप्तिः

रप्रमाविषयत्वस्य चात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वरूपकेवलान्वयित्वेन तदभावाप्रसिद्ध्या तद्घटितव्यतिरेकव्याप्तिर्न संभवत्येवेति भावः ॥

व्यतिरेकमात्रव्याप्तिकं केवलव्यतिरेकि ॥ यथा—पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात् । यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवत् यथा जलम् । न चेयं तथा । तस्मान्न तथेति । अत्र 'यद्गन्धवत्तदितरेभ्योऽपि भिन्नम्' इत्यन्वयदृष्टान्तो नास्ति, पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात् ॥

(न्यायबो०) अन्वयव्याप्तिशून्यत्वे सति व्यतिरेकव्याप्तिमत्त्वं केवलव्यतिरेकित्वम् ॥ यथा पृथिवीति ॥ अत्र " पृथिवीत्वावच्छिन्नं पक्षः, पृथिवीतरजलाद्यष्टभेदः साध्यः,गन्धवत्त्वं हेतुः।अत्र'यद्गन्धवत् तदितरभेदवत् इत्यन्वयदृष्टान्ताभावात् गन्धव्यापकेतरभेदसामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिग्रहासंभवात् । किन्तु ' यत्र यत्रेतरभेदाभावस्तत्र तत्र गन्धाभावः यथा जलादिकम्' इति व्यतिरेकदृष्टान्तभूतजलादावितरभेदाभावरूपसाध्याभाव[1]व्यापकता गन्धाभावे दृश्यते । इदमेवार्थं मनसि निधाय ' यन्नेतरेभ्यो भिद्यते न तद्गन्धवत् यथा जलम्' इति ग्रन्थेन मूलकृ[2]द्व्यतिरेकव्याप्तिमेव प्रदर्शितवान् ॥ एवं व्यतिरेकव्याप्तिग्रहानन्तरम् ' इतरभेदाभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिगन्धवती पृथिवी' इत्याकारकव्यतिरेकिपरामर्शात् ' पृथिवीत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितेतरभेदत्वावच्छिन्नविधेयताका पृथिवी इतरभेदवती' इत्याकारानुमितिर्जायते " इति तत्त्वम् ॥ यथाश्रुतमूलार्थस्तु—यथा जलमिति ॥ जलमितरभेदाभाववत् = ' इतरभेदाभावव्यापकगन्धाभाववच्च' इत्येवं प्रकारेण गन्धाभावनिरूपिता व्याप्यता इतरभेदाभावे गृह्यते' इत्यर्थः ॥ नचेयं तथेति । ई[3]यं पृथ्वी, तथा इतरभेदाभावव्यापकगन्धाभाववती न, किंतु त[4]दभावगन्धवती, इत्यर्थः ॥

---

१ अभावपदं कुत्रचिन्न. २ मूलकारो. ३ इयं पृथ्वी. तथा नाम । इति कुत्रनास्ति ४ तदभाववती नाम गन्धव.

तस्मान्न तथेति॥ तच्छब्देन गन्धाभावाभावरूपस्य गन्धस्य परामर्शेन 'तस्मात्' इति पञ्चम्यन्तात् 'गन्धाभावाभाववत्त्वात्' इत्यर्थोपलब्धेः, तथा इतरभेदाभाववती । 'न' इत्यस्याभावः, तथा च 'इतरभेदाभावाभाववती =इतरभेदवती' इत्यर्थः ॥

(पदकृ०) केवलव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—व्यतिरेकेति ॥ व्यतिरेकेणैव व्याप्तिर्यस्मिंस्तत्तथा ॥ अन्वयव्यतिरेकिणि अतिव्याप्तिवारणाय मात्रपदम्' नचेयं तथेति ॥ 'इयं पृथिवी न तथा न गन्धाभाववती' इत्यर्थः ॥ तस्मान्न तथेति ॥ 'गन्धाभाववत्त्वाभावादितरभेदाभाववती न, इत्यर्थः ॥ ननु 'अत्र किमिति नान्वयव्याप्तिः' इत्याशङ्क्य परिहरति—अत्रेति ॥ 'इतरभेदसाधकानुमाने' इत्यर्थः इदमुपलक्षणम्—"जीववच्छरीरं सात्मकं, प्राणादिमत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा घटः" "प्रत्यक्षादिकं 'प्रमाणम्' इति व्यवहर्तव्यम्,प्रमाकरणत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यदि प्रत्यक्षभावः" "विवादास्पदम् आकाशम् इति व्यवहर्तव्यम्, शब्दवत्त्वात्" इत्यादिकमपि केवलव्यतिरेकि इति द्रष्टव्यम् ।

संदिग्धसाध्यवान् पक्षः । यथा—धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः॥

(न्यायबो०) संदिग्धसाध्येति ॥ साध्यप्रकारकसंदेहविशेष्यत्वं पक्षत्वम् ॥ एतच्च 'अनुमितेः पूर्वं साध्यसंदेहो नियमेन जायते' इत्यभिप्रायेण लक्षणं प्राचीनैः कृतम् ॥ गगनविशेष्यकसंदेहाभावदशायामपि गृहमध्यस्थपुरुषस्य घनगर्जितश्रवणेन 'गगनं मेघवत्' इत्याकारानुमितिर्जायते गगनत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितमेघत्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितिदर्शनात् प्राचीनमतं विहाय नवीनैः "अनुमित्युद्देश्यत्वं पक्षत्वम्" इति स्थिरीकृतम् ॥

(पदकृ०) अथ 'पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात्' इत्यत्र किं नाम पक्षता, तां निर्वक्ति—संदिग्धेति ॥ सपक्षवारणाय संदिग्धेति ॥

निश्चितसाध्यवान् सपक्षः । यथा तत्रैव महानसम्॥

---

१ गन्धाभावाभावान्नाम गन्धवत्त्वात् २इत्यर्थो लभ्यः ३ मात्रेति४मेघप्रकारके-त्यधिकम्

(न्यायबो०) निश्चितसाध्येति ॥ साध्यप्रकारकनिश्चयविशेष्यत्वं सपक्षत्वम् ॥ निश्चयश्च, महानसं वन्हिवत् , इत्याकारकः ॥

(पदकृ०) निश्चितेति ॥ पक्षे अतिव्याप्तिवारणाय निश्चितेति । तत्रेति 'धूमवत्त्वे हेतौ' इत्यर्थः ॥

निश्चितसाध्याभाववान् विपक्षः । यथा तत्रैव ह्रदः ॥

(न्यायबो०) निश्चितसाध्याभावेति ॥ साध्याभावप्रकारकनिश्चयविशेष्यत्वं विपक्षत्वम् ॥ निश्चयश्च 'ह्रदो वन्ह्यभाववान्, इत्याकारकः

(पदकृ०) निश्चितेति ॥ सपक्षे अतिव्याप्तिवारणाय 'साध्याभाव' इति ॥ पक्षे अतिव्याप्तिवारणाय 'निश्चित' इति । तत्रैवेति धूमवत्त्व एव ॥

सव्यभिचारविरुद्धसत्प्रतिपक्षासिद्धबाधिताः पञ्च हेत्वाभासाः ॥

(न्यायबो०) एवं सद्धेतून्निरूप्य हेत्वाभासान्निरूपयति—सव्यभिचारेति ॥ हेतुवदाभासन्त इति हेत्वाभासा दुष्टहेतवः, इत्यर्थः । दोषाश्च व्यभिचारविरोधसत्प्रतिपक्षासिद्धिबाधाः । एतद्विशिष्टा हेतवो दुष्टहेतव इत्यर्थः ॥ हेतौ दोषज्ञाने सत्यनुमितिप्रतिबन्धो जायते व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धो वा भवति ॥ अतो वादिनिग्रहार्थं वादिनोद्भाविते हेतौ दोषोद्भावनार्थं दुष्टहेतुनिरूपणमित्यर्थः ॥ 'पर्वतो वन्हिमान् प्रमेयत्वात्' इत्यत्र प्रमेयत्वहेतौ वह्न्यभाववद्वृत्तित्वरूपव्यभिचारे ज्ञाते वन्ह्यभाववद्वृत्तित्वरूपव्याप्तिग्रहप्रतिबन्धः फलम् ॥

(पदकृ०) हेतून्निरूप्य प्रसङ्गाद्धेत्वाभासानाह—सव्यभिचारेति ॥ अत्रेदं बोध्यम् । "अन्वयव्यतिरेकि तु पञ्चरूपोपपन्नं स्वसाध्यं साधयितुं क्षमते । 'तानि कानि' इति चेत् श्रूयताम्—पक्षधर्मत्वम्, सपक्षसत्त्वम्, विपक्षव्यावृत्तिः, अबाधितविषयत्वम्, असत्प्रतिपक्षत्वं चेति । अबाधितः साध्यरूपविषयो यस्य तत्तथोक्तम् , तस्य भावस्तत्त्वम् , एवं साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स 'सत्प्रतिपक्ष'इत्युच्यते,स नास्ति यस्य सः असत्प्रतिपक्षः, 'तस्य भावस्तत्त्वम्' (इति बोध्यम्) केवलान्वयि तु चतूरूपोपपन्नमेव स्वसाध्यं साध-

---

१ जायते २ ज्ञायताम्

यितुं क्षमते । तस्य विपक्षविपर्ययेण तद्व्यावृत्तिविपर्ययात् ॥ केवलव्यतिरेक्यपि तथा तस्य सपक्षविपर्ययेण तत्सत्त्वविपर्ययात् " इति ॥ उपदर्शितरूपाणां मध्ये कतिपयरूपोपपन्नत्वात् 'हेतुवदाभासन्ते' इति हेत्वाभासाः । तत्त्वं च अनुमितितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वम् ॥ बाधस्थले 'वन्हिरनुष्ण-' इत्यनुमितिप्रतिबन्धकं यज्ज्ञानम् 'उष्णत्ववद्वह्नावनुष्णत्वसाधकं द्रव्यत्वम्' इत्याकारकम्, तद्विषयत्वस्य विषयितासंबन्धेन द्रव्यत्वरूपहेत्वाभासे सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः ॥ सद्धेतुवारणाय 'यथार्थ' इति घटादिवारणाय 'अनुमितितत्करणप्रतिबन्धक' इति । व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिवारणाय 'अनुमितितत्करणान्यतर' इति ॥

सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः । स त्रिविधः—साधारणासाधारणानुपसंहारिभेदात् ॥ तत्र साध्याभाववद्वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः । यथा 'पर्वतोऽग्निमान् प्रमेयत्वात्' इति । प्रमेयत्वस्य वन्ह्यभाववति ह्रदे विद्यमानत्वात् ॥

(पदकृ०) तत्रेति ॥ 'साधारणादित्रयमध्ये' इत्यर्थः अथ 'विरुद्धेऽतिप्रसक्तिः' इति मा स्म दृप्यः । सपक्षवृत्तित्वस्यापि निवेशात् ॥ अयमपि स्वरूपासिद्धे दूषणं जागर्ति, इति मा वह गर्वम् पक्षवृत्तित्वस्यापि तथात्वात् ।

सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तः पक्षमात्रवृत्तिरसाधारणः । यथा 'शब्दो नित्यः शब्दत्वात्' इति । शब्दत्वं सर्वेभ्यो नित्येभ्योऽनित्येभ्यो व्यावृत्तं शब्दमात्रवृत्ति ॥

(न्यायबो०) असाधारण इति ॥ सर्वसपक्षव्यावृत्तत्वं निश्चितसाध्यवदवृत्तित्वम् । साध्यवदवृत्तित्वं च साध्यासामानाधिकरण्यम् ॥ हेतौ साध्यासामानाधिकरण्ये निश्चिते साध्यसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम् ॥

(पदकृ०) पक्षमात्रेति ॥ सर्वे ये सपक्षा विपक्षास्तेभ्यो व्यावर्तत इति व्यावृत्तः ॥ केवलव्यतिरेकिवारणाय 'तद्भिन्नः' इत्यपि देयम् ॥

---

१ सपक्षविपक्ष- २ निश्चितसाध्यसाध्याभाववद्-

अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी । यथा-'सर्वमनित्यं प्रमेयत्वात्' इति । अत्र सर्वस्यापि पक्षत्वाद्दृष्टान्तो नास्ति॥

(न्यायबो०) अनुपसंहारिणं लक्षयति—अन्वयेति ॥ उभयत्र दृष्टान्ताभावादन्वयव्याप्तिज्ञानव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानोभयसामग्री नास्तीत्यर्थः पक्षातिरिक्ताप्रसिद्धेरित्यर्थः ॥

(पदकृ०) अन्वयेति ॥ केवलान्वयिन्यतिव्याप्तिवारणाय 'अन्वय' इति। केवलव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिवारणाय 'व्यतिरेक' इति ॥ अत्रेति ॥ 'उपदर्शितानुमाने' इत्यर्थः ॥

साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः । यथा 'शब्दो नित्यः कृतकत्वात्' इति । कृतकत्वं हि नित्यत्वाभावेनानित्यत्वेन व्याप्तम् ॥

(न्यायबो०) विरुद्धं लक्षयति—साध्याभावव्याप्त इति ॥ तथा च पक्षविशेष्यकसाध्याभावव्याप्यहेतुप्रकारकज्ञानात् पक्षविशेष्यकसाध्यप्रकारकानुमितिप्रतिबन्धः फलम् ॥ एवं सत्प्रतिपक्षेऽपि ॥ विरुद्धसत्प्रतिपक्षयोर्विशेषस्तु—विरुद्धहेतोरेकत्वेन सत्प्रतिपक्षहेतोर्द्वित्वेन च ज्ञातव्यः । 'सत्प्रतिपक्षे द्वौ हेतू, विरुद्ध एको हेतुः' इति यावत् ॥ 'साध्याभावसाधकहेतुः साध्यसाधकत्वेनोपन्यस्तः,इत्यसामर्थ्यसूचनमपि भवति ॥

(पदकृ०) विरुद्धं लक्षयति—साध्येति ॥ सद्धेतुवारणाय 'साध्याभावव्याप्तः' इति । सत्प्रतिपक्षवारणाय 'सत्प्रतिपक्षाभिन्नः इत्यपि ज्ञेयम् ॥ कृतेति ॥ कार्यत्वादित्यर्थः ॥ कृतकत्वमिति ॥ अनित्यत्वेन । व्याप्तमिति ॥ 'यद्यत्कृतकं तत्तदनित्यम्' इति व्याप्तेर्भवत्येव तथेति भावः ॥

साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्षः । यथा 'शब्दो नित्यः श्रावणत्वाच्छब्दत्ववत् , शब्दो नित्यः कार्यत्वात् घटवत्' ॥

१सर्वस्यैव पक्षत्वात्पक्षाति- २ भेदः। इतोऽग्रेतन पाठः कुत्रचिन्नास्ति। ३बोध्यम्।

(पदकृ०) सत्प्रतिपक्षं लक्षयति—साध्येति ॥ 'यस्य हेतोः साध्याभावसाधकं साध्याभावस्यानुमापकं हेत्वन्तरं प्रतिपक्षो हेतुर्विद्यते, स हेतुः सत्प्रतिपक्षः' इत्यर्थः ॥ अयमेव 'प्रकरणसमः' इत्युच्यते ॥ विरुद्धवारणाय 'हेत्वन्तरं यस्य' इति ॥ वन्ह्यादिवारणाय 'साध्याभाव-' इति ॥

असिद्धस्त्रिविधः—आश्रयासिद्धः स्वरूपासिद्धो व्याप्यत्वासिद्धश्चेति ॥

(पदकृ०) असिद्धं विभजते—असिद्ध इति ॥ आश्रयासिद्धाद्यन्यतमत्वमसिद्धम् ॥

आश्रयासिद्धो यथा—गगनारविन्दं सुरभि अरविन्दत्वात् सरोजारविन्दवत् । अत्र गगनारविन्दमाश्रयः, सच नास्त्येव ॥

(न्यायबो०) आश्रयासिद्ध इति ॥ (आश्रयासिद्धिर्नाम) पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षाप्रसिद्धिः । यथा (तथाच) –गगनीयत्वविशिष्टपक्षासिद्धेः सौरभ्यानुमितिर्न भवति ॥

(पदकृ०) आश्रयासिद्धत्वं च पक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षकत्वम् ॥ भवति हि अरविन्दे गगनीयत्वरूपपक्षतावच्छेदकाभाववत्त्वम्, अरविन्दरूपपक्षे गगनीयत्वविरहात् ॥ ननु कथमरविन्दे गगनीयत्वविरहोऽत आह—अत्रेति ॥ उपदर्शितानुमान इत्यर्थः ॥

स्वरूपासिद्धो यथा-शब्दो गुणः, चाक्षुषत्वात् रूपवत् । अत्र चाक्षुषत्वं शब्दे नास्ति शब्दस्य श्रावणत्वात् ॥

(न्यायबो०) स्वरूपासिद्धिर्नाम पक्षे हेत्वभावः । तथा च हेत्वभावविशिष्टपक्षज्ञानात् पक्षविशेष्यकहेतुप्रकारकपरामर्शानुपपत्त्या परामर्शप्रतिबन्धः फलम् ॥

(पदकृ०) पक्षे हेत्वभावः स्वरूपासिद्धिः ॥ सद्धेत्वभावे ऽतिव्याप्तिवारणाय 'पक्षे' इति । घटाद्यभाववारणाय 'हेतु' इति ॥ "सो ऽयं स्वरूपासिद्धः

शुद्धासिद्ध—भागासिद्ध—विशेषणासिद्ध—विशेष्यासिद्ध—भेदेन चतुर्विधः॥ तत्राद्यस्तूपदर्शित एव॥ द्वितीयो यथा—'उद्भूतरूपादिचतुष्टयं गुणः रूपत्वात्' इत्यत्र रूपत्वहेतोः पक्षैकदेशावृत्तित्वेन भागे स्वरूपासिद्धत्वम् ॥ तृतीयो यथा—'वायुः प्रत्यक्षः रूपत्वे सति स्पर्शवत्त्वात्' इत्यत्र रूपवत्त्वविशेषणस्य वायाववृत्तेस्तद्विशिष्टस्पर्शवत्त्वस्यापि तथात्वेन तस्य स्वरूपासिद्धत्वं निर्वहति, विशेषणाभावे विशिष्टस्याप्यभावात् ॥ तुरीयो यथा—अत्रैव विशेषणविशेष्यवैपरीत्येन हेतुः, तस्य स्वरूपासिद्धत्वं विशेष्याभावप्रयुक्तविशिष्टाभावात्' इति बोध्यम् ॥

सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धः॥साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वम् उपाधिः ॥ साध्यसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं साध्यव्यापकत्वम्॥साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वम्॥पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वात्' इत्यत्र 'आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। 'यत्र धूमः,तत्रार्द्रेन्धनसंयोगः' इति साध्यव्यापकता। 'यत्र वह्निः' तत्रार्द्रेन्धनसंयोगो नास्ति, अयोगोलक आर्द्रेन्धनाभावात्' इति साधनाव्यापकता। एवं साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वादार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः । सोपाधिकत्वाद्वह्निमत्त्वं व्याप्यत्वासिद्धम् ॥

(न्यायबो०) व्याप्यत्वासिद्धमिति ॥ प्रकृते धूमव्यापकत्वमार्द्रेन्धनसंयोगे गृहीतं चेत्, धूमे आर्द्रेन्धनसंयोगव्याप्यत्वं गृहीतम् । एवं वह्निव्यापकत्वमार्द्रेन्धनसंयोगे गृहीतं चेत्; वन्हौ तदव्याप्यत्वं गृहीतम्, तदेव व्यभिचारित्वं ॥ तथा चोपाधिव्यभिचारित्वं साधने गृहीतं चेत् उपाधिभूतार्द्रेन्धनसंयोगव्याप्यधूमव्यभिचारित्वं गृहीतमेव ॥ अनुमानप-

---

१ बहुविधः । २ संयोगस्य ।

कारश्च पूर्वानुमानहेतुं पक्षीकृत्य ' वह्निर्धूमव्यभिचारी धूमव्यापकार्द्रेन्धन-संयोगव्यभिचारित्वात् घटत्वादिवत्, । यो यत्साध्यव्यापकव्यभिचारी स सर्वोऽपि साध्यव्यभिचारी । एवं प्रकारेण प्रकृतानुमानहेतुभूते पक्षे साध्यव्यभिचारोत्थापकतया दूषकत्वमुपाधेः । तथा च धूमाभाववद्वृत्ति-त्वरूपधूमव्यभिचारे गृहीते वन्हौ धूमाभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिग्रहप्रति-बन्धः फलम् ॥

(पदकृ०) व्याप्यत्वासिद्धं लक्षयति—'सोपाधिकः' इति ॥ ननु 'कोयमुपाधिः, इत्यत आह—साध्येति ॥ 'साधनाव्यापकत्वमुपाधिः' इत्युक्ते 'शब्दो नित्यः कृतत्वात् ' इत्यत्र 'सामान्यवत्त्वे सत्यस्मदादिबाह्येन्द्रियग्रहणार्हत्वम्' उपाधिः स्यात्, तदर्थं साध्यव्यापकत्वमुक्तम् ॥ तावत्युक्ते सामान्यवत्त्वादिना ऽनित्यत्वसाधने कृतकत्वमुपाधिः स्यात्, तदर्थं साधनाव्यापकत्वमुक्तम् ॥ उपाधिभेदमादायासंभववारणाय व्यापकत्वशरीरेऽप्यत्यन्तपदमादेयम् ॥ साधनभेदमादाय साधनस्योपाधित्ववारणायाव्यापकशरीरेऽप्यत्यन्तपदमावश्यकं देयम् ॥ "सोऽयमुपाधिस्त्रिविधः—केवलसाध्यव्यापकः, पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः, साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकश्चेति ॥ तत्राद्य उपदर्शितः ॥ एवं 'क्रत्वन्तर्वर्तिनी हिंसा ऽधर्मजनिका हिंसात्वात् क्रतुबाह्यहिंसावत्' इत्यत्र निषिद्धत्वमुपाधिः । तस्य 'यत्राधर्मजनकत्वम्, तत्र निषिद्धत्वम्' इति साध्यव्यापकता । 'यत्र हिंसात्वम्, तत्र न निषिद्धत्वम्' इति निषिद्धत्वमुपाधिः साधनाव्यापकः, क्रतुहिंसायां निषिद्धत्वस्याभावात् । "न हिंस्यात्सर्वा भूतानि" इति सामान्यवाक्यतः "पशुना यजेत" इत्यादिविशेषवाक्यस्य बलीयस्त्वात् । अतो हिंसात्वं नाधर्मजनकत्वे प्रयोजकम्, अपितु 'निषिद्धत्वमेव' इत्यादिकमपि द्रष्टव्यम् ॥ द्वितीयो यथा—'वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वात्' इत्यत्रोद्भूतरूपवत्त्वम् उपाधिः । तस्य 'यत्र प्रत्यक्षत्वम्, तत्रोद्भूतरूपवत्त्वम्, इति न केवलसाध्यव्यापकत्वं रूपे व्यभिचारात् किंतु 'द्रव्यलक्षणो यः पक्षधर्मस्तदवच्छिन्नबहिःप्रत्यक्षत्वं यत्र, तत्रोद्भूतरूपवत्त्वम्' इति

---

१ इदं कुत्रचिन्नास्ति । २ अत्रायमधिक पाठः 'यथा घटत्वव्यापकपृथिवीत्वव्यभिचारिद्रव्यत्वं घटत्वव्यभिचारि' इति । ३ फलमित्यधिकम् ।

पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव । आत्मनि व्यभिचारवारणाय बहिःपदम् । 'यत्र प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वम्' तत्र नोद्भूतरूपवत्त्वम्' इति साधनाव्यापकत्वं च । वायावुद्भूतरूपविरहात् ॥ तृतीयो यथा—'प्रागभावो विनाशी जन्यत्वात्' इत्यत्र भावत्वम् उपाधिः । तस्य 'यत्र विनाशित्वम्, तत्र भावत्वम्' इति न केवलसाध्यव्यापकत्वम्, प्रागभावे भावत्वविरहात् । किंतु 'जन्यत्वरूपसाधनावच्छिन्नविनाशित्वं यत्र, तत्र भावत्वम्' इति साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेवास्ति । 'यत्र जन्यत्वम्, तत्र भावत्वम्' इति साधनाव्यापकत्वं च, ध्वंसे भावत्वविरहात् ॥ एवं 'स श्यामो मित्रातनयत्वात्' इत्यत्र शाकपाकजन्यत्वमुपाधिः । श्यामत्वस्य नीलघटेऽपि सत्त्वात् न केवलसाध्यव्यापकत्वम् । किंतु साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव । अष्टमे पुत्रे शाकपाकजन्यत्वविरहेण साधनाव्यापकत्वं च" इत्यादिकं द्रष्टव्यम् ॥

यस्य साध्याभावः प्रमाणेन[1] निश्चितः स बाधितः । यथा 'वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वात्' इत्यत्रानुष्णत्वं साध्यम्, तदभावउष्णत्वं स्पर्शेन प्रत्यक्षेण गृह्यते इति बाधितत्वम् ॥

व्याख्यातमनुमानम्

(न्यायबो०) यस्येति ॥ यस्य हेतोः । साध्यस्याभावः साध्याभावः स च प्रमाणेन प्रत्यक्षप्रमाणेन निश्चितः ॥ तथा च प्रात्यक्षिकसाध्याभावनिश्चयेनानुमितिप्रतिबन्धः फलम्॥ बाधितसाध्यकत्वाद्बाधितो[3] हेतुरुच्यते॥

(पदकृ०) यस्येति ॥ सद्धेतुवारणाय 'प्रमाणान्तरेण' इति । घटादिवारणाय 'साध्य' इति ॥

इत्यनुमाननिरूपणम् ॥

उपमितिकरणमुपमानम् ॥ संज्ञासंज्ञिसंबन्धज्ञानमुपमितिः । तत्करणं सादृश्यज्ञानम् । तथाहि—कश्चिद्गवयपदार्थमजान-

---

१ प्रमाणान्तरेण । २ प्रमाणान्तरेण निर्णीतः । ३ इदं कुत्रचिन्नास्ति ।

न् कुतश्चिदारण्यकपुरुषाद् 'गोसदृशो गवयः' इति श्रुत्वा वनं गतो वाक्यार्थं स्मरन् गोसदृशं पिण्डं पश्यति तदनन्तरं 'गवयशब्दवाच्यो ऽयम्' इत्युपमितिरुत्पद्यते ॥

(न्यायबो०) उपमानं लक्षयति—उपमितीति ॥ उपमितिं लक्षयति—संज्ञासंज्ञीति ॥ संज्ञा[1] पदम्, संज्ञ्यर्थः[2], तयोः संबन्धः शक्तिः । तथा च 'पदपदार्थसंबन्धज्ञानमुपमितिः' इत्यर्थः । उपमानमतिदेशवाक्यार्थज्ञानम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणं व्यापारः । 'गोसदृशो गवयपदवाच्यः' इत्याकारकात्[3] गोसदृशत्वावच्छिन्नविशेष्यकगवयपदवाच्यत्वप्रकारकज्ञानं जायते, तदेव करणम् ॥

(पदकृ०) अवसरसंगतिमभिप्रेत्यानुमानानन्तरम् उपमानं निरूपयति—उपमितीति ॥ उपमितेः करणमुपमानमित्यर्थः ॥ कुठारादिवारणाय 'मिति' इति ॥ प्रत्यक्षादिवारणाय 'उप' इति ॥ संज्ञासंज्ञीति ॥ अनुमित्यादिवारणाय 'संबन्ध' इति । संयोगादिवारणाय 'संज्ञासंज्ञि' इति ॥ 'अयं गवयवाच्यः' इति । 'अभिप्रेतगवयो गवयपदवाच्यः' इत्यर्थः ॥ तेन 'गवयान्तरे शक्तिग्रहाभावप्रसङ्गः' इति दूषणमपास्तम् ॥ तथा च गोसादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानं करणम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणमवान्तरव्यापारः । उपमितिः फलम्, इति सारम् ॥ तच्चोपमानं त्रिविधम्—सादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानम्, असाधारणधर्मविशिष्टपिण्डज्ञानम्, वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञानं च ॥ तत्राद्यमुक्तमेव ॥ द्वितीयं यथा– 'खड्गी मृगः कीदृक्' इति पृष्टे 'नासिकालसदेकशृङ्गोऽनतिक्रान्तगजाकृतिश्च' इति तज्ज्ञातृभ्यः श्रुत्वा कालान्तरे तादृशपिण्डं पश्यन्नतिदेशवाक्यार्थं स्मरति, तदनंतरं 'खड्गमृगः खड्गपदवाच्यः' इत्युपमितिरुत्पद्यते', अत्र 'नासिकालसदेकशृङ्गः' इत्यसाधारणधर्मः ॥ तृतीयं यथा—उष्ट्रः कीदृक्' इति पृष्टे 'अश्वादिवदसमानपृष्ठो न ह्रस्वग्रीवशरीरश्च' इति आप्तोत्तरिते कालान्तरेण तत्पिण्डदर्शनाद्वैधर्म्यविशिष्टपि-

१ संज्ञा नाम । २ संज्ञीपदार्थः । ३ इत्याकारकवाक्यात् ।

ण्डज्ञानम्, ततो ऽतिदेशवाक्यार्थस्मरणम्, ततः 'उष्ट्र उष्ट्रपदवाच्यः' इत्युपमितिरुत्पद्यते॥

इत्युपमाननिरूपणम् ॥

आप्तवाक्यं शब्दः ॥ आप्तस्तु यथार्थवक्ता ॥ वाक्यं पदसमूहः । यथा—'गामानय' इति ॥ शक्तं पदम् ॥ 'अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्यः' इतीश्वरसंकेतः शक्तिः ॥

(न्यायबो०) शब्दं लक्षयति—आप्तेति ॥ पदज्ञानं कारणम् । वृत्तिज्ञानसहकृतपदज्ञानजन्यपदार्थोपस्थितिर्व्यापारः। वाक्यार्थज्ञानं फलम्, तच्छाब्दबोधः ॥ वृत्तिर्नाम शक्तिलक्षणान्यतररूपा ॥ शक्तिर्नाम घटादिविशेष्यकघटादिपदजन्यबोधविषयत्वप्रकारक ईश्वरसंकेतः ॥ ईश्वरसंकेतो नामेश्वरेच्छा । सैव शक्तिरित्यर्थः ॥ शक्तिनिरूपकत्वमेव पदे शक्तत्वम्॥ विषयतासंबन्धेन शक्त्याश्रयत्वं शक्यत्वम् ॥ शक्यसंबन्धो लक्षणा ॥ सा द्विधा—गौणी शुद्धा चेति ॥ गौणी नाम सादृश्यविशिष्टलक्षणा॥ यथा—'सिंहो माणवकः' इत्यादौ सिंहपदस्य सिंहसादृश्यविशिष्टे लक्षणा॥शुद्धाऽपि द्विविधा—जहल्लक्षणा अजहल्लक्षणा चेति ॥ लक्ष्यतावच्छेदकरूपेण लक्ष्यमात्रबोधप्रयोजिका जहल्लक्षणा ॥ यथा 'गङ्गायां घोषः' इत्यत्र गङ्गापदवाच्यप्रवाहसंबन्धस्य तीरे सत्त्वात्तादृशशक्यसंबन्धरूपलक्षणाज्ञाना[1]त् गङ्गापदात्तीरोपस्थितिः ॥ लक्ष्यतावच्छेदकरूपेण लक्ष्यशक्योभयबोधप्रयोजका[2] अजहल्लक्षणा ॥ यथा—'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' इत्यत्र काकपदस्य दध्युपघातके लक्षणा ॥ लक्ष्यतावच्छेदकत्वं दध्युपघातकत्वे तेन रूपेण दध्युपघातकानां काकबिडालकुक्कुरा[3]दीनां शक्यलक्ष्याणां सर्वेषां बोधात् ॥ जहदजहल्लक्षणा वेदान्तिमते ॥

(पदकृ०) अवसरसंगतिमभिप्रेत्योपमानानन्तरं शब्दं लक्षयति[4]—आप्तेति ॥ शब्द इति ॥ शब्दप्रमाणमित्यर्थः ॥ भ्रान्तविप्रलम्भकयोर्वाक्यस्य शा-

१ तत्त्वात् । २प्रयोजकलक्षणा अज ।३ कुक्कुटसारमेयादीनाम् । ४ दर्शयति । निरूपयति ।

ब्दप्रमाणत्ववारणाय ' आप्त ' इति ॥ ननु ' कोऽयमाप्तः ' इत्यत आह- आप्तस्त्विति ॥ यथार्थवक्ता यथाभूताबाधितार्थोपदेष्टा ॥ वाक्यं लक्षयति- वाक्यमिति । घटादिसमूहवारणाय ' पद ' इति । शक्तमिति ॥ ' निरूपक तासंबन्धेन शक्तिविशिष्टम् ' इत्यर्थः ॥ अस्मादिति ॥ 'घटपदाद्घटरूपोऽर्थो बोद्धव्यः' इतीश्वरेच्छैव शक्तिः' इत्यर्थः ॥ अर्थस्मृत्यनुकूलपदपदार्थसंबन्ध- त्वं तल्लक्षणम् ॥ शक्तिरिव लक्षणाऽपि पदवृत्तिः ॥ अथ केयं लक्षणा—शक्य- संबन्धो लक्षणा ॥ सा च त्रिधा—जहदजहज्जहदजहद्भेदात् ॥ वर्तते च ' गङ्गा- यां घोषः' इत्यत्र गङ्गापदशक्यप्रवाहसंबन्धस्तीरे ॥ लक्षणाबीजं च तात्प- र्यानुपपत्तिः ॥ अत एव प्रवाहे घोषतात्पर्यानुपपत्तेस्तीरे लक्षणा सेत्स्यति ॥ ' छत्रिणो यान्ति ' इत्यादौ द्वितीया ॥ ' सोऽयमश्वः ' इत्यादौ तृतीया ॥

आकाङ्क्षा योग्यता संनिधिश्च वाक्यार्थज्ञाने हेतुः ॥ पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्तान्वयाननुभावकत्वमाकाङ्क्षा॥ अर्था- बाधो योग्यता ॥ पदानामविलम्बेनोच्चारणं संनिधिः ॥ तथा चाकाङ्क्षादिरहितं वाक्यमप्रमाणम् । यथा—'गौरश्वः पुरु- षो हस्ती, इति न प्रमाणम् ,आकाङ्क्षाविरहात् । ' वह्नि- ना सिञ्चेत्, इति न प्रमाणम्, योग्यताविरहात् । प्रहरे प्रहरे ऽसहोच्चारितानि 'गाम्, आनय ' इत्यादिपदानि न प्रमाणम्, सांनिध्याभावात् ॥

(न्यायबो०) आकाङ्क्षां लक्षयति—पदस्येति ॥ यत्पदविशेष्यका- व्यवहितोत्तरत्वादिसंबन्धेन यत्पदप्रकारकज्ञानव्यतिरेकप्रयुक्तो यादृशशा- ब्दबोधाभावः, तादृशशाब्दबोधे तत्पदे तत्पदवत्त्वम् आकाङ्क्षा । तादृशा- काङ्क्षाज्ञानं शाब्दबोधे कारणम् ॥ अर्थाबाध इति ॥ 'बाधाभावो योग्य- ता' इत्यर्थः ॥ 'अग्निना सिञ्चेत् इत्यत्र सेककरणत्वस्य जलादिधर्मस्य वन्हौ बाधनिश्चयसत्त्वात्तादृशवाक्याच्छाब्दबोधो न संभवति ॥ आसत्तिं निरूपयति—पदानामिति ॥ असहोच्चारितानि ॥ विलम्बेनोच्चारितानि ॥

---

१ पदस्य वृत्तिः । २ यत्पदविशेष्यकेति कुत्रचिन्नास्ति । ३ यस्य यत्पद ।

– (पदकृ०) पदस्येति ॥ असंभववारणाय 'पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्त' इ-ति । पुनरसंभववारणाय 'पदान्तर' इति ॥ अर्थेति ॥आकाङ्क्षावारणाय 'अर्थ' इति ॥ पदानामिति ॥ असहोच्चारितेष्वतिव्याप्तिवारणाय 'अविलम्बेन' इति । आकाङ्क्षावारणाय 'पदानाम्' इति ॥ आकाङ्क्षादिशून्यस्य वाक्य-स्यात्र प्रमाणत्वं निषेधयति—तथा चेति ॥ 'आकाङ्क्षादिकं शाब्दहेतुः' इत्युक्ते चेत्यर्थः ॥ अनाकाङ्क्षाद्युदाहरणं दर्शयति—यथेति ॥

वाक्यं द्विधा—वैदिकं लौकिकं चेति ॥ वैदिकमीश्वरोक्तत्वा-त् सर्वमेव प्रमाणम् । लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम् । अन्य-दप्रमाणम् ॥

(न्यायबो०) वैदिकम् 'वेदवाक्यम्' इत्यर्थः ॥ इदमुपलक्षणम्—वे-दमूलकस्मृत्यादीन्यपि ग्राह्याणि ॥ लौकिकं त्विति ॥ आप्तत्वं च प्रयोग-हेतुभूतयथार्थज्ञानवत्त्वम् ॥

वाक्यार्थज्ञानं शब्दज्ञानम् । तत्करणं शब्दः ॥

(पदकृ०) 'नन्वेतावता शाब्दसामग्री प्रपञ्चिता, प्रमाविभाजकवाक्ये शाब्दस्याप्युद्दिष्टत्वेन तत्कुतो न प्रदर्शितम्' इत्यत आह—वाक्यार्थेति ॥ शाब्दत्वं च 'शब्दात्प्रत्येमि' इत्यनुभवसिद्धा जातिः ॥ शाब्दबोधक्रमो यथा—'चैत्रो ग्रामं गच्छति' इत्यत्र 'ग्रामकर्मकगमनानुकूलवर्तमानकृतिमा-न्' इति शाब्दबोधः ॥ द्वितीयायाः कर्मत्वमर्थः, धातोर्गमनम्, अनुकूलत्वं च संसर्गमर्यादया भासते, लटो वर्तमानत्वम्, आख्यातस्य कृतिः, तत्संबन्धः संसर्गमर्यादया भासते ॥ 'रथो गच्छति' इत्यत्र 'गमनानुकूलव्यापारवान् रथः' इति शाब्दबोधः ॥ 'स्नात्वा गच्छति' इत्यत्र गमनप्रागभावावच्छिन्नकाली-नस्नानकर्ता गमनानुकूलवर्तमानकृतिमान्' इति शाब्दबोधः ॥ क्त्वाप्रत्ययस्य कर्ता पूर्वकालीनत्वं चार्थः॥ एवमन्यत्रापि वाक्ये बोध्यम् ॥

इति शब्दनिरूपणम् ॥

---

१ अन्यवाक्यस्येति ।

अयथार्थानुभवस्त्रिधा—संशयविपर्ययतर्कभेदात् ॥ एकस्मि-न्धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्टज्ञानं संशयः । यथा—'स्थाणुर्वा पुरुषो वा ' इति ॥

(न्यायबो०) यथार्थानुभवं निरूप्यायथार्थानुभवं विभजति—संशय इत्यादिना ॥ एकेति ॥ 'एकधर्मावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितभावाभावप्रकारकं ज्ञानं संशयः' ॥भावद्वयकोटिकसंशयाप्रसिद्धेः 'स्थाणुर्वा' इत्यत्र स्थाणुत्वस्थाणुत्वाभाव–पुरुषत्वपुरुषत्वाभाव(एक)कोटिक एव ॥

(पदकृ०) अयथार्थानुभवं विभजते—अयथार्थेति । संशयं लक्षयति—एकेति ॥ 'एकस्मिन्धर्मिण्येकस्मिन्पुरोवर्तिनि पदार्थे विरुद्धा व्यधिकरणा नानाधर्माः स्थाणुत्वपुरुषत्वादयस्तेषां वैशिष्ट्यं संबन्धः, तदवगाहि ज्ञानं संशयः' इत्यर्थः ॥ 'घटपटौ' इति समूहालम्बनज्ञानस्य घटत्वपटत्वरूपविरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहित्वादतिप्रसक्तिवारणाय 'एकस्मिन्निति' ॥ 'घटः पृथिवी' इति ज्ञानस्यैकस्मिन्धर्मिणि घटे घटत्वपृथिवीत्वरूपनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहित्वादतिप्रसङ्गवारणाय 'विरुद्ध' इति ॥ 'घटत्वविरुद्धपटत्ववान्पटः' इति ज्ञानेऽतिप्रसक्तिवारणाय 'नाना' इति ॥

मिथ्याज्ञानं विपर्ययः ॥ यथा शुक्तौ 'रजतम्' इति ॥

(न्यायबो०) मिथ्याज्ञानमिति ॥ 'अयथार्थज्ञानम्' इत्यर्थः ॥ विपर्ययो नाम भ्रमः, इत्यर्थः ॥

(पदकृ०) मिथ्येति ॥ यथार्थज्ञानवारणाय 'मिथ्या' इति । अयथार्थवारणाय 'ज्ञान' इति ॥

व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः ॥ यथा—'यदि वह्निर्न स्यात् तर्हि धूमोऽपि न स्यात्' इति ॥

(न्यायबो०) व्याप्यारोपेणेति ॥ तर्के व्याप्यस्य व्यापकस्य च व्यतिरेकविधनिश्चयः कारणम् । अन्यथा बाधनिश्चयाभावे इष्टापत्तिदोषेण तर्कानुत्पत्तेः ॥

(पदकृ०) व्याप्येति ॥ असंभववारणाय 'व्याप्यारोपेण' इति । पुनरसंभववारणाय 'व्यापकारोपः' इति ॥ अत्र वह्न्यभावो व्याप्यः, धूमाभावो व्यापकः । यद्यपि तर्कस्य विपर्ययात्मकत्वेन पृथग्विभागोऽनुचितः । तथापि प्रमाणानुग्राहकत्वात् स उदितः, इति बोद्धव्यम् ॥ स्वप्नस्तु पुरीतद्बहिर्देशान्तर्देशयोः संधौ सिधोनाड्यां वा मनसि स्थिते, अदृष्टविशेषेण धातुदोषेण वा जन्यते । स च मानसविपर्ययान्तर्भूतः ॥

स्मृतिरपि द्विधा—यथार्था, अयथार्था च ॥ प्रमाजन्या यथार्था । अप्रमाजन्या ऽयथार्था ॥ सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम् ॥

(न्यायबो०) सुखं निरूपयति—अनुकूलेति ॥ 'इतरेच्छानधीनेच्छाविषयत्वम्' इति निष्कर्षः ॥ यथाश्रुते—अनुकूलत्वप्रकारकवेदनीयत्वस्य (वेदनाविशेष्यत्वस्य) 'घटो ऽनुकूलः 'इत्याकारकज्ञानदशायामनुकूलप्रकारकज्ञानविशेष्यत्वस्य घटादावपि सत्त्वाद्घटादावतिव्याप्तिः'—इति निष्कृष्टलक्षणमुक्तम् ॥ भोजनादावतिव्याप्तिवारणाय 'इतरेच्छानधीन' इतीच्छाविशेषणम् । सुखेच्छायाः सुखत्वप्रकारकज्ञानमात्रजन्यत्वात् ॥

(पदकृ०) सुखं निरूपयति—सर्वेषामिति ॥ 'सर्वात्मनाम्, अनुकूलः' इति वेद्यं यत् 'तत्सुखम्' इत्यर्थः ॥ 'अहं सुखी' इत्यनुभवसिद्धसुखत्वजातिमद् धर्ममात्रासाधारणकारणगुणो वा सुखम् ॥ शत्रुदुःखवारणाय 'सर्वेषाम्' इति ॥

प्रतिकूलतया वेदनीयं दुःखम् ।

---

१ कारणमित्यारभ्य तर्कानुत्पत्तेरित्यन्तः पाठः कुत्रचिन्न । २ विपर्ययत्वेन । ३ सर्वेषां जनानाम् । ४ सुखदुःखवा–

(न्यायबो०) दुःखं निरूपयति—प्रतिकूलेति ॥ अत्रापि "इतरद्वेषानधीनद्वेषविषयत्वम्" इति निष्कृष्टलक्षणम् ॥ द्वेषविषयत्वमात्रोक्तौ सर्पादावतिव्याप्तिः, तद्वारणाय 'इतरद्वेषाधीन-' इति द्वेषविशेषणम् ॥ सर्पजन्यदुःखादौ द्वेषात् सर्पेऽपि द्वेषः, इति सर्पस्य सर्पजन्यदुःखजन्यद्वेषविषयत्वात् । अन्यद्वेषानधीनद्वेषविषयत्वरूपदुःखलक्षणस्य सर्पादौ नातिव्याप्तिः ॥ फलेच्छा उपायेच्छां प्रति कारणम् । अतः फलेच्छावशादुपायेच्छा भवति ॥ एवं फले द्वेषादुपाये द्वेषः ॥

(पदकृ०) प्रातिकूलेति ॥ दुःखत्वजातिमद् अधर्ममात्रासाधारणकारणगुणो (वा) दुःखम् ॥ पदकृत्यं पूर्ववत् ॥

इच्छा कामः ॥ क्रोधो द्वेषः ॥ कृतिः प्रयत्नः ॥

(पदकृ०) इच्छां निरूपयति—इच्छेति ॥ 'कामः' इति पर्यायः ॥ इच्छात्वजातिमती—इच्छा ॥ सा द्विधा—फलेच्छा, उपायेच्छा च ॥ फलम् सुखादिकम् । उपायो यागादिः ॥ द्वेषं निरूपयति—क्रोध इति ॥ 'द्वेष्मि' इत्यनुभवसिद्धद्वेषत्वजातिमान् द्विष्टसाधनताज्ञानजन्यगुणो वा द्वेषः ॥ प्रयत्नं निरूपयति—कृतिरिति ॥ प्रयत्नत्वजातिमान् प्रयत्नः ॥ स त्रिविधः—प्रवृत्ति-निवृत्तिजीवनयोनिभेदात् ॥ इच्छाजन्यो गुणः प्रवृत्तिः ॥ द्वेषजन्यो गुणो निवृत्तिः ॥ जीवनादृष्टजन्यो गुणो जीवनयोनिः ॥ स च प्राणसंचारकारणम् ॥

विहितकर्मजन्यो धर्मः ॥ निषिद्धकर्मजन्योऽधर्मः ॥

(न्यायबो०) धर्माधर्मौ निरूपयति—विहितेति ॥ 'वेदविहित' इत्यर्थः ॥ निषिद्धेति ॥ 'वेदनिषिद्ध' इत्यर्थः ॥

(पदकृ०) धर्ममाह—विहितेति ॥ 'वेदविहित-' इत्यर्थः ॥ अधर्मवारणाय 'वेदविहित-' इति ॥ यागादिक्रियावारणाय 'कर्मजन्यः' इति ॥ स च कर्मनाशाजलस्पर्शकीर्तन—भोग—तत्त्वज्ञानादिना नश्यति ॥ अधर्मलक्षणमाह—निषिद्धेति ॥ 'वेदेन' इत्यर्थः ॥ धर्मवारणाय 'वेदनिषिद्ध' इति । निषिद्धक्रियावारणाय 'कर्मजन्यः' इति ॥ स च भोगप्रायश्चित्तादिना

---

१ द्वेषि ।

नश्यति ॥ एतावेव 'अदृष्टम्' इति कथ्यते, वासनाजन्यौ च ॥ वासना च विलक्षणसंस्कारः ।

बुद्ध्यादयोऽष्टावात्ममात्रविशेषगुणाः। बुद्धीच्छाप्रयत्ना नित्या अनित्याश्च । नित्या ईश्वरस्य । अनित्या जीवस्य ॥

(न्यायबो०) बुद्ध्यादयोऽष्टाविति ॥ बुद्धिसुखदुःखद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मा इत्यर्थः ॥

संस्कारस्त्रिधा—वेगो भावना स्थितिस्थापकश्चेति ॥ वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिः॥ अनुभवजन्या स्मृतिहेतुर्भावना—आत्ममात्रवृत्तिः ॥ अन्यथाकृतस्य पुनस्तदवस्थापादकः स्थितिस्थापकः कटादिपृथिवीवृत्तिः॥इति गुणाः ॥

(न्यायबो०) संस्कारं विभजते—संस्कार इति ॥

(पदकृ०) संस्कारं विभजते—संस्कार इति ॥ सामान्यगुणा[1]त्मविशेषगुणोभयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् संस्कारः ॥ घटा[2]दिवारणाय 'गुणत्वव्याप्य' इति । संयोगादिवारणाय 'आत्मविशेषगुणोभयवृत्ति' इति ज्ञानादिवारणाय 'सामान्यगुण' इति ॥ द्वितीयादिपतनासमवायिकारणं, वेगः ॥ रूपादिवारणाय 'द्वितीयादिपतन' इति । कालादिवारणाय 'असमवायि' इति ॥ भावनां लक्षयति—अनुभवेति ॥ आत्मादिवारणाय प्रथमदलम् । अनुभवध्वंसवारणाय द्वितीयदलम् ॥ स्थितिस्थापकमाह—अन्यथेति ॥ पृथिवीमात्रसमवेतसंस्कारत्वव्याप्यजातिमत्त्वं स्थितिस्थापकत्वम् ॥ गन्धत्वमादाय गन्धेऽतिव्याप्तिवारणाय 'संस्कारत्वव्याप्य' इति । भावनात्वमादाय भावनावारणाय 'पृथिवीसमवेत' इति । स्थितिस्थापकरूपान्यतरत्वमादाय रूपवारणाय 'जाति' इति ॥ इति गुणा इति ॥ द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान् गुणः ॥ द्रव्यकर्मणोरतिव्याप्तिवारणाय विशेषणदलम् । सामान्यादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम् ॥

---

१ गुणान्यतमविशे । २ पटादि ।

चलनात्मकं कर्म ॥ ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम् ॥ अधोदेशसंयोगहेतुरपक्षेपणम् ॥ शरीरसंनिकृष्टसंयोगहेतुराकुञ्चनम् ॥ विप्रकृष्टसंयोगहेतुः प्रसारणम् ॥ अन्यत्सर्वं गमनम् ॥

(न्यायबो०) कर्म निरूपयति—चलनात्मकमिति ॥

(पदकृ०) चलनेति ॥ संयोगभिन्नत्वे सति संयोगासमवायिकारणं व ॥ हस्तपुस्तकवारणाय सत्यन्तम् । घटादिवारणाय विशेष्यदलम् ॥ ऊर्ध्वे ॥ अपक्षेपणवारणाय 'ऊर्ध्व' इति । कालादिवारणाय 'असाधारण ॥पि बोद्धव्यम् ॥ अधोदेशेति ॥ उत्क्षेपणवारणाय 'अधोदेश' इति । क देवारणाय 'असाधारण' इत्यपि देयम् ॥ शरीरेति ॥ प्रसारणादिवा य 'शरीरसंनिकृष्ट' इति । कालादिवारणाय 'असाधारण (पद) म म् ॥ विप्रकृष्टेति ॥ उत्क्षेपणादिवारणाय 'विप्रकृष्ट' इति । कालादिवारणा साधारण (पद) म्' अप्यावश्यकम् ॥

नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम् ॥ द्रव्यगुणकर्मवृत्ति । परं सत्ता । अपरं द्रव्यत्वादि ॥

(न्यायबो०) सामान्यं निरूपयति—नित्यमेकमनेकानुगतमिति । त्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वं जातेर्लक्षणम्' इत्यर्थः ॥ नित्यत्वविशेषणा ादाने अनेकसमवेतत्वमात्रोपादाने संयोगादावतिव्याप्तिः, तत्राप्यनेक वेतत्वस्य सत्त्वात् ॥ अनेकसमवेतत्वानुपादाने नित्यत्वमात्रोपादा काशादावतिव्याप्तिः, तद्वारणाय 'अनेकसमवेतत्वम्' । अनेकसमवे ानुपादाने नित्यत्वविशिष्टसमवेतत्वमात्रोक्तावाकाशगतैकत्वपरिमा ौ जलपरमाणुगतरूपादौ चातिव्याप्तिः, जलपरमाणुगतरूपादे ाशगतैकत्वपरिमाणादेर्नित्यत्वात् समवेतत्वाच्च, अतः 'अनेक समवेतविशेषणम् ॥

अनेकद्रव्यसम. । अनेकसमवेतत्वस्य संयोगादौ सत्त्वात्तत्रातिव्याप्तिवा नित्यत्वविशेषणम् । २ रूपरसादौ ।

(पदकृ०) नित्यमिति ॥ संयोगादिवारणाय 'नित्यम्' इति । कालादि-
रिमाणवारणाय 'अनेक' इति अनेकानुगतत्वं च समवायेन बोध्यम् । तेन
ात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तिः ॥

नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषाः ॥

(पदकृ०) नित्यद्रव्यवृत्तय इति घटादिवारणाय 'नित्यद्रव्यवृत्तयः'
ति। आत्मत्वमनस्त्ववारणाय 'आत्मत्वमनस्त्वभिन्नत्वे सति' इत्यपि बोद्धव्यम्॥

नित्यसंबन्धः समवायः। अयुतसिद्धवृत्तिः। ययोर्द्वयोर्मध्य एकमपराश्रितमेवावतिष्ठते,तावयुतसिद्धौ। यथा अवयवावयविनौ,गुणगुणिनौ, क्रियाक्रियावन्तौ, जातिव्यक्ती, विशेषनित्यद्रव्ये चेति

(न्यायबो०) समवायं निरूपयति—नित्येति ॥ संबन्धत्वं वि
ष्टप्रतीतिनियामकत्वम् ॥ तावन्मात्रोक्तौ संयोगे ऽतिव्याप्तिः, अतो '
त्य' इति विशेषणम् ॥

(पदकृ०) नित्येति ॥ आकाशादिवारणाय 'संबन्धः' इति । संय
वारणाय 'नित्य' इति । स्वरूपसंबन्धवारणाय 'तद्भिन्न' इत्यपि ॥

अनादिः सान्तः प्रागभावः ॥ उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य ॥

(न्यायबो०) प्रागभावं निरूपयति—अनादिरिति ॥

(पदकृ०) प्रागभावं लक्षयति—अनादिरिति ॥ घटादिवारणाय प्र
दलम् । परमाणुवारणाय द्वितीयदलम् ॥ 'क पुनः प्रागभावः कस्मिन् व
ऽस्ति' इत्यत आह—उत्पत्तेरिति ॥ 'कार्यस्योत्पत्तेः प्राक् स्वप्रतियो
समवायिकारणे वर्तते' इत्यर्थः ॥

सादिरनन्तः प्रध्वंसः ॥ उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य ॥

(न्यायबो०) ध्वंसं निरूपयति—सादिरिति॥

(पदकृ०) ध्वंसं लक्षयति—सादिरिति । घटादिवारणाय 'अनन्त
। आत्मादिवारणाय 'सादिः' इति ॥ उत्पत्तीति ॥ 'कार्यस्योत्पन

न्तरं स्वप्रतियोगिसमवायिकारणवृत्तिः ' इत्यर्थः स च ' ध्वस्तः ' इति प्र- त्ययविषयः ॥

त्रैकालिकः संसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः ॥ यथा ' भूतले घटो नास्ति' इति ॥

(न्यायबो०) अत्यन्ताभावं निरूपयति—त्रैकालिक इति ॥

(पदकृ०) अत्यन्ताभावं लक्षयति–त्रैकालिक इति ॥ ' त्रैकालिकत्वे सति संसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः ' ॥ ध्वंसप्रागभाववारणाय ' त्रैकालिक ' इति । भेदवारणाय ' संसर्ग ' इत्यादि ॥

तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽन्योन्याभावः ॥ यथा ' घटः पटो न' इति ॥

(न्यायबो०) अन्योन्याभावं निरूपयति—तादात्म्येति ।

(पदकृ०) अन्योन्याभावं लक्षयति—तादात्म्येति । प्रागभावप्रध्वंसाभाववारणाय ' तादात्म्य ' इति ॥ अत्यन्ताभाववारणाय तादात्म्यत्वेनतादात्म्यसंबन्धो विशेषणीयः ॥

सर्वेषामेव[2] पदार्थानां यथायथमुक्तेष्वेवान्तर्भावात् ' सप्तैव पदार्थाः' इति सिद्धम् ॥

(न्यायबो०) सर्वेषामिति ॥ " प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः" इति न्यायस्यादिमसूत्र उक्तानां 'प्रमाणप्रमेयादीनाम्' इत्यर्थः ॥ विस्तरस्त्वन्यत्रानुसंधेयः ॥

(पदकृ०) ' पदार्थज्ञानस्य परमप्रयोजनं मोक्षः ' इत्यामनन्ति ॥ स च आत्यन्तिकैकविंशतिदुःखध्वंसः ॥ आत्यन्तिकत्वं च स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावासमानकालीनत्वम् ॥ दुःखध्वंसस्येदानीमपि सत्त्वेनास्मदादीनामपि मुक्त्यापत्तिवारणाय कालीनान्तम् । मुक्त्यात्मकदुःखध्वंसस्यान्यदीयदुःखप्रागभावसमानकालीनत्वाद्वामदेवादीनां मुक्तात्मनामप्यमुक्तत्वप्रसंगात् ' स्वसमा-

१ प्रथमविषयः। २ मपि । ३ सर्वेषामपीति।

नाधिकरण ' इति प्रागभावविशेषणम्, दुःखानि चैकविंशतिः शरीरम्, षडिन्द्रियाणि, षड्विषयाः, षड्बुद्धयः, सुखं, दुःखं चेति ॥ दुःखानुषङ्गित्वाच्च शरीरादौ च गौणदुःखत्वम् ॥ तथा च ' आत्मावारे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इति श्रुतेरात्मज्ञानसाधननिदिध्याससाधनमननसाधनत्वं पदार्थज्ञाने संजाघटीति ॥ एवं च सति तत्वज्ञाने शरीरपुत्रादावात्मत्वस्वीयत्वाभिमानरूपमिथ्याज्ञानस्य नाशः। तेन दोषाभावः । तेन प्रवृत्त्यनुत्पत्तिः, ततस्तत्कालीनशरीरेण कायव्यूहेन वा भोगतत्त्वज्ञानाभ्यां कर्मणां नाशः' ततो जन्माभावः ॥

" नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् ।
ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन च पाचयेत् ।
अभ्यासात्पक्वविज्ञाने कैवल्यं लभते नरः " ॥

इत्यादिवचनात् " तमेव विदित्वा ऽतिमृत्युमेति " इति श्रुतेश्च सगुणोपासनाकाशीमरणादेरपि तत्त्वज्ञानद्वारा मुक्तिहेतुत्वम् ॥ अत एव ' परमेश्वरः काश्यां तारकमुपदिशति ' इति सारम् ॥

काणादन्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये ।
अन्नंभट्टेन विदुषा रचितस्तर्कसंग्रहः ॥ १ ॥

(न्यायबो०) इति श्रीमत्समस्तविद्वन्मुकुटश्रीगोवर्धनकृता ... ग्रहव्याख्या न्यायबोधिनी समाप्ता ॥

(पदकृ०) चक्रे चन्द्रजासिंहो हि पदकृत्यमिदं शुभम् ।
परोपकारकरणं माधवो वीक्षतां परम् ॥ १ ॥

इति श्रीमत्तत्रभवद्गुरुदत्तशिष्यश्रीचन्द्रजासिंहविरचितं पदकृत्यं समाप्तिमगात् ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना
खेमराज श्रीकृष्णदास
श्रीवेंकटेश्वर छापखाना.
मुंबई